



किताब महल निबन्धमाला—३

८५२-१  
निबन्ध

# संस्कृति और साहित्य

लेखक

डा० रामविलासशर्मा



किताब महल

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण, १९४६

प्रकाशक—फिरोज महल, ५६-ए, खीरो रोड, इलाहाबाद  
मुद्रक—इलाहियाद प्रेस, इलाहाबाद

## विषय-सूची

	पृष्ठ
१ भूमिका	१
२ हिन्दी साहित्य की परम्परा	६
३ प्राधुनिक हिन्दी कविता	२४
४ छायावाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	३६
५ हिन्दी काव्य में व्यक्तिवाद और अतृप्त वासना	४६
६ नयी हिन्दी कविता पर आक्षेप	५६
७ युद्ध और हिन्दी साहित्य	६१
८ स्वाधीनता आन्दोलन और साहित्य	६८
९ गोस्वामी तुलसीदास और मध्यकालीन भारत	८८
१० भूपण का वीर-रस	१०२
११ कवि निराला	१०६
१२ निराला और मुत्तछद	११६
१३ स्वीर्गीय गलभद्र दीक्षित "पदीस"	१२८
१४ शेली और रवी द्रनाथ	१४३
१५ शरच्चन्द्र चटर्जी	१६०
१६ नज़रुत इस्लाम	१८४
१७ ब्रह्मानन्द सहोदर	१६३
१८ आइ० ए० रिचार्ड्स के आलोचना सिद्धान्त	२१०
१९ साहित्य में जनता का चित्रण	२१८
२० माया सम्बन्धी अध्यात्मवाद	२२८
२१ कविता में शब्दों का चुनाव	२३८

- २२ सस्कृति और फासिज्म  
 २३ आदि काव्य  
 २४ 'ग्रनामिका" और "तुलसीदास"  
 २५ हिन्दी साहित्य पर तीन नये ग्रन्थ  
 २६ 'देशद्रोही  
 २७ अह का निस्फोट  
 २८ 'सतरगिनी' बचनजी का नया प्रयोग  
 २९ कुप्रिन और वेश्या-जीवन

## भूमिका

सन् '३५ तक उस वर्षों में लिखे हुये मेरे प्रायः सभी कविताएँ का यह समूह है। दस वर्षों में साहित्य का एक छोटा सा भाग ही जो बना है, इस अधिकांश में मनुष्य का दृष्टिकोण बदलना भावनात्मक है। इन निरालाओं में पाठक का मेरा निराला और परिचित होता हुआ दृष्टिकोण मिलेगा। मेरा प्रथम साहित्यिक जीवन कविता लिखने में आरम्भ किया था। कहा जाता है कि श्रमका फल सफल समालोचना में जाता है। यह सशयात्मक है कि कविता में मैं निराला प्रसन्न रहा हूँ। इसलिये प्रालोचना का सफलता ही मेरा निराला सशयात्मक है।

सन् '३५-३५ के लगभग छायावाद का लेखन प्रचलित साहित्य विवाद चल रहा था। यह वह युग था जब आजादी के आन्दोलन में 'निमन जैसे साहित्य मनायी हिन्दी के जाने माने साहित्यकारों पर 'अभ्युदय' नाम की एक पत्रिका का चर्चा उठाना शुरू हो गई थी। विद्वाने निराला-जयन्ता का समालोचना देखा है, उनके लिये शायद यह कल्पना करना कठिन है कि कुछ असम्भव विरागिता श्री प्रथम बन्द करने के लिये महा-कवि का प्रथम पद प्राप्त का सहारा लेने का धोखा करना पड़ा था। यह बात उनका विरागिता ने ही अपने लक्ष्य में लिखित करके उसे ऐतिहासिक बना दिया है। इस समूह में छायावाद सम्बन्धी '३५-३६ के निबंध इस विराध भावना का देवता लिये गये थे। छायावादी कविता में नही नही रहस्यवाद और पलायन का पुट

अधने एव प्रसिद्ध बतव्य म श्री सुमिनानन्दन पन्त ने बहुत स्पष्टता से कल्याणामात्र के आधार पर लिखी हुई असम्भर स्वप्ना का स्वाभाविकता की विवेका की थी। जो लोग छायावाद का निराशावादी परम्परा का आग रानना चाहते थे और उपाय अत्रुक्रम न नय मा ल्य का कल्याण मानते थे, उन्हा का तद्वय वरक विदा

सप्तमाधुर 'पल्लव' न किमा तरह धारण नया है, जवन भिन्न-भा  
 वा प्रयत्न है। इसमें युगयोग' के शब्दों चित्तन का नारसत नही  
 है। पतन का रचना प्रदान का-श्यागा इतना मन्थ और मामल  
 14 का नूनर सप्रद म नया है। 'पल्लव' के शब्द विन्ध्य-शाब्द का वह  
 उनका मरस नया दन है। इस तरह 'पल्लव' गयानादा पुा का  
 प्रकाश-स्लभ है, उद्य प्रकार 'प्राभ्या' प्रगातपाल शान्ता का एक  
 एतदात्मन माग लचक है। तुभाग्य का शत य था। पल्लव की  
 सानुभूत शैदिक-मर म नाच जतर मारिक नहा उन मना।  
 'श्यागा' और 'न्यग धूल'—इन नय शब्दमप्रग में उन्हाले  
 शब्दरता का निदा का है लाइन मग समरु न य मारिकता के  
 प्रभा मा नही पा एक है। उनका प्रघाम चित्तन तुडिनाद के  
 आन्दा करन पर भा शैदिक हा ठ। 'प्राभ्या' के शब्द का सामने दो  
 का माग । या ता व शैदिक सगनुभूत का शैदिक का न मरर  
 का नारिक रनात या तर जनसाधारण के प्रति न्य गानुभूति मे  
 हो नैय पर लत। युद्धनाल म और जतर नय—रम न रम म्छ  
 मरस का नय का—'हानि नूनरे मार्ग का ही प्रयना प्रभा है।  
 'मरगाना' और 'न्यग धूल' का मरनायें प्रवेकनर युगयोगी  
 के नारम शब्द चित्तन के नया है। शैना सग्यता को शाब्द यह  
 मय मयाना नही है। इन सप्रग में भा करम मचार म्चनयें व है  
 । इस प्राभा के रनि का वाण नया गूँ गड है। शैदिक म्च पर  
 'नमागा' के प्रात प्राना पला सगनुभूति न तय्य होने पर  
 पतन का मनी शर नही नही का उनरे साथ है। इन पुन्यको  
 का मनाल-जना करन हुए निर रभा चित्तार न इस निषय पर  
 चिहूँगा। यहाँ पर जतल उन लागों का उत्तर रना है जो ममरते  
 है। 'प्राभ्या' में जनसाधारण के प्रात एक नयान सगनुभूति से  
 प्रेरित होकर पल्लव का रचनायें का, वे श्राकमिन और उनके



विनास का निरोधी दिशा में है। मेरा निवेदन इतना ही है कि 'ग्राम्या' की भूमिका में पन्तनी ने जिस त्रैलोक्य सदानुभूति का उल्लस किया है, उसमें श्रीर गन्नाइ लाकर उसे मार्मिक बनाने का जखरत थी, न कि उसे नमस्कार करके पुनः एक नये छायावाद का प्रयात्म-जगत् में ला जाने का।

मन्युद्ध का आरम्भ होते होते साहित्य का मान्यताप्राप्ति के बारे में जहाँ-तहाँ विवाद छिड़ गया था। उन दिनों अनेक लेखकों की यह प्रवृत्ति थी कि वे प्रेमचन्द द्वारा स्थापित जन साहित्य की परम्परा का विरोध करते थे। प्रेमचन्द की निन्दा करने के लिए वे शरत्नाथ का यादश उपस्थित किया करते थे। शरत्नाथ से प्रभावित हार्नर अनेक नये लेखक अपने अतृप्त मध्य-वर्गीय जीवन का यादश रूप में चित्रित करने में लगे थे। उनको लिये सामानिक सभ्य और राजनीतिक आन्दोलन का काँ बहत्त्व न था। उनको लिये सारा साहित्य अलसामय था और वे 'हार्नर' उनको नारी का उद्धार करने में लगे थे। छायावाद के उत्तरकाल में जो निराशा कविता में व्याप्त हुई थी, उसी का प्रतिरूप कथासाहित्य में यह कथित नारी का उद्धार था। इस प्रवृत्ति का लक्ष्य में रखकर शरत्नाथ के उपन्यासों पर लेख लिखा गया था। इसमें शरत्नाथ का कमज़ारिया का उल्लस आधुनिक है और इसका कारण उस समय के हिन्दी लेखकों की यह प्रवृत्ति है जो इन कमज़ारियों का ही शरत्नाथ की सभ्य सदा महत्ता समझती थी। बंगला-साहित्य में कल्पना प्रचार ऐतिहासिक रामान्सा को दुनिया से अलग हार्नर शरत्नाथ ने घरलू जीवन के यथाथवाद का चित्रण का भाग्यश किया था। बंगाल और हिन्दुस्तान के साहित्य में उनका एक महत्तरपूण ऐतिहासिक स्थान है जिसे भुलाया नहीं जा सकता। सामानिक उत्पादन और अयाप के प्रति उसकी सदानुभूति नहीं थी। परन्तु बंगाली मद्रलाप के चानन

में जा भूठी आदर्शवादिता और अपनी श्रुति को पटा चढ़ा कर देखने की प्रवृत्ति आ गई थी, वह शरत्मानु के उपन्यासों में भी झलकता है। शरत्मानु का कला साधारण पात्रों के चित्रण में गूढ़ निखरी है। दुभाग्य से हिन्दी लेखना पर भद्रलोक वाली श्रुति और भूठी आदर्शवादिता का हा प्रभाव अधिक पड़ा।

नये साहित्य और विशेषकर नयी समालोचना पर यह अभिप्राय लगाया जाता है कि यह पिछले साहित्य की परम्पराओं से तटस्थ और उनका प्रति उदासान है। पुरानी परम्परा का उरलेग्न करने पर यह भा घोषित किया जाता है कि प्रगतिशील आलोचना तुलसादास या भारतेन्दु का ज्ञानदस्ता प्रगतिशील बना रहे हैं। वन अत्यन्त आश्चर्य है कि हम अपने साहित्य का पुराना परम्पराओं से परिचित हो। परिचित होने के साथ साथ हम उनसे श्रेष्ठ कृति को ग्रहण भी करना चाहिये। मेरा उन लोगों से मतभेद है जो साहित्य का समान हित या अहित से परे मानकर काल रूप का प्रशंसा करके आलोचना की इति कर देते हैं। उनके नये विहारी और तुलसादास दोनों ही समान रूप से वन्दनाय हैं और दोनों का ही परम्परा समान रूप से वाञ्छनीय है। प्राचीन साहित्य का मूल्यार्जन करते हुए मेरी दृष्टि में समाज के हित और अहित का न भूल जाना चाहिये। यदि दरबारों में राजाओं की चाटुकारिता करते हुए भी श्रेष्ठ साहित्य रचा जा सकता था तो इसे सत नवियाँ भी सनक हो मानना चाहिये कि वे दरबारों में आनन्द पूरक समय न प्रदान कर चिमटा उजाते हुए रुठिनादियाँ का विरोध सहन करते रहे। 'सिर धुनि गिरा लागि पड्डिताना'—यह उक्ति अगर किसी पर भी लागू होती है तो इन दरबारी कवियों पर। लक्षण-ग्रथ लिखने वाले कवियों और मध्यकालीन समाज में क्रांतिकारी परिवर्तनों का शोर उठाने वाले सतनवियों में आकाशपाताल का अन्तर है। इस अन्तर का न समझकर दोनों को ही उपास लेना

अपनी परम्परा का ग्रहण नही बदलीकार करना है। 'हिन्दू साहित्य की परम्परा' नामक लेख इसी धारणा के अनुकूल हिन्दू साहित्य के विकास का एक रत्नचित्र भर है। इस विषय पर भरा षण विमर्चन करते हुए अलग अलग पुस्तकें लिखना आवश्यक है।

इस निबन्ध में अनेक प्रश्न उठाये गये हैं, जिनका भला भौति निराकरण उनमें नहीं किया गया। मैं उनसे सम्बन्ध में पाठकों के विचारा का स्वागत करूँगा और प्रयत्न करूँगा कि अन्त पुस्तक में यह निराकरण अधिक सन्तोषप्रद बन।

गोकुलपुरा, आगरा  
१ अक्टूबर '४७

रामचिलास शर्मा

## हिन्दी साहित्य की परम्परा

साहित्य के विषये प्रगति और प्रतिक्रिया नहीं चार्ने नपा है। इनका क्रम तो तब न चलने जाता है तब नै समाज का विकास होता है। कुछ लोग ने प्रगति प्रतीती ली है कि प्रगतिशास्त्र साहित्य का परम्परा से का समय नहा है। प्रगति शास्त्र का शास्त्र है। नैसा सामाजिक विज्ञान म का नो नवान व्यवस्था पुगनी सामाजिक व्यवस्था म एक म प्रथम न प्रगति शास्त्रता, नैसा न साहित्य म विज्ञान प्रगति का भग प्रगति शास्त्र म एक नवा प्रगति नही आरम्भ हा सकता। हिन्दी साहित्य का विकास-क्रम प्रत्य साहित्या नै प्रगति शास्त्र का रखा है। इसका कारण हमारे देश नै सामाजिक विकास की भिन्नता है। जिस समय प्रगति म नवा भाषाशास्त्र और नवे शास्त्र का नम न गता था, उसा न प्रगतिशास्त्र भारत नै भी नही भाषाशास्त्र का नम तथा विदेशी साहित्य का आरम्भ न गता था। यदि हिन्दुस्तान न सामन्तशास्त्रताका प्रथम शास्त्रता जाता ना बहुत समय था कि यूरोप का तर्क शास्त्र म प्रगति-प्रथम शास्त्रता गता नै तब प्रगति प्रथम भाषाशास्त्र का जाता। यूरोप नै तब तक रोमन साम्राज्य रहा, तब नै एस्ता रोमन शास्त्रता का शास्त्रता दिष्टान हुआ, तब उडके शास्त्र नै उमना स्थान ल दिया। भारत न सुगल साम्राज्य शास्त्रता के समय तक प्रगति विचार के विषये प्रगतिशास्त्र शास्त्र शास्त्र ही—अन्तर के समय नै भा—उडे अनी सत्ता का शास्त्रा के विषये सचेत शास्त्रता नैना पडा। तब सुगल साम्राज्य उडके शास्त्रता हुआ, तब उसके मलने पर सुगल शास्त्रता का प्रगतिशास्त्रता शास्त्रता न अपना साम्राज्य शास्त्रता करने की शास्त्रता का

कवीर की प्रतिभा रास्तर में ध्वजात्मक थी। उक्त दार्शनिक विचार उनके हुए हैं और सामाजिक दृष्टि से उनके रहस्यवाद में रचनात्मक तत्त्व कम है। इसके विपरीत तुंगभाषी की प्रतिभा मूलतः रचनात्मक थी। विनयपनिष्ठा के यौन पदां से देश की तात्कालिक दशा पर कठोर प्रकाश पड़ता है। तुलसीदास ने अपने जीवन में बार-बार गरीबों के रूप में भाग लिया। बाल्यकाल में उनकी पत्नी अनाथ बच्चा जैसा गृहीणी। पेट का प्राण कषा जाती है कम बच्चे प्रच्छेदी तरह जानते थे। "प्राणि उडगणि न उडा है प्राणि पट की"—यह उक्ति उदाहरण है। उनके रामचरितमानस का जो प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा है, उस पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। यह साक्ष्य प्रधानतः एक भाग्य का स्वरूप है परंतु हम भक्त को जो भक्त का भाग्य से उदास करने। राम भी चित्रकूट गया था और भरत भा, परंतु रावला ने जैसा शान्त व्याख्या भरत के लिये की वैसे राम के लिये भी नहीं की। ऐसे भक्त के लिये रचना का चित्तवा प्रभाव भक्त हृदयों पर पड़ा उगन नहीं प्रिय उक्त प्रभाव सामान्य व्यवस्था पर पड़ा।

उक्त सामाजिक चरित्रों के समय के समाज के सामान्य पृष्ठभूमि में विचार कर चुका था, उक्त समय के पर दा प्रारंभिक चरित्रों का था— उत्तर में मिथ्या द्वारा और दक्षिण में मराठी द्वारा। दक्षिण में उक्त चरित्रों का उक्त चरित्रों के लिये शिवाजी। उक्त एक आधारण पारंगत में उत्तरण लिये थे और फल प्रपत्ति समाधारण समाज का प्रारंभिक चरित्र स्थापन कर गया था। चैतन्य यह चरित्र था, वेम हा समाज भा थे। उक्तान मराठा समाजों का एक नया चरित्र चरित्र और अपनी उदार व्यवस्था के कारण शिक्षा का प्रिय हो गया। शिवाजी का मफलता का संस्य यह था कि उक्ताने शिक्षाओं को ताल्लुन्दारी राजीव ने मुक्त किया। मराठा चरित्र के द्वारा का कारण इसी ताल्लुन्दारी व्यवस्था का पुनः मिर उक्ताना था। मिथ्या का मरम्भ

भा पचायती टग ना थ। परतु गद म उनम टुद्ध सदाग ना एत प्रभुत्व हा गया ना जनशक्ति ना उपनाग अरन म्दार्थ न निय करने टा। गिनाना क नेतृत्व म जनशाक्त ना जा नगठा हुत्रा, उनका प्रभाव भा साहित्य पर पग। भूपण क उन्दा म तहा तहा यह अन धान मुताड पृता है। परतु भूपण आरभ से हा दरवाग म गृध प्रो टुलनकाम क विपरान जन जान न हा कर एर दरवाग अवि थे। नाथका भू ना अपना कान-निपन न बनाकर उहान अपने प्रा नताप्रा पर छल जान थ। फिर भा उनक प्रा नताता प्रना गण व्यक्तित्व के लाभ थ। प्रौर उनम लारु नाग्या क गुण निमान थ। भूपण अपना धारा क अरल अवि न थ। रानकान म हा तीरगाथा काल ना एक छोटा सा नूतन आरभभाव-भा न गया था परतु "धाररम" क इन कविता ना अधिक् लानाप्रवता न भता उना कारण यह था नि न अपन आभयदाताप्रा के भक्त पल व, दस क भक्त गत को।

१६ ना शतादा म ङमगात मुगल साम्राज्य और धर्म समतवाद की मुठभट यूम्प के नयान पैंनादा म हुई। य पैंनादा नाय दशा की अपना टुल्ले म आरक निर्मित हा चुना था। इगा तद यूम्प ना अय शक्तिवा हिन्दुमान ना लूट म अद्वैत क सामने न लन सदा। मन् १५७ तक यह पैंनादा साम्राज्य प्रना विस्तार करता रहा। मुगल साम्राज्यवाद टुठ ता भारतान नाभदप क नाररु, कुद्ध अपना कट्टर धार्मिक नाति और विलासिता के कारण और प्रविशिशत अपना समतवादी युनियान न कारण इन नथ टुयोग धधा की युनियान पर तैयार निये गये त्रिंश पैंनादा ना सामना न कर सता। मन् १७ में युम्पने के पहले उनने अनिम गाँ ला। हिमी हद तक उसे जनता का सहानुभूति भी प्राप्त थी। मुगला के गानमरु क समय कुछ जमीदार, तारतुक्दार, गजा आदि उनसे

लडे थे और बहुत से उनसे मिल गये थे, उसी तरह इस विद्रोह में भी इस वर्ग के बहुत से लोग जुक्त गये और बहुत से अंग्रेजों की सहायता करने के कारण जन भी गये। सन् ५७ के इस नये अनुभव से लाभ उठाकर अंग्रेजों ने राजाओं और तालुकदारों से मेरा का व्यवहार स्थापित कर लिया और वे लोग जन आन्दोलन का दबाने में अंग्रेजों से होठ करने लगे। सन् ५७ के बाद की साम्राज्यवादी व्यवस्था का भारतीय साहित्य पर गया प्रभाव पडा।

मुगल में नवीन साहित्यिक आराधना का पल्लव ही जन्म ही चुका था। उर्दू में इसी कविता के ढंग पर दरबार कविता ने गुल जुलजुल की सहायता से अपना एक नया चमक आवाद कर लिया था। कफ़ और मैया के शायर कुछ दरबार में पढ़े थे। सन् ५७ में कुछ दरबार नष्ट हुए, कुछ नये जन गये। हैदराबाद, गमपुर और लग्नऊ ने दिल्ली की जुलजुलों का आशय दिया। मुगल साम्राज्य के नष्ट हो जान में एक ऐसे उग ने भी उद् साहित्य का प्रभावित किया जो उग नष्ट साम्राज्य का स्मृति में प्रसू रहता था और इस्लाम कविता का राष्ट्रीयता से उड़ा मानता था। उस उग के प्रतिनिधि थे सर संयद अहमद खान। उस उग का साहित्यिक वाणी की मौजाना खाली ने। उन्होंने इस्लाम के उत्थान पतन पर अपना प्रसिद्ध शब्दग्रन्थ लिखा।

उत्तोरवा शताब्दी के अन्त में—नव दशक में विस्तारियन युग का शक्ति थी—हिंदी के आधुनिक युग का आरंभ हुआ। कविता भद्र काली कविता का परिष्कार पर काफी कविता हुई और उस परपरा का खड़ी बोली के कविता ने ही उत्तर किया। अन्तर्भाषा और खड़ी बोली की प्रतिद्वन्द्विता साम्प्रतिक दृष्टि से लाभकारी सिद्ध हुई। खड़ी बोली के कविता ने उग दरबारी संस्कृति का भी उत्तर दिया जिसका अन्तर्भाषा ने प्रतिष्ठित करना था। उद् में इस तरह

का प्रतिद्वंद्विता न थी फलतः कुछ लोगों ने यह समझा और  
अपनी समझ में ही कि यगारा रचना का उद्देश्य साथ ही  
आध्यात्मिक सन्धि है।

भारतेंदु युग के साहित्य में बहुत सी प्रवृत्तियाँ काम कर रही  
थीं। यह स्वामी दयानंद का युग था जो स्वयंसेवक धार्मिक भावनाओं  
पर प्रहार कर रहा था और नये-नये मुद्दों के लिये आदर्शन छिन्न  
करा था। लिखा कि अतिरिक्त केवल ने स्वामी दयानंद का स्वरुत  
ने अलग गृह कर उनके सामाजिक ज्ञान के लिये फलू का अर्थना लिखा।  
भारतेंदु और उनके साथियों ने अपने साहित्य में सामाजिक स्थिति  
के प्रति तार्किक आलोचना किया। इस कारण उनका ज्ञान विचार  
द्वारा। गद्य-वचन गान्ध्यामा के लिये उन्हें भारतेंदु से मिलने के श्रेय  
के साथ साक्षर दि बड़ा प्रियान हा जगगा। भारतेंदु युग के साहित्य  
का एक भाग, जिसका उद्देश्य गन्तव्य न है और भा मरुतपुत्र है।  
कुछ रचनाओं में महाराजा विक्रमार्जुन का पुण्यगान है और क्रिस्टो  
मरुत के प्रति भक्ति का प्रदर्शन है। पुरुष दश के दुर्भिन, नगमार,  
श्रेयश्वरि ने लेखना का प्रारम्भ सात के और इनका लक्ष्य  
उन्धान चेतना का चेतना करने में अपनी आरंभ कुछ उज्ज्वल था।  
यह नवीन चेतना चेतना पर्यन्त अथवा पर्यन्त मन्त्रि प्रत्य  
हृद। उन समय का पर्यन्तिकाशा न इस तरह का चेतना का  
पटा है। व्यंग्य और अन्य इन साहित्य का विशेषता है और  
का भा लक्ष्य अन्तर्गत चेतना का चेतन निर्मित नग रन टना।  
भारतेंदु न एक लक्ष्य प्रशिक्षित की था जो गुरुनिर्णय दृष्टि  
ने प्रत्यक्ष महत्त्वपूर्ण है। उन्धान लिखा था कि चेतना न नवान  
चेतना रचना के लिये आदर्श भाषाओं का सहाय लेना चाहिए।  
गत प्रामीण भाषाओं में लिखे जायें और भाषाओं में उन्हें जानना प्य।  
उन्हा उन विषयों की एक सूची भी दी थी, जिन पर वह एक दृष्ट



का लोक साहित्य रचा जाना अत्यन्त आवश्यक समझने थे। इनमें बाल विवाह  
 आदि सामाजिक कुीतियों से लेकर स्वदेशी और देश प्रेम तक अनेक  
 विषयों पर और वे भारतदेश के प्रगतिशाही नेतृत्व पर काफी प्रकाश  
 डालते हैं। भारतदेश युग में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन बहुधा उत्पन्न  
 हुआ था। पात्रकाएँ दो प्रा. चार व्याजों का होता था। प्रथम  
 कठिनायों का सामना करने पर भा. इन लोगों ने बस तक अपनी  
 पात्रिकाओं का जीवित रखा। २०वाँ शताब्दी में आरम्भ में पुस्तक  
 प्रकाशन से लाभ उठाने वाला साहित्यिक प्रयोग। अन्तर्गत प्रभाव  
 साहित्य पर भी पड़ा। यह मौलिक, यह पत्रिकाएँ का देखा प्रथम दर्शा  
 था। इसी शक्ति के अन्तर्गत गुणादेश कम था। पूजावादी  
 'प्रकाशक' के पत्रों में "उत्तम साहित्य का" साहित्य प्रकाशन होने  
 लगा और वह लड़ाई जिसे लेखक तरह तरह से विरोधियों से लड़  
 रहे थे, कुछ समय के लिये उन्दी भी लड़ गई।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में साहित्यिक प्रगतियों का दृष्टि से  
 २० मत्तवात्प्रवाद द्विवेदी तथा उत्तम साहित्यिकों का महत्वपूर्ण काम  
 किया, वह पत्र में खरीनी जाती की प्रतिष्ठित रखा था। स्वदेशी भाषा  
 और ब्रजभाषा का लड़ाई भारतदेश के पश्चात् ही शुरू की गई थी परन्तु  
 अन्तर्गत युग में अन्तर्गत और तान्त्रिक और ब्रजभाषा के गमलों का  
 दिग्गज दो लगा कि अन्तर्गत के लिये ब्रजभाषा का ही प्रयोग है,  
 यह अन्तर्गत है। वे अन्तर्गत यह माँग करने लगे कि प्रतिष्ठा रखी ब्रजभाषा  
 का ही लक्ष्य ब्रजभाषा का माधुय भा. रक्षापर किया जाय और  
 उत्तम निम्न वातावरण का सुरक्षा बनाय। पत्र-साहित्य का  
 उत्तम में दिग्गज जा का बहुत बढ़ा हाथ था। हि. सा. म. कुछ दिग्गज  
 तक जा अन्तर्गत मुन्दर पत्रिकाएँ निम्नी, वे बहुत कुछ 'संस्कृति' से  
 होठ के कारण सुरक्षित बन गई। द्विवेदी जी ने स्वदेशी भाषा का एक  
 निश्चित रूप दिया और आकरणी तथा अन्तर्गत प्रयोगों में जो गढ़वट थी

उस वन्द किया । परन्तु इस संस्कार में भारतेंदु युग की सजीवता भी बहुत कुछ नष्ट हो गई ।

हिन्दी का द्विवेदाची की मुख्य देन श्री मैथिलीशरण की गुप्त थे । इनका पुस्तक "भाग्यभारता" की तुलना सारा फालेलकर ने महात्मा गांधी के "हिन्द-स्वराज्य" से की है । साहित्य में भारत भारती ने बड़ा किया था राजनसि म गांगुली का पुस्तक ने । गुप्त का तरफ प्रेमचन्द भी गांगुली की थे, परन्तु दाना में बड़ा अन्तर था । प्रेमचन्द किमाना में बहुत निम्न थे, उन्हें बहुत अच्छी तरह जानते-पहचानते थे विचारों में नर्म होते हुये भी परिस्थितियाँ का चित्रण उन्हें एक क्रांतिकारी लक्षण का सन्देह तक लाता था । अपने उपन्यासों में उन्होंने महत्त्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक और राजनसि समस्याओं का चित्रण किया है । "सेवासदन" में ही उन्होंने यश्या जीवन पर लिखते हुये उस समाज का देश का आर्थिक प्रश्नोक्ति का साथ चित्रित किया था । भारतीय तथा साहित्य में यह एक महत्त्वपूर्ण परंपरा का आरंभ था । "रामभूमि" में उन्होंने नये उद्योग वर्गों से उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर प्रकाश डाला । "रामभूमि" में अछूत आन्दोलन और लगानवन्दी तथा "प्रेमाश्रम" में किसान-जमादार संघर्ष का विभिन्न पहलुओं का चित्रित किया । "गादान" में उन्होंने किसान-महाजन संघर्ष का कहानी, पूर्ण विस्तार के साथ, उसकी रचना और भयानकता पर गिना पदा डाले हुए, रखा । हिन्दुस्तान के किसानों की प्रेमचन्द की रचनाओं में जो आत्माभिव्यञ्जन मिला, वह भारतीय साहित्य में बेताउ है ।

प्रेमचन्द और श्री मैथिलीशरण गुप्त का साथ-साथ हिन्दी में उन नये रुचियों का अभ्युदय हो रहा था जो छायावादी रहे जाने हैं । गुप्त की का दंगल हुए ये लोग नयी पीढ़ी के कवि थे । पहले अपनी कविताएँ छपवाने के लिये इन्हें इधर उधर भटकना भी पड़ा । पत्नी

का "सरस्वती" का सहारा मिला परन्तु निराशाजी की प्रसिद्ध रचना 'जूदा का कली' का द्विचरणी ने "सरस्वती" से वापस कर दिया। उनकी अधिकांश रचनाएँ पहले 'मतवाला' में छपीं। प्रसाद, पतन निराला का लेख हिन्दी साहित्य में जो बड़ा विवाद आरम्भ हुआ, अभी तक समाप्त नहीं हुआ। इनका निराधिया में नाग कविता प्राणा थे। प० पद्मसिंह शर्मा ब्रजभाषा का अनूद्य प्रमा थे। उनका ऐसा कामल था कि उनमें "पल्लव भी काँट की तरह" चुभ गये। आधुनिक हिन्दी कविता पर उदाहारे जा आक्षेप किये, उनका सबसे अधिक उत्तर उनकी "त्रिदारी मतगद्" का गाना है। आशिक माशिक का चंचला पर वे पदा थे, उदाहारे निराधिया में कविता की इस रामाक्षिक धारा का जन्म हुआ था। अन्य निराधिया में सबसे अधिक हठा प० नारायणस चतुर्वेदी थे जो एक बार कविता में पाछे पडे तो उसका प्रत्येक साक्षात्कार कविता का ध्यान से देना करते थे। मोना मिनत है उन पर टूट पडे। वेस साहित्य और कविता का समझना में अपनी असमर्थता का बहुरुल कविता से इज्जदार करते थे। आधुनिक हिन्दी कविता का निराधिया में या तो वे लाम जा नावना भद्र में प्रवाणता प्राप्त कर चुके थे, या वे थे जो और तुलबुल का शायरी पर रघुपात महार का तरह लामन कर रहे थे। कि आलाचना में पुरातन प्रेम और व्यासगत इतिहास और स्वभाव का छाड़कर आयाजादा कविता का विराध कि उताम प० रामचंद्र शुक्ल मुख्य थे। शुक्लजी ने हिन्दी आलाच में स्वयं रचनात्मक कार्य किया था। दरबार परंपरा का उदाहरण निराधिया था और साहित्य में जनहित की भावना का श्रेय कि था। बड़े छायावाद कविता का निराधिया में आय, इसका कारण उदाहरण भ्रंत धारणाएँ थीं। पहली यह कि छायावाद कविता अमेरिका या बंगला का मूल था दूसरा यह कि इसका विशेषता केवल इति

अन्याक्ति प्रधान शैली थी। उन्होंने उसके विद्राह और रचनात्मक क्षमता की ग़र ध्यान नहीं दिया। परंतु धीरे धीरे उनके विचारों में परिवर्तन हुआ था और अंत में वे तो तब तक प्रभाव से उनका रुत उदार और सहानुभूतिपूर्ण हो गया था।

हिन्दी की नयी रोमांटिक कविता ने हिन्दी के लिये बहुत कुछ बना दिया जो इस तरह की कविता ने इंग्लैंड में अंग्रेजी के लिये किया था। रातिकालीन परंपरा का इसने पूरी तरह खत्म कर दिया। 'पंख' की भूमिका में यह विद्राह का स्वर स्वयं सुनाई दिया था। अर्थात्, पंख ने रातिकाल के साथ और बहुत से कविता का भी लपट लिया था। निरालाजी ने अपनी आलोचनाओं में नये पुराने का संतुलन किया। विहारी और रवींद्रनाथ पर तुलनात्मक लेख लिखकर और तुलसीदास के दर्शन पर विशेष रूप में प्रकाश डालकर उन्होंने छायावाद आलोचना का एकांगी होने से रोक रखा। मुक्तछंद में रचनाएँ करने के कारण उनके विरोधियों का अपने दिल का गुबार निकालने का अच्छा अवसर मिला और मुक्तछंद के उद्धार के यथाशक्ति नयी कविता का विरोध करने लगे। परंतु युग-चेतना का विकास दूसरा और हा रहा था, विरोधियों को मुँह की खानी पड़ा।

नयी रोमांटिक कविता ने नायक नायिकाओं की क्रीडा के स्थान पर व्यक्ति और उसके भावों विचारों का प्राकटिक किया। निष्पक्ष प्रकाश के उदले सनातन भावों का व्यक्तन द्वारा वे साहित्य को जानने के निष्पक्ष लाये। नारा कवल विलास और वामना की वस्तु नहीं हुआ था, उसका प्रतिद्विधा-स्वरूप उद्धारने उते दंगल रना दिया। रीति कालीन कविता दरबार सस्कृति का पापण करता थी। नये कवियों ने मनुष्य मान की महत्ता घोषित करके, विश्वबन्धुत्व के विचारों का प्रचार करके, धनादियों के स्वार्थ के मूल पर उठारनागत किया। दरबारी सस्कृति के प्रेमियों ने और पूँजीवाद के द्विष्टों ने नया

मुक्तछंद को लेकर, कभी अश्लीलता को लेकर नयी कविता का इन देन पर पदा डालना चाहा। परंतु उन्हें इस काय में सफलता न मिली।

रोमांटिक कविता को कमजोरी है, व्यक्तिवाद। नयी समाजवादी प्रवृत्तियों के जार पकड़ने से इस व्यक्तिवाद का विरोध हुआ। आयावादी कवियों ने प्रशसनीय उदात्ता के साथ नवीन प्रवृत्तियों के प्रति सहानुभूति दिग्वाद और उन्हें अरना ग्वनाया में प्रथय देने की चेष्टा भी करने लगे। हिंदी में सय से नड पीनी उन लेगना का है ना इन समाजवादी प्रवृत्तियों से प्रभावित हैं और साहित्य में उद स्थापित करने के लिय प्रतिनिधावादिमा में लड रह हैं। प्रगतिशील साहित्य बहुधा छायावाद का प्रतिनिधा कहा जाता है परंतु उसका विरोध करने वाला म ना प्रमुग आयावाद नहा है। उमठ विराधी अविन तर व ही लाग है ना प्रभाया क लिय अय तन मिर पीट रहे हैं और हिन्दी साहित्य का प्रगति का अर जाते दरकर अपने वगन्वार्थ की डगमगाता पैया म पैठे हुए क्य मार रहे हैं। आ मुमिज्ञानदन पत ने 'रूपाम' में छायावाद स नाता वाटने का चेष्टा की और प्रगतिशाल लपना से आ मिल। 'रूपाम' उस साहित्यक आदालन का प्रताक था जिसमें हिन्दी साहित्य सदन गति से छायावाद से आगे प्रगति के प्रकाश की ओर रन्ता है।

'म' में नये लगना को एक मुरतपन सा मिल गया और नयी प्रगतिशाल शक्तियों के संगठित हात के साथ उठना विरोध भी बढ़ गया। 'दस' से अलग 'विप्लव' का भी जन-साहित्य के विभाग में विशेष योग दिया। उनमें स्तन और प्रध्याय क रदल प्रचार और मनारता की सामग्री अधिन रहता थी और विना जाने व उम साहित्यिक धारा की सृष्टि कर रण या जा भारनेहु युग का विरा पता थी।

यहाँ पर छायावाद कवियों का कुछ गद्य-रचनाया का उल्लेख आवश्यक है। निरालाजी के 'दरी,' 'चतुरा चमार' आदि स्केचाँ में कविता का प्रपञ्चा जीवन का अधिक स्पष्ट और यथार्थमयी दर्शन है। पतनी ने अपना कहानियाँ म इन नये दृष्टिकोणों से—कवितायाँ की प्रपञ्चा—मफलता से प्रपनाया था। महादेवीजी ने भी अपने रचनाचित्री में यथार्थ चित्रण के उदाहरण दिये हैं। यदि उनके प्रशंसक उनका यह समझा पाते कि वेदना पर 'सूरसागर' लिखने के बदले वे अपनी सहज मानवीय संवेदना से अपने शास्त्रपास के पाठित जनसमुदाय का वेदना के चित्र खींचें तो इनसे उनका पाड़ा का मामूली भाँ अधिक निस्तृत होता और हिन्दी की प्रगतिशील शक्तियाँ का भाँ एक झरला का बल मिलता। जैसे ताँ गुप्तजी ने प्रगतिपथ में कवियों का बहिष्कार-सा कर दिया था—“प्रगति के पथ में निचरा उठा। पुरुष हाँ पुरुषार्थ करा उठा।” परन्तु यह बहिष्कार का युग नहाँ है। पुरुष ताँ अपना पुरुषार्थ दिखायेंगे हाँ।

कविता म सबसे पहले पतनी ने छायावाद में नाता तोड़ा, परन्तु नाता पुराना था, एकाधरगाँ इतनी आसानी से टूट नैस जाता। पतनी से लागी का शिकायत है कि वह पहले का हाँ तरह स्वप्न सौंदर्य पर कानता क्या नहाँ लिखते। मुझ ऐसा लगता है कि वह स्वप्न सौन्दर्य से काफी दूर चले जाना चाहते हैं परन्तु वह उँई अपना आँ यसाँट हाँ लाता है। फिर भाँ 'ग्राम्या' में उन्होंने एक प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न उस व्यक्ति का है जाँ स्वभाव से दुनियाँ का माँझ भाँड से दूर रहने वाला था। हिन्दी के अन्य कवि ताँ गाँवाँ की धूल में हाँ पले हैं, उनके लिये नये दृष्टि की कविता एक स्वाभाविक वस्तु हो जाती है। पतनी का भाँतर अपन भी एक सपथ है का समाप्त नहीँ हुआ। निरालाजी छायावादी कवियों म सब से अधिक प्रगतिशील रहे हैं और अपन उस प्रगतिशीलता का याद

करके ही यह मानों आधावाद से नाता नहीं तोड़ना चाहते। छायावाद का उद्धाने ही भारतीय यद्वैतवाद का दाशनिर्ग आधार दिया था। इसलिये छायावाद उनका लिये रामाणिक विद्रोह मात्र नहीं रहा। यह उनका जीवन दर्शन था। यह क्रममय जीवन का आरंभ ढरेलता है, सवर्ष से उचकर किसी काने में छिप गूने का दर्शन नहीं है।

हिंदी के प्रगति पथ में बहुत सी बाधाएँ हैं। प्रगत के विरोधी पक्ष से अब ज्यादा चीखने हैं परन्तु उनका विरोध बहुत निरल है। नये का पुराने लक्षकों में एक भी ऐसा नहीं है जो समथ भाव से उनका निमायत कर सके। हिंदी के ६६ फामदा अर्च्छ लक्षकों की सज्ञानभूति नई धाराओं का साथ है। १ फोमदी में बेलोग हैं निमकी वही पूछ नहीं है और जो विरोध द्वारा अपना जीवन सफल करना चाहते हैं, या य लाग हैं या करना नासिना वृत्ति के लिये दूसरों की देदरी पर माथा रगड़ रहे हैं। कुछ ऐसे लाग भी हैं जो मन्बुलहनाम हैं और ससार की प्रगति से आँसूँ मूँद हुए १६वीं सदी के कफस में चहचहा रहे हैं और अपने चहचहाने पर हिंदा हाकर नभा-नभी जारा से पर भा पड़काने लगने हैं। तभी इनकी आर लागों का ध्यान आकर्षित जाता है। प्रगतिशील साहित्य के निमास और प्रगार में प्रगारण आदि का बाधाएँ भी हैं। ये बाधाएँ साधारण नहीं हैं और प्रग-चार प्रयत्न करने पर भा अभी तक दूर नहीं हा पाइ। मुद्ध के समय उनका दूर हाने का कोई सभासना भी नहीं है। परतु एक दिन वे दूर हाकर हा रहगा। नय लक्षकों में प्रतिभा है, लगन है अपनी मगठन शक्ति का पहचान लेने के बाद अपने मार्ग में वे निमी भी बाधा का ट निरने देंगे। हिंदा में प्रगति की एर जाग्रत परपरा है। राजा रइगी के सरक्षण के विना ही। हिंदा के लगन जीवन-सवर्ष में जतर हाकर भा साहित्य-रचना से निमुग नहीं हुए।

इस सन्दर्भ में लेखिका का चानन-समय में क्षय होना और आगे बढ़ते देगा है। जो नष्ट हो गये हैं उनका वही मूल्य है जो जन-संग्राम में चम्कने वाला शहीदा का हाता है। हिन्दी लेखन का परिस्थितियाँ ऐसी हैं जो उसे हठात् पूँजावाद और साम्राज्यवाद का विरोधी बना देता है। जो पूँजावाद या साम्राज्यवाद का खुशामद करे, उह स्थान बनाने में मदद करे, प्रगति के मार्ग में बाधा डिये, वह देश का शत्रु है और हिन्दी का शत्रु है, धर्म और सच्चरित के नाम पर जनता का भला बान कर वह पूँजावाद के दानन का माण करना चाहता है। उससे सभा लेखनों और पाठन का मायधान रहना चाहिये।

। ( मार्च '४३ )



## आधुनिक हिन्दी कविता

भारत-दु राबू का स्वर्गवाम हुए प्राय ५५ वर्ष हुए हागे । उनरु समय म साहित्यिका ने खड़ा वाली का बरल गय के लिए अपनाया था । उनके पीछे जन पत्र के लिए भी खड़ी वाला अपनाने का आन्दोलन चला ता उनरु समय रु अनेरु साहित्यिका ने इम बात का विरोध किया । स्वर्गीय द्विवेदीजी सरस्वता के सपादरु रने तर इस आन्दोलन को एक नई गति मिला । यह कहा भा अनुचित न होगा कि यह आन्दोलन तभी से ठार ठार आरम्भ हुआ । द्विवेदीजी ने अरु से कुवल ३७ वर्ष पहले—स० १६६०—म सरस्वता का सपादकरु ग्रहण किया था । पतञ्ज के 'पहाव' का निकले अभी १५ वर्ष ही हुए हैं और उाकी 'प्राभ्या' का निकले अभा पूरा एक बष भा नहीं हुआ । हिन्दी कविता की प्रगति इमीस समझा जा सकती है । किसी भा साहित्य रु लिए यह गति गव का वस्तु हा सकता है । भारते-दु के पश्चात् हिन्दी साहित्य और विरापरु कविता म जा परिवर्तन आवर्तन हुए हैं, उनरु तुलना हिन्दी रु हा रीतिरालान साहित्य से की जा सकता है । रानिराल का साहित्य विभिन्न भाग अा से निर्मित है, ता खुवा एरु दुसरे का विराधिना है । एरु आर मतिराम की कविता है ता दुसरा आर भूपणु का । दाना एरु ही युग के कवि य, रुदाचित् एरु ही माता पिता क पुत्र भा य । आधुनिक हिन्दी कविता म भी 'प्राभ्या' और 'दुलारु दाशरुला' एरु हा युग का रचनाए है । इमसे इमार युगकी प्रगति अथवा दुगति भला-भावि समझी जा सकती है ।

मरी समझ म हिन्दी के लिए यह खणरुनीता नया नरु

है। मध्य युग में मूल साहित्यिकों का अभाव नही रहा। कुछ पाश्चात्य देशों की अपनी भावतरंग में मध्ययुग अतिरिक्त दिना तक रहा, जन्मा चाहिए कि अभी तक है, परन्तु मध्ययुग के जैसे यशस्वा कवि हिन्दी में हुए, वैसे बहुत कम भाषाशास्त्र के भाषाशास्त्री साहित्य में हुए हागे। हमारे साहित्य-समझने के लिए इन कवियों में भा बहुत कुछ है। विशेषकर तुलसी का भक्ति सत कविता तथा भूषण का भक्ति गीत कविता में भाषा का वह स्थापन है, जो हम अभी तक अपने काव्य की भाषा में नहीं उत्पन्न कर सके। हमारी कविता की गथा उन कवियों का वाणी का भक्ति जनता के कठ में नही गनी। परन्तु वह भा स्मरण रखना चाहिए कि हमारे युग की आयु अभी ३०-३५ वर्ष की है तथा इस युग में कविता के अतिरिक्त साहित्य के अन्य अंगों का भी विकास हुआ है। आधुनिक कविता का प्रगति का देखते हुए हम कह सकते हैं कि जब हमारे देश में पूरा तरह आधुनिक युग आयागा और हम अपने उन देशों के साथ कथा मिलान कर चल सकेंगे, तब हमारे मध्यकालीन साहित्य का भक्ति हमारा आधुनिक साहित्य भी निरन्तर के आधुनिक साहित्य में अग्रतम स्थान पा सकेगा।

इस युग का हिन्दी कविता में दो प्रमुख धाराएँ गढ़ा हैं। एक तो श्री मैथिलीशरण गुप्त तथा हरिऔध का गली पुराना परिपाटा का तथा दूसरी प्रमाद और पतनगाली छायावादी प्रणाली की। इनके पश्चात् एक नया धारा आनन्द धारे धारे बन रही है, जिसे अभी 'प्रगतिशील' कह लत हैं। इन धाराओं के हिन्दी भाषा तथा साहित्य को पुष्ट किया है। यद्यपि वे अभी-कभी एक दूसरे का विरोध करती प्रितानी देती हैं, परन्तु उन्होंने अनेक प्रकार से भाव का व्यक्त-शक्ति का ज्ञान है अथवा कवि मानना का प्रसार दिया है। इन धाराओं के पहले का साहित्य की परम्परा स्थापित हो चुकी थी अथवा हो रहा थी, वह

नगण्य नदी है। भारतेन्दु युग में ऐसी अनेक विशेषताएँ हैं, जिनसे आधुनिक साहित्य का जन्म एक परम्परा स्थापित करने से लाभ होगा। भारतेन्दु युग में जो गद्य लिखा गया, उसमें भाषा की एक अपनी सजावट थी, जो पाठक को परिमार्जित गद्य में कम मिलती है। प्रतापनागयण मिश्र जैसे लेखक घड़ल से ग्रामीण प्रयागा का अपनाते थे, और इसलिए उनकी भाषा में अधिक प्रवाद और चीजन हैं। उनकी भाषा, मालूम होता है, पैसाडे का धूलि में खली है। यद्यपि लेखक की भाषा, मालूम होता है, मुँह में काम लगाकर प्राई है। गद्य में ही नदी, उस काल के पद्य में भाषा में सजावट का चिह्न मिलते हैं। यद्यपि पद्य की भाषा प्रबन्धाभावा, फिर भी जैसे जन-मपक के चिह्न उस काल का बहुत सा स्मिताया में मिलते हैं, वैसे आज का स्मिता में कम। उस समय के राजनातिक वातावरण की फलना के लिए, उस समय की राजसेवा की नीति का विचार के लिए, और तब प्रतापनागयण मिश्र का य पत्तियाँ के लिए—

रहुतेरे जन द्वार-द्वार भगन पनि डालहि ।  
 तनिर नाच द्वित दान रचन जदि तदित गोलहि ॥  
 रहुत लाग परदेस भागि करु भागि न सङ्गी ।  
 चारी बडाली करि रदाएर पथ तरुदा ॥  
 पट अथम अनगिनति अरुम करम करावत ।  
 दागि दुग्गा पुन अमित दुग्ग न्यि उपजावत ॥  
 यह न्यि धरुत यह न हाँ फहुँ माइ मुनि लेइ ।  
 रहुँ नाप दे मागि अरु गवन नदि देइ ॥

भारतेन्दु गद्य का स्मिता में भी इस प्रकार के सजावट वर्णन मिलेंगे। उनका राजनातिक उपलक्ष्य जिस सामाजिक तब पहुँच चुका था, वह आप उनकी एक पहली में जान सकते हैं—

भातर भीतर सब रस चूसै,  
बाहर से तन मन धन मूसै ।  
जाति रातन म अल तेन,  
क्या सगि साजन, नहिं अयेन ।

देश न लिय भारतेंदु का मंगल नामनाएँ कहा-कहा उड़े सरल  
टंग स व्यक्त दु हैं, जैसे उनका—“सल गनन सा मजन दुखा नहिं  
हो”, हरिपद मति रह” छन्द म । उस परम्परा न कविता म एसा  
हा सरलता, परन्तु सरलता न माय तमना भी, मिलता है । बाहर  
पाठन का य पाठनाँ कितना सरल हैं—

बदनाय वह दश, जहाँ न दशा निज अभिमाना हा ।  
राक्षसता म वैव पस्वर परता क प्रचाना हो ।  
निंदनाय उहे दश, जहाँ क दशा निज अज्ञाना हा ।  
सब प्रकार परतन पराई प्रभुता न अभिमाना हा ।

इन कविता की सरलता प्रामाण्यता स मिलता तुलता है, परन्तु  
अपना अलंकार शायता क भातर वह उतना हा सरल है । मत्त-  
नारायण कवित्र, राज देवाप्रसाद पृथु आदि का दश-सम्बन्धा  
कविताएँ रसा पारपाटा का है । देवाप्रसाद पूर्य कविता म गला  
शाली अपनान क विगया य, परन्तु खडा-जाला म उहाने स्वय कविता  
की थी । स्वदेशा न आन्दोलन स प्रभावित हाकर उन्हीने ‘स्वदेशा  
मुहल’ लिखा था । उस आर ‘भारत भागनी’ का एक माथ मिलाकर  
पढ़ने मे इस परिपाटा का सर्जितता और उमक अटूट प्रमना पता चल  
जायगा । पूर्यता ने गाढ पर लिखा था—

गाथा, माना जा मिलै उमना हा पाशर  
नाजे अगीकार तो गहै दश की नाक  
रहै देश का नाम स्वदेशा कपडे पहने  
है ऐन हा लाग दश के सच्चे गहने

हृदय का नैसर्गिक उद्रेक समझते हैं इसलिये यह नहीं चाहते कि कवि अपनी संस्कृति का प्रेरित करे। हम धैर्यपूर्वक उस नैसर्गिक उद्रेक की राट-जाहो के लिये तैयार रहते हैं। अधिकांशतः जब कवि हृदय में भावना उमड़ता है तो वह उसने व्यक्तित्व अथवा अद्वैत का स्वर। राजनीति तथा सामाजिक परिस्थितियों से जैसे उसका कवि हृदय उमड़ता ही नहीं। यदि उमड़ता भी है तो इसलिये कि उनमें उसका अद्वैत का सम्बन्ध है। सामाजिक परिस्थितियों के प्रति उसका विद्रोह भी कठोर-रस में भीगकर निरलता है।

एक ओर सामाजिक परिस्थितियाँ हैं, दूसरी ओर अपना अद्वैत लिये मध्यमिष्ठ श्रेणा का नवयुवक कवि है। दोनों के मेल से अतृप्त विषादा का जन्म होता है और यह अतृप्त विषादा ही निश्चयेदना का जनक है। नवयुवक कवि उस प्राध्यात्मिक रूप दे देता है। एक आधुनिक कवि ने अपनी कविता पुस्तक का नाम ही इस व्यापार का समर्थन किया है। समस्त समाज उस निश्चयेदना के मारे मनोविज्ञान का भाँसकर दिया है। कवि ने लिखा है—

“आज यदि सामाजिक संघर्ष के कारण एक नीचता या तन्यता अपने स्नेहपात्र का प्राप्त उदाहरण करते और यदि वे विषादा और विद्रोह का हृदयग्राहक गीत गा उठते हैं, तो यह तन्यता के लिये कि वह केवल उदाहरण का वेदना है या कि वह पड़ा है—यह वेदना तो समूचे मानव हृदय का चिह्न है। कविता का प्रत्यय में केवल प्राथमिकीति दिग्गद देने वाला तुम्हारा वास्तव में प्राध्यात्मिक है—आज का कविता में गदना और गायन का सम्बन्ध ही रहा है।”

इस आधुनिक कवि ने सदा और गायन का सम्बन्ध में कविता का भण्डार का भण्डार का भाँसना है। तन्यता और तन्यता अथवा रोह पाया तो नहीं पात, उनकी धरना कवि के लिये समूचे संस्कृत हृदयों का चिह्न बन जाती है, माना हम प्रसार का

बान्धव करना म सस्त्रि का एक लक्षण है। इस दुःखवाद का यह प्राध्यात्मिक भावता है, यद्यपि उसका कारण नवयुवक और नवयुवता का न भिन्न करना ही है। छात्राचार्य के विद्वत् रूप में हम यह न भिन्न करने में पक्ष दुःखा आत्मवाद का पक्ष का भिन्नता है। कविता के लिए यह करना कि वह अपने और अपने का समान है, उसका पक्षान्तर प्रालोचना है, यदि इस पर माया उसका समर्थन करे तो वह प्रालोचना में पर हा जाता है।

एक छात्राचार्य कवि के लिये यह आश्चर्य ही जाता है कि वह पुराना परम्परा का विचार करे। वह अपनी कविता का भावभाव से जैन प्रयोग चाहता है। कविता का जनता तक लाने का महत् साधन कवि-समन्वय है। कवि समन्वय में कवि का राष्ट्रीय मुन्दर पाठक के हृदय में गुम्न एक प्रतिष्ठा होता है और वह प्रतिष्ठा कवि तक पहुँचना है। इसमें मन्दह नया कि मायात्मक धनाया में हीन और विचार शक्ति का प्रभाव होता है और कविता के चरम उत्कर्ष का नश्य करना उनका लिए प्रायः प्रसम्भय होता है। पण्डु हमने साथ ही पुस्तक में कवि का मन्द-मन्द पाठक तक नया पहुँचना। पण्डु-सा गाते काय अपने दर से प्रकट कर सकता है जो जाता जान सकता है, पाठक नया। जो कहना कि कविता केवल मन में पनी जान और कवि के रूप का उसमें दूर गना जान, प्रताया के साथ अन्तर्गत करना है। पण्डु में लागू का 'गम का जानपूजा' और 'पुनःप्राप्त भगवाना का हृदय मुन्दर पण्डु-हृदय आनन्द प्रा जाता है, वेम ली ही देवता के उनसे दूर भागत है। हमारे कवि-समन्वयता में एक और प्रवचनी के माल गीत गाते जायें, और हमारी प्रा 'कुलगादाय' और 'शान का शक्तिपूजा' जैसा कविताएँ पना जायें, और जाना से ही जनता का नूनाधिक समर्थन हा, हम हिन्दी कविता के लिये एक शुभ लक्षण ही समझता

चाहिए। शेरमधुकर के समय में नाटका द्वारा कविता जनता के तक नहीं आती थी, इसलिये उसमें यद् सजीवता है, ता यद् क अंग्रेजा साहित्य में बहुत कम है। यदि शेला, मोट्टन या टेनीसन भा किंडा कवि-सम्मेलना में अपना कविताएँ सुनाते, ता निश्चय उनकी प्रशंसा मिलताएँ कम ही आती।

ऊपर किम आधुनिक कवि का उल्लेख हो चुका है, उषा की भूमिका से कवि-सम्मेलना के प्रति छात्रावादा दृष्टिगण दोखये। कविता करना है—

“हिंदी भाषा का राजता न मरथ म विचार व्यक्त करते समय हमारे सामने कवि सम्मेलना का मस्था आकर मटका लगता है तहसाय राचनैतिक कर्षणोंस दाने को है ता कवि-सम्मेलन भा उषा साथ नत्था है, जिला राचनैतिक सभा है ता वहाँ भी कविया का जमान मीनूद है म्यामी दयानन्द का निवाण निरि का उल्लेख है ता वहाँ जना लाग हांन रहे हैं लतरानी, कृष्णाष्टमी, रामनयमी, गृहहरा, दिवाला, होला, हर त्योहार पर कवि सम्मेलन का याचना मीनूद है। गाया जनाय, कवि-सम्मेलन क्या है, एन यवाल जान है।”

कवि महादय ने इन कवि सम्मेलना को इस प्रकार भर्त्सना कर के एक अखिल भारतीय हिंदी कवि सम्मेलन का प्रस्ताव किया है। उसी दृष्टि में ‘हिंदी भाषा का विश्व वेत्ता का जगणा’ जना है और विश्व वेत्ता का वाणी सुना क लिये यदि एन विश्व कवि सम्मेलन स्थापित न हा मर ता अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन ता स्थापित न ही जना चाहिए।

कवि सम्मेलनों में मुकवि और संस्कृति का अधिक विचार होना चाहिए, परन्तु दुषध लिय उसी सभा में कमी करने का आदर्श यता जना। गजानन कौशिक और त्याहारा में यदि कवि सम्मेलन शन है ता सुग क्या है! हमारे सामाजिक जीवन क प्रत्येक अङ्ग से

कविता क्या न निरुद्ध सम्पर्क में आये ? कवि का कर्तव्य है कि वह सामाजिक विकास में सहायता दे, समाज के विभिन्न अङ्गों को सुदृढ़ और समृद्धि का आधार प्रदान करने के लिए लोगों को प्रभावित करे। हमें यह न भूलना चाहिये कि उच्च कविता का स्तर जन-संपर्क से दूर रहकर नहीं बन सकता। गुलाम का फूल धरती से अलग हवा में नहीं फिलता, उसका लिए मिट्टा, पानी, हवा, सभी कुछ चाहिए। तभी उसमें रूप और गंध का विकास होता है।

मरा तात्पर्य यह नहीं है कि लासप्रिय कविता केवल कवि-सम्मेलन में होती है अथवा कवि-सम्मेलन में होने वाला सभी कविता लासप्रिय होता है। श्री मैथिलीशरण गुप्त कवि-सम्मेलनों से दूर रहते हैं, परन्तु वे हमारे लासप्रिय कवियों में हैं। कवि-सम्मेलनों में ऐसा कविता भी लासप्रिय हो सकता है जो सामाजिक दृष्टि से हानिकारक हो — परन्तु जो स्वर की मिठास के कारण श्रोताओं का सुख कर दे और वे मदक करने नश में आ जायें। रचनता के गीत अत्यन्त लासप्रिय हैं, परन्तु वे एक पतनामुख परम्परा के अन्तिम गीत हैं। उन स्वरों का न दुहराया जाना ही समाज के लिये हितकर है। यह नया परम्परा जो आज पतनामुख दिग्दर्शक देता है, प्रसादजी से आरम्भ हुआ था। प्रसादजी का 'आँसू' हिन्दी का वेदनाधार का उद्गम है। वैसे तो व्याख्यादा कवि के लिये सामाजिक सङ्घर्ष से दूर भागकर एक काल्पनिक स्वर्ग बनाने अथवा विषाद की उपासना करने के अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं रहता, फिर भी नवयुग के व्यक्तिवादी अथवा छायावादी कविशा ने हमारी सृष्टि तथा दृष्टिकोण का उदार बनाया है। परम्परा के प्रति यदि विद्रोह न होता यह स्वच्छ सारित्य का सरस्यती न बने। इन विछले बाम-ताम कवियों में हिन्दी में नवीन और पुरातन दोनों धाराएँ प्रवाहित रही हैं और उनका एक-दूसरे पर शुभ प्रभाव ही पड़ा है। आधुनिक हिन्दी कविता



में हमें विभिन्न मस्मृतियों का समन्वय मिलता है। गुप्तना का 'गुरुकुल' देखिये, निरालाजी की मिक्वापर 'समर में अमर कर प्राण' वाली कविता देखिये और प्रसादजी के बौद्धकालीन नाटक देखिए और विभिन्न मस्मृतियों का मिलन स्पष्ट हो जायगा। प्रसादजी ने हिन्दी कविता में पुरानी भारतीय मस्मृति का पुनर्जीवित किया है। प्रसादजी का व्यक्तित्व करुणा और प्रेम के संदेश में अधिक व्यक्त हुआ है, 'आँसू' की वेदना में कम। उनके नाटकों और 'कामायनी' के आगे 'आँसू' बहुत छाना लगता है, परन्तु जैसे कभी-कभी छोटे तालों से बड़ी-बड़ी नदियाँ निकलती हैं, वैसे ही 'आँसू' से एक वेदना-धारा उमड़ पड़ी। प्रसादजी के बौद्ध तथा आर्य मस्मृति में समन्वय को लोग भूल गये। प्रसादजी की करुणा करुण-रस नहीं है, उनके नाटकों में प्रेम के संदेश के साथ मर्त्य भा है।

प्रसादजी से मिलती-जुलती पन्तजी की विश्वप्रभुत्व की भावना है। वे सदा से विश्वमैत्री से पूरा एक सुन्दर सगर की कल्पना करते रहें हैं। उन के प्रगतिवाद से भी उनके फाल्गुनिक सगर के सौन्दर्य में कमी नहीं हुई। निरालाजी अद्वैतवादी हैं और साथ ही पन्त और प्रसाद से बढ़कर व्यक्ति अथवा व्यक्तित्ववादी। प्रगतिवाद पन्त और प्रसाद में भी है, परन्तु उस व्यक्तित्ववाद में गलत व्यक्तित्व ने कई जगह नहीं पायी। निरालाजी का अद्वैतवाद चाहे जितना विशद हो, उमम उनका व्यक्तित्व अथवा अद्वैत नहीं मानता। बहुत पहले 'मतवाला' में उन्होंने लिखा था—

मरा अन्तर वरु कन्तर

देना जो भरमक भक्भार

और 'परिमल' की एक कविता में उनका अद्वैत अहम्ता ही एक विकसित रूप जान पड़ता है—

तुम ही महान्, तुम सदा ही महान्,

है नश्वर यह दीन भाग,  
कायरता, कामपरता,  
ब्रह्म हो तुम,

पद-रज भर भी है नहीं पूरा यह विरज-भार ।

निरालाजी के इसा अहङ्गा चित्रण हमें 'राम की शक्ति-पूजा' और 'तुलसीदास' में भी मिलता है । 'तुलसीदास' का मानसिक संघर्ष और उनके विद्रोहा प्राण जो 'ज्ञानोद्धत प्रहार' करते हैं, गास्वामी तुलसीदास के नहीं हैं, तुलसीदास और राम दाना ही कवि निराला के दो रूप हैं । ऐसा उद्धत व्यक्तित्व मुझे अन्य किसी साहित्य के व्यक्ति-वादी अथवा रामासिद्ध कवि में देखने को नहीं मिला । परन्तु यह व्यक्तित्व एक व्यक्तिवाद का है, और उद्धत है, इसीलिए उसके साथ उसकी छाया भी भाँति निपाद भी है ।

जिन कवियों में यह व्यक्तित्व नष्टप्राय है, उनकी कविता में पेश्वल निपाद है । हिन्दी के अनेक कवियों ने आत्मघात पर बड़ी सुन्दर रचनाएँ की हैं । जैसे—

अपने पर मैं ही राता हूँ,  
मैं अपनी चिता सँजाता हूँ,

चल जाऊँगा अपने कर से रख अपने ऊपर अगारे ।

कवि भी मनुष्य है और मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अतः समाज को उसने इस कृत्य पर बहुत प्रसन्नता नहीं हो सकती । यह छायावाद का अति विवृत रूप है जब व्यक्तिवादी कवि परिस्थितियों से हारकर अपने व्यक्तित्व का ही नष्ट कर लेना चाहता है ।

हिन्दी में प्रगतिशीलता का आन्दोलन नया है । प्रगतिशील कवियों में बहुत से वेदनावादी और छायावादी भी भर्ती हो गये हैं । पुराना अम्याम दर से छूटता है, वहाँ बदलने से विपाही थोड़े ही बदल जाता है । कुछ लोगों की मानव मन्वधी रक्षण कविता छाया

जादी वेदना का रूपान्तर है। छायावाद व आत्ममन और स्थाया-सञ्चारी भाव आदि प्रगतिशील कविता में भी मिलेंगे। इसका एक अर्थ सुन्दर उदाहरण एक प्रगतिशील कहानी में देखने का मिला था। कहानी में हंसिया हथौड़े का उल्लेख था, परन्तु हथौड़े को निरन्तन पुरुष कहा गया था और हंसिया का प्रकृति। पन्तनी ने कार्ल मार्क्स पर भी कविता लिखा है और गांधीजी पर भी। मूलतः दाना में कोई अन्तर नहीं। मार्क्स गांधीजी हैं और गांधीजी मार्क्सवादी, और दाना ही छायावादी हैं।

अभी छायावादी युग का अन्त नहीं हुआ, नवीन कविता का दृष्टिकोण में पूरा परिवर्तन नहीं हुआ। उनका सबसे बड़ी निर्मलता यह है कि उनकी भावनाओं का आधार पुस्तकें हैं, जनता नहीं है। उनका भीतर अत्यधिक तटस्थता है, प्रेमचन्द्र का भाँति उहोने अपना आपको जनता के पास नहीं पाया। पन्तनी ने इस बात का 'ग्राम्या' में स्वीकार किया है। 'ग्राम्या' की रचनाओं के लिए उन्होंने कहा है—“इनमें पाठकों का प्रामाण्य के प्रति कवल शौद्धि महाभूति ही मिल सकती है। ग्राम जीवन में मिल कर उनके मातर से ये अग्र्य नहीं लिखी गयी हैं।” ऐसी स्थिति अन्य कविता में कम देखने का मिलती है, परन्तु पन्तनी ने शौद्धि महाभूति का समर्थन किया है। उन्होंने लिखा है—“ग्रामों की उत्तमान दशा में क्या करता कवल प्रातःकियात्मक साहित्य का जन्म देना होता।” यदि गाँववालों में घुलने मिलन का अर्थ उनके दुःखस्कारों तथा अधनिश्चय का अभाव है तो कविता अग्र्य प्रतिनियात्मक होगा, परन्तु यदि घुलने मिलन का अर्थ उनकी वास्तविक दशा का ज्ञान करता है तो कविता का प्रतिनियात्मक होना आवश्यक नहीं। 'ग्राम्या' की एक कविता में पन्तनी ने यह भी लिखा है —

“दिग रहा हूँ आन विश्व का मैं ग्रामाण नयन से।”

पन्तजा के सुन्दर नेत्रों का ग्रामीण मान लेने से इस कविता को प्रतिक्रियात्मक मानना पड़ेगा। कुछ लोग इस प्रगतिशील आन्दोलन से निराश हो गये हैं और समझते हैं कि शैली और रवीन्द्रनाथ वाली कविता का ता अन्त हो गया है। इस मशान-युग में कविता के लिए ठौर कहाँ ! परन्तु अभी हमारे यहाँ मशीन-युग पूरी तरह आया कहाँ है ? अभी भारतवर्ष में नये उद्योग धंधा का पूरा बोलबाला नहीं हुआ। इन इत्ताश कविता प्रेमियों का आशा रखनी चाहिए कि आगे अभी बहुत-सी निराशावादी कविता आती, क्योंकि मशीन-युग की परिवर्तता का पूरा विकास होने पर यत्नेर कवि अपने लिए कहा काल्पनिक स्वर्ग बनायेंगे और वे छायावाद का कविता का चिरजीवी नहीं ता पुनर्जीवी अग्रश्य करेंगे ! परन्तु निह देश और माहित्य से प्रेम है, वे इस नयी परिवर्तता की ललकार को स्वीकार करेंगे और उसमें युद्ध करके विजयी होने।

आजके हिन्दी कवि के लिए विकास-पथ खुला हुआ है। छायावाद की करिया ने भाषा की यज्जना शक्ति का विस्तार किया है, उन्होंने छन्दों में नये परिवर्तन किये हैं और यचना कविता में नये-नये ढङ्ग की गति का जन्म दिया है। नये कवि के लिए पुरानी परम्परा से सीपने को बहुत कुछ है। उमर सामने ऐसे आदर्श हैं, जिनसे वह सीप सकता है, जनता के लिए किस प्रकार का माहित्य लिखना चाहिए। पुस्तकों की विधा की उमर क्या नहा। उमरमें केवल लगन और मचाइ होनी चाहिए। जनता से मचा सहानुभूति ही नहीं, जनता का निरुद मे जान भी होना चाहिए। भाग्य-दु से लेकर आज तक की हिन्दी कविता का विकास प्रति तान गति से होता रहा है। माहित्य के एक विशद प्रवाह में काव्य धाराओं का गति एक-सा अग्रया एक ही आर का नहा गी। परन्तु उस विशद प्रवाह का दिशा स्पष्ट है। पुगनी तथा नयी, दाना ही परम्पराओं के करियों में दाप रहे हैं, परन्तु उनसे

साहित्य की जो लाभ हुआ है, उसके सामने हानि नगण्य है। नवसंस्कृति के करि तम तक हिन्दा कविता का नवान प्रगति न दे सकेंगे, जबतक उन्हें अपने पूर्ववर्ती काव्य-साहित्य का, अपनी परम्परा का ज्ञान न होगा। अपने पूर्ववर्ती कवियों से हम नितनी बातें ले सकें, लेनी चाहिए, उन बातों में जय हम अपनी नयी बातें जाड़ेंगे, तभी ठीक ठीक काव्य-साहित्य का विकास सम्भव होगा।

( दिसम्बर '४० )

## छायावाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

छायावाद शब्द की अनेक व्याख्याएँ हा चुका हैं और छायावाद कविता को परखने के लिये आलाचना के अनेक मापदण्ड बनाये जा चुके हैं, परन्तु 'प्या-प्या सुरभि भया चहै' की तरह हिन्दी के विद्यार्थी-भृग को निरूलने का राह अत्र भी नैहा मिली ।

छायावाद के जन्म काल में आचार्यों ने उम रँगला और अग्नेता की जूठन कहकर उसकी व्याख्या करने के कष्ट में रचना चाहा । फिर शैली विशेष कहकर उसे टाल दिया । कुछ समर्थकों ने उसे स्थूल के प्रति सुद्धम का विद्रोह कहा और कुछ ने शिशु-कवि के लिये उसे माँ का गाद बताया । लेकिन छायावादा साहित्य व्याख्याओं की परभाव न करता हुआ फलता फूलता रहा और हिन्दी के एक सम्पूर्ण युग पर अपनी अमिट छाप डालकर उसने हमारे साहित्य की श्राद्धि मा री ।

छायावाद के मुख्य स्तम्भ प्रसाद, पत और निराला रहे हैं, आग चलकर श्रीमती महादेवा वमा उम धारा को पुष्ट करनेवालों में सत्र में आग रहीं । हमें अपनी व्याख्याओं की चिन्ता न करके इन कवियों के समूचे साहित्य का अध्ययन करना चाहिये और साहित्य के ऐतिहासिक क्रम विकास का ध्यान में रखते हुए उसकी विशेषताओं का परगना चाहिये । हमें यह भी देखना है कि छायावादी कविता हिन्दी की के लिये का अयोग्य चीज है या उस तरह की धारा नूतन भाषाओं में भी बही है ।

छायावाद के प्राथमिक विरोधियों ने बहुत छिड़ले ढग से इस मयता का देगा था । अग्नेता की समारटिक कविता और रँगला में

रवि बाबू के गीतां से उद्वेगित नयी हिन्दी कविता की तुलना का श्रीर वे इस नतीजे पर पहुँचे कि उमम मौलिकता नाम का नहा है, यह भारत वर्ष की पवित्र भूमि के लिये एक विदेशी पौधा है, जो यहाँ पनप नहीं सकता। यदि यह विदेशी हाता, तो विराध की आंधियाँ में कभी का निर्मूल हा कर शून्य में विलीन हा गया हाता। परन्तु वह राद ऐसा अनुपम और अद्वितीय देशज भा नश है, जो भारतवर्ष की धरती में ही पनपा हा और उमे देखते हुए विदेशी भूमि उखर ही लगती हा।

रवि बाबू को किसी जमाने में गगल का शेखी कहा जाता था और निरालाजी का हिदा का रीद्रनाथ तो नहीं परन्तु यथेष्ट अनादर के साथ उनका अनुभूति अवश्य कहा जाता था। शली, टाकुर और निराला के युगा की परिस्थितियाँ में एक बात समान रूप से विद्यमान है और वह है पूँजीवाद का प्रारम्भिक विकास। तीनों युगा में हा यात्रिक पूँजीवाद से उत्पन्न होनेवाली त्रिपम परिस्थितियाँ के प्रति धार असंतोष है, इसके साथ ही पूँजीवाद ने जा पुरानी रग अङ्गलायाँ का कर्कर कर आत्मविश्वास पधिरा के लिय नये सगठन और नये प्रगति का मार्ग निश्चित किया, उसकी चेतना भी इन कवियों में विद्यमान है। सामाजिक पृष्ठभूमि में समानता है, ता समाज का प्रतिविरित करनेवाले साहित्य में भी समानता होगा अनिवार्य है।

मध्यकालीन अङ्गलायाँ के टूटने से मनुष्य का जो नया स्वाधीनता मिली, उसका एक रूप व्यक्तित्व की माधना, मानव के विरुद्ध 'अहम्' की प्रतिष्ठा, उसकी निरपन्न स्वाधीनता की कल्पना है। यही व्यक्तित्व 'अहम्' अथवा निरपन्न स्वाधीनता उगने साहित्य का उद्गम है। तथा कवि अपने अन्त का अपनी माय-भक्ति की गंगायाँ माता है। स्वामी कवि ने 'नय गाह के हुडूम' से प्रगुणा पाइ थी, भक्त न इष्ट के 'तदण अरुण शक्ति नयना' में। परन्तु छायावादी

सुग में यह परगण टूट गई। यदि अब भक्त नहा है, न वह किसी नगाधीश का चाटुकार। अपनी रमिता का स्वात यह स्वय है, अथवा किसी रहस्यमयी शक्ति की व्यञ्जना का माध्यम बनकर स्वात को यह अलौकिक बना देता है। इसलिये 'आपनाते आपनि विकसि'—यह उक्ति रवीन्द्रनाथ की ही नहीं, सभी रोमांटिक और छायावादी कवियों की प्रतिभा उभरती पर चरितार्थ होती है। निरालानी ने 'पत और पल्लव' में 'अपने' शब्द के प्रयोग की ओर इंगित किया है, परन्तु यह पन्तनी या यदि रावू की विशेषता न हानर सभी रोमांटिक कवियों का सामान्य पूर्वज है। स्वय निरालानी की कृति में—

दूर था,

निचकर समीप था म दुः

अपनी हा दृष्टि में, (प्रेयसी)

अधकार था हृदय

अपने हा माग स मुझ हुआ, निपयस्त। (उ००)

दरता में प्रकृति चित्र—

अपनी ही भावना की छायाएँ चिर पापित। (रेता)

यह 'स्व' की चचा हमें रहस्यवाद की ओर लाती है। छायावाद में रहस्यवाद जितना है, और जितना है, यह असली है कि नरली, छायावादी कवियों को इशर का खानात्कार हुआ है, साक्षात्कार की उन्हें उत्कटा भी है या नहीं,—इस पर काफी विवाद हो चुका है। उद्भुत सम्भन इस पन म है कि न ता साक्षात्कार हुआ है, न है उसका उत्कटा। यही बात और देशों के छायावादी अथवा रोमांटिक कवियों पर भी लागू हाता है। अशुद्ध रूप से रहस्यवाद उन सभी में मिलता है, और इसका भी कारण जाना चाहिये।

यहाँ पर रहस्यवाद के प्राचीन रूपों की चचा न करके रोमांटिक कवियों के रहस्यवाद के दा पल्लुओं पर ध्यान देना काफी होगा।



एक तो वह रूप, जिसमें वह अहम् का ही असीम विस्तार है—‘पदरु  
 भर भा है नहीं पूरा यत् विज्वभार’ अर्थात् नये युग में ‘रज’ का  
 निरपेक्षता चरम सीमा को पहुँच गयी है। दूसरा रूप यह है जब ‘रज’  
 परास्त होकर रहस्य की कल्पना में पलायन का सहाना देती है।  
 एक में विस्तार और अतिरिक्त स्वाधीनता है, तो दूसरे में पराजय  
 का अर्थात् सागर और आत्मघात। पूँजीवाद से इन दोनों ही रूपों का  
 घनिष्ठ संबंध है। सामंतवादी युग की शृङ्खलाएँ छिन्न होने से जहाँ  
 मुक्ति की अतिशयता का भाव होता है, वहाँ नये बंधनों का दृष्ट हो  
 पर यही अतिशयता पराजय और पलायन की भावना में भी बदल  
 जाती है। पूँजीवाद के आरंभ काल में नयी आशाओं से आन्दोलन  
 कवि-हृदय में पहला रूप जाग्रत होता है पराजयवादी रहस्यवाद  
 रूप बहुधा आगे का जाता है छायावादी कविता में विद्रोह और  
 पलायन, आज और कल्याण, समार को चुनौती और दीनतापूर्ण  
 आत्मनिवेदन—इन विराधी भावों का कारण पूँजीवादी युग का  
 अमंगलित्व है, जो स्वाधीनता की भावना को जगाती है परन्तु उसे  
 पूरा नही कर सकती।

यह पलायन अनेक रूपों में प्रकट होता है। कवि ऐसे युग का  
 कल्पना करता है जब सत्कार में सुख ही सुख था। प्रथम, आदि  
 जैसे शब्दों की भरमार का यही कारण है, जो सृष्टि के आरंभ में था  
 यह निष्कलुष और सुन्दर था। ‘आदिम बसंत प्राते’ के अतिरिक्त  
 मध्यकाल का ऐश्वर्यमय जीवन बड़ा भला लगता है। सामंतशाही  
 बंधन भूल जाते हैं, जिनके टूटने में कवि को ये स्वप्न देखना सार  
 है। मध्यकाल न सही ता और बाद युग कवि का लिय न्यूनाधि  
 रूप में आदर्श बन जाता है। पुरातन युगों के चित्तन में मदा पलायन  
 का ही भाव नहीं रहता, कवि अपनी सृष्टि का प्रगतिशील परंपरा  
 रक्षा में करता है। प्रगादधी ने बुद्धकालीन भारत की गान्धर्वि

देन की श्रम हमारा ध्यान आकर्षित किया है। निरालाजा ने अद्वैत मत को अपने चिंतन का आधार बनाया है परन्तु शंकराचार्य और उनके समर्थकों के साथ प्रतिक्रिया का जो भाँसा रहा है, निरालाजा उसकी ओर सतक रहे हैं। संस्कृत के द्वारा उन्होंने दिग्गज ही किया है, अपने मत का प्रतिशामात्र का है, जाति की जीवनीशक्ति का वर्द्धन नहीं। इतिहास के प्रति जितना मतक और जागरूक दृष्टिकोण निरालाजा का है, उतना और किमा कवि का नहीं है। 'प्रभावर्ती' उपन्यास में उन्होंने बार-बार मध्यकालीन शरदारों द्वारा जनता के शोषण का उल्लेख किया है और उसे पराजय का कारण बताया है। यह दृष्टि एक युग आगे की है; छायावाद का महाविघ्न कल्पना नहीं है।

पिदाद और पलायन की अमगति छायावाद के अन्य अंगों में भी मिलेगी। प्रकृति-वर्णन में छायावादी कवि मध्यकालीन कवि-कल्पना की परिधि से बाहर आकर प्रकृति से निकट संपर्क स्थापित करता है। वह प्रकृति को मानवीय सदर्म में दरपता है और मानव-जीवन से उसका नया सम्बन्ध स्थापित करता है। दूसरी ओर वह प्रकृति का रहस्यमयी भी बना देता है, जिससे वह अरूप हास्र अपना अस्तित्व हास्र देती है उस अरूप के बाहर और कुछ नहीं रह जाता। जीवन मर्ष से पलायन करके वह प्रकृति की गोद में सुख की नाद माना चाहता है। पूँजागदी युग में विज्ञान का दुष्प्रयोग देखकर वह उसका सदुपयोग का प्रति भाँ उदासमान हो जाता है और प्रकृति को ही मानव जीवन का आवश्यकताओं का पूर्ति के लिये एकमात्र शानाम्बुधि मान लेता है। कुछ ऐसी हास्र नारी का सम्बन्ध में भी हास्र है। छायावादी कवि स्वाधीनता का सम्बन्ध हास्र है, मध्यकालीन शानता का वह विरोध करता है। वह दो हृदयों के मिलन और पिदाद के गीत गाता है, नारी का विलास-व्यापार की पूँजा मात्र

नयी समझता। परन्तु पूँजीवादी समाज में नारा पूँजी की वस्तु नहीं ही रहती है। उसने व्यक्तित्व के विकास पर पूँजी को पूजनेवाले समाज के रुढ़े बन रहते हैं। विवाह का आधार प्रेम नहीं होता, वरन् पूँजी का आदान प्रदान होता है। इधर कवि नारी की अप्सरा रूप में कल्पना करता है, उसकी उपामना के गीत गाता है, भाव और छटा के अर्थ चलाता है। परन्तु यह न भूलना चाहिये कि यही विधवा और पत्थर ताड़नेवाली मचडूरिन के प्रति भी समवेदना से द्रवित हो उठता है। वह सामाजिक रूढ़ियाँ का प्रेमी नहीं है, उनका विरोध करता है, उनमें उन्नत अपनी आशाओं की पूर्ति के लिये एक मार्ग भी खोज लेता है।

भाव क्षेत्र के हम ऊहापोह की छाया हम व्यञ्जना के माध्यम में भी देख सकते हैं। रीतिकाल के इने गिने छन्दों की राह छोड़कर नया कवि यह गीत रूपाँ की प्रशस्त भूमि पर आगे आता है। आत्मनिवेदन के लिये वह सुकोमल पदांशुले गीतों को अपनाता है। उदात्त भावनाओं की व्यञ्जना के लिये छन्दों के नये नये समन्वय प्रस्तुत करता है। मुक्त छन्द में वह नयी गति, नयी लय, नय प्रवाह का परिचय देता है, परन्तु यह स्वाधीनता कभी कभी निरनुश स्वच्छन्दता में उल्लंघित होती है। नये प्रतीकों का प्रयोग दुर्बलता का रूप ले लेता है। व्यक्तित्व की व्यञ्जना साधारण पाठकों के प्रति अप्रसन्नता का रूप धारण कर लेती है। सामाजिक परिवर्तन के पतनकाल में “स्यूरलिस्ट” ( Surrealist ) ( पराज्यादी ) कविता की यह गति होती है।

अस्तु, हिन्दी की आध्यात्मिक कविता का व्याख्या करना के लिये ‘छाया’ में लक्ष्मी आनन्दराव दास हैं। “छायावादी कविता स्कूल के प्रति विना है और चाकरी हम शास्त्रात्मक मूल्यों की चर्चा नहीं करती, यह कवि नहीं है”—इस तरह की व्याख्याओं का आधार

छायावादी कविता नदा, आलाचक की रल्पना है। इसी प्रकार उसे पलायनवादी, प्रतिक्रियावादी कहकर लाङ्घित करना सरासर अयोग्य है। उसमें पराजय और पलायन की भावनाएँ हैं, ता विद्रोह, विजय, मानदमात्र के प्रति सहानुभूति के स्वर भी हैं। उसकी विशेषताएँ न्यूनाधिक बहा हैं जा अन्य भाषाओं का रोमांटिक कविता की हैं। रहस्यवाद, प्रकृति पूजा, नारी की नयी प्रतिष्ठा, सांस्कृतिक जागरण, नये छंद, नये प्रतीक आदि गुण या दाप बनकर अन्य साहित्य में भी प्रतिष्ठित हैं। उनका व्याख्या का जैसा-का-सैसा हा उठाकर अपने साहित्य पर लागू करना भ्रामक होगा। छायावादी कविता का एकांगी अध्ययन छोड़कर उसका सर्वांगीण अध्ययन करें और उसी के तल पर उसकी विशेषताओं को परखें, ता वे देशकाल की परिस्थिति तथा अनुकूल धोड़े हेर-फेर से, अन्य देशों का रोमांटिक कविता की विशेषताओं से बहुत भिन्न न होगी।

( १९४३ )

## हिन्दी काव्य में व्यक्तिवाद और अतृप्त-वासना

रोमांटिक कविता की मूल धारा व्यक्तिवाद की ओर मुड़ी जाती है। कवि अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की ओर अधिक ध्यान देता है, समाज का आवश्यकताओं की ओर कम। व्यक्ति और समाज के संपर्क से रोमांटिक कविता का जन्म होता है। समाज का रुटिया से अपना मेल न कर सने के कारण कवि कभी अपना स्वप्न-लोक बसाता है, कभी प्रकृति की गाद में शरण लेता है, कभी भविष्य के एक सुनहरे सप्ताह का गान गाता है। परन्तु रोमांटिक कवि सामाजिक परिस्थितियों से विद्रोह करके उन्हें बदलने का भी प्रयत्न करता है। रोमांटिक कविता की यह साधकता है, अपने विद्रोह में वह अपना लक्ष्य व्यक्ति से हटा कर समाज की ओर ले जाती है। किन्तु रोमांटिक कविता में प्रधानता व्यक्तिवाद का होती है, समाज के प्रति विद्रोह में, और एक नये सप्ताह की कल्पना में, अपनी व्यक्तिगत आकांक्षा की पूर्ति अधिक होती है, समाज की हितचिन्ता कम। शला का 'प्रामाण्यून अनवाउड' इसी प्रकार की एक व्यक्तिवादी कल्पना है।

आधुनिक हिन्दी कविता में भी, जिसने सखी प्रसाद, निराला, पत तथा श्रीमती महादेवा यमा प्रतिनिधि हैं, व्यक्तिवाद का भावना काम करती रही है, परन्तु सभी कवियों में वह एक समान नहीं है। सामाजिक हितचिन्ता का दृष्टि से उसके एक छोर पर प्रसादजी हैं तो दूसरे छोर पर श्रीमती यमा। व्यक्तिवाद का उकसाने वाली शक्ति अतृप्त-वासना है। वासना की वृत्ति के लिए तन्मता हुआ व्यक्ति पहले अपना ही पाद का आग बुझाना चाहता है समाज का हित उसके सामने दुर्लभ नहीं रहता। अतर्क के कारण वह अपनी शक्तियों

की सादर उह एक सामानिक लक्ष्य की आर नहा लगा सक्ता । अपना नामना की तृप्ति में बाधाएँ देखकर वह बहुधा समाज से विद्रोह करता है परन्तु वह ऐसा वीर हुता है कि समाज की ध्वस्त करने की प्रतिज्ञा के साथ आत्मघात की धमकी भी देता जाता है ।

‘अतृप्त-वासना’ कहते ही यह ध्यान हाता है, क्या वासना कभी तृप्त मा हो सकती है ? और जब तृप्त नहा हो सकती तब सारी कविता क्या अतृप्त-वासना के ही कारण नहा है ? अतृप्ति और साधना में अन्तर है, उनना ही तितना विनय और पराजय म । वासना ना वश में करने साधना द्वारा विनय पाना और बात है, वासना की तृप्ति ने साधन न पाकर लार गहाना और बात । दोना ना ही अन्त बहुधा एक अखड अनन्त जीवन की कल्पना में हाता है परन्तु विजयी वह है ना जागित रहकर एक महत्तम शक्ति से ग्रात्मायता का अनुभव करता है, तमकतु पश्यति गीतशाको धातु प्रसादा महिमानमात्मन ।’ पराजित उह है जा जीवन से निराश हाकर, मृत तुल्य हाकर, एक अनन्त जीवन म अपने आपना रना देना चाहता है । निराश कवि, शक्ति क हास से जर्जर, अनन्त मृत्यु का अनन्त जीवन समझता है और उमे यह समझाना कठिन हाता है कि उसके अनन्त जीवन की कल्पना म व्यक्तिवाद हा प्रधान ह ।

रामाटिक कविता क साथ लगा हुआ रहस्यवाद गीतशाक होने का परिणाम नही है । निराशा, वेदना, मृत्यु-कामना का ससग अधिक दिखाइ देता है, जीवन का कम । निम्कर क रम-भग में अभ्यात्म चिंतन से अधिः वासना की उयल पुयल है —

‘उयलि जसन उठे छे वामना,

जगते तसन किसेर डर !’

इसलिए निम्कर का रहस्यवादी त्रियाओ के साथ विगशा गाधुलि का कल्पना वर्तमान है तिसरी पूज म घेणी खुल गइ है और पश्चिम

म मुनहरा आँचल चिसर गया है। इसीलिए लाज से विह्वल कुसुम रमणा का वन्दन है। प्रकृति में प्रेयसी का कल्पना और कल्पनिक नारी-सौंदर्य के चित्र इसी अतृप्त-वासना का कारण हैं।

प्रसादजी में अतृप्ति और व्यक्तिवाद की भावनाएँ कम हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि प्रसादजी के भाव्य ग्रंथों में 'सामायनी' एक महाकाव्य है, 'लहर' फुटकर कविताओं का एक छोटा सा संग्रह है और 'आँसू' जिसने उन्हें वास्तव में कवि रूप में प्रसिद्ध किया, अलफारा से इतना लदा है कि 'वेदना' की दम निकल गई है। 'आँसू' की प्रामाणिकता का कारण परवर्ती कवियों का वेदना प्रेम है। प्रसादजी ने उस पुस्तक में व्यजना का आलम्बित मानने का इतना चेष्टा का है कि भावना की झुंझ अपन आप प्रकट हो जाती है। अपना प्रतिभा और जीवन का उन्होंने नाटक लिखने में अधिक लगाया। यद्यपि उनके नाटक ऐतिहासिक हैं, ता भी उनकी रचनायों में व्यक्तिवाद अथवा अतृप्त वासना का प्रधानता नहीं है। उन्होंने सषष के युग चुने हैं और इस सषष में त्याग और शीघ्र के उल पर उन्होंने मनुष्य को चित्रित किया है। ऐसा ही रथा वस्तु बहुत कुछ 'सामायनी' का भी है। प्रसादजी जीवन और सौन्दर्य के कवि हैं, उनमें वासना है परन्तु उसका अन्त निराशा में कम होता है। उनमें जीवन का नामना है, मरण की नहीं। अतृप्त वासना का साथ तो मृत्यु-कामना आप ही चल पड़ती है।

निरालाजी के अद्वैतवाद में व्यक्तित्व की प्रधानता है। वह अपने व्यक्तित्व का बनाय रचना चाहते हैं। अन्य रईस्यवादी अपने का अद्वैत में लय कर देते हैं, निरालाजी अद्वैत का हा अपन में लय कर लेना चाहते हैं। 'फेजल में, कजल में, कजल में, फेजल में, केदल शान।' व्यक्ति और समाज का सषष निरालाजी की रचनाओं का प्रेरणा देता है। समाज का पुन संगठन भी उनका ध्येय है "रन्तु उस

संगठन में व्यक्ति की ही प्रधानता है। 'शदल राग' नाम की कविताएँ इसका प्रमाण हैं। दूसरे नम्बर की कविता में उन्होंने शदल की उच्छ्वलता, असाध गति, उमाद आदि पर जोर दिया है, उनका शदल आतकवादी है। छटा कविता में भी शदल का वही आतकवादी रूप है परन्तु यहाँ वह रली का निष्ठुर पीड़क मात्र नहीं है, उसकी सम्बन्ध धनी और निर्धना से भी है।

‘रुद्ध काय, है लुब्ध तोष,  
अज्ञाना अग से लिपटे भी  
आतङ्क-अरुह पर काँप रहे हैं  
धनी, यज्ञ गर्जन से शदल !  
अस्त नयन मुग्ध नाँप रहे हैं।  
जीर्ण बाहु, है शार्ङ्ग शरीर,  
तुम्हें जुलाता कृपण अधीर,  
दे विप्लव क वीर !’

शदल का ध्येय जितना विप्लव है, उतना क्रांति नहीं। कृपण स्वयं विप्लव में भाग नहीं लेते—उनका विप्लव एक अनेके वीर का है, वही वार जो 'तुलसीदास' है, 'राम की शक्ति-यूना' में 'राम' है तथा अब विपरोत 'विनाय' द्वारा 'कुतुरमुना' में सब कुछ है।

जब स प्रगतिशालिता का आन्दोलन चला है, 'शदल-राग' की वह छटी कविता निरालाजी को विशेष प्रिय हो गई है। कवि सम्मेलना, गाथियाँ आदि में वह उमे अनेक बार पढ़ चुके हैं। बातचीत में भी वह कभी अपनी कविताओं में समाजवाद सिद्ध करते हैं, कभी छायावाद का समर्थन में कहते हैं, यदि अनन्त न हाथा तो तुम अपनी राटी रक्काग कहाँ ! इमी में निरालाजी का मानसिक-दृष्टे समझा जा सकता है। वह दोनों ही लक्ष्यों की ओर काँका पाते हैं परन्तु उन्हें शान्ति किसी ओर नहीं मिलती। अपने इस द्वन्द्व से ही वह अपनी



शक्ति का परिचय देते हैं और इसलिए उनको कविता में छाया प्रकाश की जैसी चित्रकारी है, वैसी अथवा कम मिलती है। फिर भी शक्ति तो नहीं मिलती और न उन दो लक्ष्यों के बीच मिलनी चाहिये। अकेला गिप्लनी वीर चाहे वह अद्वैत का हा अपने भीतर क्या न समेट ले, सामाजिक व्यवस्था में गहरे परिवर्तन नहीं कर सकता। दूमरी और व्यक्तिवाद का अन्त जिस निराशा और मृत्यु में हाता है, उससे शक्ति न मिलना ही अच्छा है।

निरालाजी साहित्यिक शाक्त हैं, इसलिए निराशा और वेदना ने उनके स्वर सच्चे नहीं लगते। आसुआ का संदेश—

‘हमें दुःख से मुक्ति मिलेगी,—हम इतने दुःखल हैं—  
तुम कर दो एक प्रहार।’

अथवा ‘विफल-वासना’—

गूँथ तस अशुआ के मने कितने ही हार  
बैठी हुई पुरातन स्मृति की मलिन गाद पर प्रियतम।’

ऐसी कविताओं में निरालाजी का अलंकार-प्रियता उभर आयी है। भावना में स्वाभाविकता नहीं रहा। परन्तु ऐसी कविताओं की सग्या नगण्य नहीं है, उनकी आरंभिक ध्यान कम इंगोलिए गया है कि उनमें कविता की सजाई कम है और वेदना और रुदन में भीमती यमा ने निरालाजी का बहुत पीछ छोड़ दिया है।

पतनी अपनी पत्नी कविताओं में स्त्री बनकर बालते हैं—दुःखका उल्लेख निरालाजी ने भी किया है। निरालाजी स्वयं भी इस श्रेण्य भाषना से एतदम बरी नहीं हैं। ‘तुम और मैं’ के आदवाला कविता में वह करते हैं —

‘वृष्णा मुझमें ऐसे ही आरंभ थी,  
सूना था तब कण्ठ नदी भी मैं भा,

गार-बार छाया में घोला खाया,  
पर हरने पर प्यास पड़ी थी मैं भी !

इस कविता में नायिका बिना पानी पिये ही अपनी प्यास बुझा लेता है। बाग में एक तालाब के पास पहुँचती है परन्तु 'खजोहरा' की प्रगतिशील बुद्धि की भाँति पानी में पैठता नहीं है, वह छाया में सा जाती है और सने से ही प्यास दूर हो जाती है। सम्भव है नहाने से भी दिमाग कुछ ठण्डा हो जाता और यह झूठी प्यास न रहती। अतृप्त वासना के कवि की वासना गहुँधा झूठी ही होती है, वह जीवन से इसलिए निराश नहीं होता कि उसे वासना-तृप्ति के साधन नहीं मिलते बल्कि इसलिए कि साधन हाने पर भी तृप्ति मिलना कठिन होता है।

पन्तजी छायावाद के प्रतिनिधि कवि रहे हैं परन्तु उनकी समस्या श्रीरा-जैसी सरल नहीं है। पहली कविताओं में वह बालिका बनकर आते हैं और आगे के गीतों में, बालक बनने पर भी, मधुप-कुमारी से हा गीत सीखना चाहते हैं। 'छाया' कविता में वह अपने को उसी जैसी अमागिन बताते हैं परन्तु रात में छाया तो तबचर के गले लगती है, कवि बचारी वैसी ही रह जाती है।

'और हाय ! मैं रोती फिरती  
रहती हूँ निधिन दिन बन-बन !'

यह भी अतृप्त-वासना है परन्तु दूसरे ढंग की।

पन्तजी जन सम्पर्क से सदा दूर रहे हैं, आज भी हैं। उनका सौन्दर्य-साधना ऐसा सलज्ज है कि सूर्य के प्रकाश में वह सुरक्षा जाता है। जग 'अति दुरा' से तो पीड़ित है परन्तु 'अति-सुरा' से कहीं पीड़ित है, सुग्न दुरा का उनका बँटवारा बहुत कुछ हलुआ के माथ चटनी खाने की भाँति है जिससे हलुआ उबिठ न जाये। सौन्दर्य की कल्पना में आशा हाती है, पन्तजी निराशा के कवि नहीं हैं। सधर जहाँ

और करियाँ को रुदन और आत्मघात की ओर ले जाता है, पन्तजी को वह एक और सुन्दर ससार रचने को प्रेरणा देता है। पन्तजी का व्यक्तिवाद पलायनशील है, वह उह कल्पनालोक में ले जाता है और इस कल्पनालोक का सबसे अच्छा चित्रण ज्योत्स्ना में हुआ है। पतनी में निश्चय-बहुत्व और मानव-मात्र के कल्याण आदि के भावों का रमी नहीं है परन्तु जो नया ससार पन्तजी बसाना चाहते हैं, वह मानवमात्र का न हाकर उनका अपना है, जिसकी सुन्दरता म उहें वही कामलता मिलेगी जो गालिगारूप धरने प्रकृति में उहोंने देखी थी। प्रकृति में गालिका जिस भोले सौन्दर्य को देखता थी, उसी की चाह उहें आन भी है। उनकी मन स्थिति ऐसी है कि सुन्दरता को खोजने के अनिश्चित वह और कुछ कर ही नहीं सकते। उनका हृदय का गीत 'बनी पायल छम' गताता है, कौन-सी कल्पना उनके प्राणा में अधिक रजती है।

प्रकृति में मधुर सौन्दर्य की यह खोज बताती है कि पन्तजी की कवि-दृष्टि 'पल्लव' के समय की ही है। 'ग्राम्या' का कवि गाँवों को देखता भर है, क्या उसे प्रिय और सुन्दर लगता है और क्या अप्रिय और असुन्दर ! सषय में पैठ न समने का मूल कारण पतनी का व्यक्तिवाद है, व्यक्तिवाद सौदिक नहीं, वह उनकी सौन्दर्य कामी कवि चेतना का फल है।

‘सक्ति,—नदी का सूना तट,  
मिथता है नहीं किगारा,  
खोन रहा एमारी जग  
माथी, स्नेह सहारा !’  
( रेग्गचिप्र ग्राम्या )

नक्षत्र के बहाने पन्तजी ने अपना ही बात कहा है। और भी—  
‘यहीं यहीं, जो परता, मैं जानर छिप जाऊँ !  
मानव जग के मन्दन से छुटकारा पाऊँ।’

प्रकृति नाड में व्योम-सर्गा के गाने गाऊँ ।

अपने चिर स्नेहातुर उर की व्यथा मुलाऊँ ।'

इसलिए 'ग्राम्या' पदने पर भी यही कहना पड़ता है कि पन्तनी में अब भी पलायन प्रिय व्यक्तिवाद का कपि मिटा नहा है, उन्हें अब भी अपने आश्रय के लिए नाड़ चाहिये, चाहे वह पड़ का डाला पर हो चाहे नर-संस्कृति में सारा विश्व ही एक नीड बन जाय ।

श्रामती महादेवा यमा वेदना और रुदन की अनुपम कल्पितियाँ हैं और उनकी वेदना में 'व्यक्ति' प्रधान है । व्यक्ति का क्रन्दन मुलाकर उन्होंने गान में विश्व का अश्रय याद किया है ।

'विश्व का क्रन्दन मुला देगा मनुष्य का मधुर गुन-गुन ।'

मेद है कि प्रियतम और पीडा के खेल में विश्व का क्रन्दन डूब ही गया है । यह ठाक है कि प्रियतम विश्व में व्याप्त है परन्तु इस विश्व का सम्बन्ध क्रन्दन से नहीं है प्रियतम का रलियों में मुसकते आते हैं और सोरम उनकर उड जाते हैं । श्रामती यमा की साधारण मनोदशा वह है जिसमें प्रियतम से अधिक पीडा का महत्व हो जाता है, जैसे साड रोगी अपना दीस से प्रेम करने लगे और उपचार में दूर भाग । इस पीडा के मूल में अतृप्त आकांक्षा अन्य कल्पियों के समान हा वतमान है ।

'तुम्हें राध पाता सपन में

ता चिर 'चासन प्यास' तुम्हा

लता उम छाट क्षण अपने में ।'

अन्य कल्पियाँ में भिन्नता इस गान में है कि धीमता यमा अतृप्ति में हा मुग्धा हैं, वह उसा को तृप्ति मानती हैं ।

छायावाद के प्रधान कल्पियाँ के उपरान्त नयीन गीतकारों में अतृप्त वासना ज्ञायमान न रह कर एक स्थूल व्यपना पा गई है । नरेन्द्र का गचनायाँ में जीवन से ऊपर, जीवन में आनन्द करनेवालों के प्रति

इष्या आदि के भाव स्पष्ट हैं। 'फागुन की रात' में 'गजोरी साँड़' का वर्णन इसी इष्या का द्योतक है। 'पौवा की हड़कल' में कवि अपनी प्रेम-क्रियाओं का वर्णन करता है—'फागुन की आधीरात' की क्रियाओं से कितनी भिन्न। नरेन्द्रजी की मनादशा बचनजी के समान विकृत नहीं है। वह मृत्यु-कामना नहीं करते बरन् भाग्य व सहारे सब कुछ छोड़कर ठेलमठेल किसी प्रकार जीते रहने में विश्वास करते हैं।

‘वे आगे भी सुरत दुग्ग आए,  
उनको रो गा कर भागा ही।  
अब घटी, दो घडा रोए भी  
फिर भी तो जीना हागा ही।’

और भा—

‘ऊन गया हँ तिसने, पूरी हाती हाय न जा चलते,  
इस सँडहर के बाच भाग्य की रेखा मो है मेरी राह।’

बचनजी में यही ऊन और निराशा मृत्यु कामना में परिणत हो जाती है। तिस रजिता को morbid कहा जाता है, उसका बचनजी में पूर्ण विश्वास हुआ है।

मृत्यु-कामना क्रियाओं से भिन्न एक दल उनका है जो अपनी रासना को न दबा मरने के कारण समस्त ममार में प्रलय मचा देना चाहते हैं। प्रलय-गम्भीर रजिता इतना हुई है कि उद्गम्य अनावश्यक हैं। भा सुधाद्र, अचलता, आदि में अतृप्त-रासना प्रलय पाकर आइ है।

बहुत सा एसा रजिताएँ भा प्रगतिशास्त्र माता जाती हैं जिनमें रासवाला मागवाला, चमागि, भिगागि आदि का लहर पाठक की वरुणा उरगाइ जाती है। ऐसी रजिताएँ भी व्यक्तिवाद कहलायेंगी क्योंकि इनमें व्यक्ति ही वरुणा उरगाता प्रधान लक्ष्य हाता है। तिरालागी का 'भिदुन' हा रजिताओं का पुराता आदरा है।

व्यक्तिगत दया और करुणा पर हमें पहले विश्वास होता है, सामाजिक आन्दोलनों को आर ध्यान कम जाता है।

इस धाड़ी-सी चचा से यह न समझना चाहिये कि आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तिवाद और अतृप्त-वासना का छोड़कर और कुछ है ही नहीं। पहले तो ऐसे अनेक कवि हैं जो इस धारा में अलग अपना काम करते रहे हैं और तिनकी कविता समाजहित के अधिक निम्न है। फिर इस लक्ष में तिन कविता की चचा है, उनमें भी अनेक स्वस्थ रचना करने में अन्तम मित्र नहीं हुए। हमारा युग सर्प का युग है और लक्ष्य प्राप्ति की चेष्टा और प्रयत्न की कठिनाई हिन्दी कविता में भी व्यक्त हुई है। साथ ही सर्प से ही ऐसे व्यक्ति भी जन्मते हैं जो पलायन का आदेश मानकर सर्प से जी चुराते हैं। अंग्रेजी रोमाण्टिक कविता की तुलना में हम अपने यहाँ भी समाज-हित के काफी तत्त्व देखते हैं। और उन्नाममा सदी के अन्त में जो पतन *Decadence* प्रायः और इंग्लैंड में दिग्गड दिया था, उसका यहाँ शतांश भी गोचर नहीं हुआ। लाग चौकने हा गये हैं और कविता को स्वस्थ भाग भागों का आर लक्ष चल रहे हैं। जैसे कविता में पगलपगली भरे हुए हैं, वैसे साहित्य में भी। परन्तु अंश में विनयनामी और विजय के लिये प्रयत्न करने वाले हैं, जैसे हा साहित्यिकों में। निम्नलिखित के शब्दों में—

‘सिद्धो ना माँद म आया है आन स्यार’—

और यह व्यक्तिवाद का स्यार शत्रु हा समाज सिद्ध की माँद छोड़ कर भाग जायगा। भाग ता वास्तव में वह पल्ल में हा रहा है, सिद्ध ही अभी पृथक् रूप में अपनी तन्ना त्यागकर नहीं जागा।

( मितम्बर '४१ )

## नयी हिन्दी कविता पर आक्षेप

विद्वाना का स्वभाव होता है कि वे समालोचना में कुछ सूत्र बनाकर उनकी सिद्धि किया करते हैं। इससे उनके और पाठक दोनों के ही हृदयों का सन्ताप होता है। इसी प्रकार नयी हिन्दी कविता पर टीका टिप्पणी करते हुए हिन्दी के अनेक विद्वान् आलोचन बहुधा तीन सूत्रों का सहारा लेते हैं। पहला—अश्लीलता, दूसरा—नास्तिमता, तीसरा—रस की मरल। इन सूत्रों से वे नयी हिन्दी कविता का सिद्ध करने के कुछ मिश्रित आशा और निराशा के स्वरो से अपनी आलोचना समाप्त करते हैं। आलोचना एसांगी न हो, इसलिये वे दूरी ज्ञान से यह भी कह देते हैं कि जमाना अर बदल गया है, इसलिये कविता भी जन-साधारण के निरुपेय आयेगी।

एक ध्यान देने का बात यह है कि ये विद्वान इन तीनों सूत्रों की परिधि के बाहर की नई हिन्दी कविता की सफलता का उल्लेख नहीं करते। उन्हें यह मनाना में कठिनाई न होगी कि इन सूत्रों के बाहर केर की नये कविता लिखी जाती है और उसका मूल्य का आका भी आवश्यक है। फिर नये हिन्दी कविता के गिरा पुराने कविता में उत्तम मध्यम श्रेणी के कलाकार कलम चलाता बन्द नहीं कर रहे हैं। उसी रचनाओं हम युग का मादित्विय प्रगति में क्या स्थान रखता है ?

पहले उन तीनों सूत्रों का लें जिनका जप करके ये विद्वान् कविता के समुचित अध्ययन से बचना चाहते हैं। पहला अश्लीलता। नयी हिन्दी कविता में अश्लील परिभाषा निम्नी गई है, यह निरुपेय सच है। लेकिन किमा मदीन की तमाम हिन्दी परिभाषा उलट जाये

और सब बताइये कि कविताये पढ़कर आपकी यह धारणा हानी है कि हिन्दी कविता में अश्लीलता का रंग ही गहरा है ? उन विद्वानों का प्रशंसा करनी पड़ता है जो पुस्तकों से अश्लील पत्तियाँ छाँटकर उनसे अपने लेखों की शोभा उगाते हैं। जिन कवियों से वे ऐसी पत्तियाँ छाँट लेते हैं, उनके बारे में भी वे एम्बारसों ऐसा न कह सकेंगे कि उनकी रचनाओं में अश्लीलता और शृङ्गार के सिवा और कुछ है ही नहीं। देव, जयदेव और मिहारी की तरह उनकी कविता का मूलधर्म रसवान नहा है, न समूची गढ़ा गाना की कविता में उतना अश्लील पत्तियाँ मिलेंगी जितनी कि सिर्फ इन तान् मन्त्रियों की रचनाओं में।

सत्कालीन शृङ्गार और आशुनन्द शृङ्गार की रचनाओं में अन्तर है। सत्कालीन कवियों के लिये नारा काम-क्रीडा का वस्तु थी— “कामला पुत्तला”। इसलिये नायिका भेद की भरमार हुई अर्थात् नारी की विशेषता, उसका मूल्य, उसका मनुष्यत्व सिवा देवान् उसके नायिकापन में हा है। राधाकृष्ण का नाम लेने से देव या जयदेव के अद्वैत का हरण नहा हो सकता। नारी के प्रति इस दृष्टिकोण का अन्त क्रिया छायावादी रचना है, नारा का स्वगतान का परी उनाकर। उसका बाद सामाजिक जीवन में जन्डे हुए अल्प आकांक्षा का कवि आये, नये युग का। इन्होंने नारी का नारी कहा और अपना स्पष्टतादिता में वे पाठकों के सामने ऐसी बातें भी कह गये जिन्हें वे अपने तक हा रखने तो ज्यादा अच्छा था।

यह सब कहने का यह अर्थ नहीं है कि अश्लीलता लभ्य है। भल हा हमारे गौरवपूर्ण प्राचान और मध्यकालीन साहित्य में धार शृङ्गार का कविता हुई हा, हम उसका अनुकरण करने में अपना गौरव नर्दा मानते, न यह मानते हैं कि उसका अनुकरण का बिना हमारी सभ्यता साहित्यिक परंपरा टूट जायगा। पहले अश्लीलता उगाता



थी, आज कम है, इससे काह उठना समर्थन नहीं कर सकता। उग्रशैली कायता के विरोधी हैं, उनसे मेरा काह विरोध नहीं है। उन मतभेद इस बात में हैं कि वे कुछ छुटपुट कायताओं के नाम पर सारी नयी हिन्दी कविता का, विशेषकर प्रगतिशील हिन्दी कविता का उदगम करते हैं। प्रगतिशीलता और उग्रशैली का काह में व्याप्यात्मिक सम्बन्ध नहीं है जैसा कि भक्ति और श्रृंगार का मयाकालीन दरवारी भक्तवर्ना के लिये था।

दूसरा सूत्र है नास्तिकता का। हिन्दी कवि नास्तिकता का प्रयास करते हैं, यह काह घोर आस्तिक भी न रहेगा। सारी हिन्दी कविता उदगमने पर थालापना की छलनी में कहीं कम पांच पत्तियाँ आ पायेंगी। उनसे बहाने नयी हिन्दी कविता का सांख्यिक करना उनका ही सगत हागा चित्ता यह पूछना कि सूर उलमी ने रामनाम चरणों के गिरा कविता चित्तना लिखी है। रास्तर में इश्वर का विरोध बहाना है जहाँ यमष्ट नन चागरण नहीं हुआ। आज काह भी कवि यह नहीं लिखता—या नेना यह नहीं बहता—कि इश्वर का नाम लेने से आज गरुड दूर हो जायगा। अन्न मरुत दूर करने का नियम के गच्छाय उरता आगे राशय मरुतार का नाम लगाने हैं। अन्न विगश लुपता लाह वैदल का मुटु खाने हैं परन्तु सामानिक कार्यों में हस्तक्षेप करने का नियम इश्वर का कष्ट नहीं है। नन इश्वर से अनामुष्ट होने वाला का नाम यका यह वेदता है कि इश्वर नहीं है, तो उन इश्वर का मरुत उदा भन ममभगा चाण्डिय। नास्तिक वे नहीं हैं जो इश्वर का विरोध करते हैं उरत वे हैं जो उदगता नाम का नाम लेने।

तीसरा सूत्र है—रुम का उदगम। सूत्र क्या यका मय है विगने विद्वान् थालीरक विगान मरुदूरा का कविता का भगम कर शता चान्त है। कविता में हाता मन्थिये रुम, मा रमराग का छाड़ार

ये कवि किसान-मजदूरों पर कविता लिखने चले हैं, कला का तो इन्होंने गला घोट दिया।

पहले तो निवेदन यह है कि हिन्दी कवियों से मिलकर यह पता लगाइये कि उन्हें कितनी रूसी कविताये पढ़ने को मिली हैं और अपराध क्षमा हो, यह बताइये कि स्वयं आपने कितनी पढ़ी हैं। छायावाद की कविता के विरोधी उसे गगला की नकल बताकर दो चार गगला की पत्तियाँ भी उद्धृत कर देने थे। यहाँ तो वह भी नहीं, केवल मंत्र से मार देने का प्रयास है।

दूसरी बात—जब रामा तुलसीदास ने ‘दिन अन्न तुली सब लाग मरै’ और ‘श्वेती न किसान का, भिखारा को न भीख, गलि, बनिक् का रनिज, न चाकर को चाकरी’ आदि लिखा था तब दिन भागी रूमा रचनाओं का उन्होंने पारायण किया था? पुनः भार्गव ने जब ‘कवि उचन मुधा’ में राष्ट्रीय विषयों पर ग्रामीण शैलियों में कविता लिखने की प्रवृत्ति निकाली थी, तब उन पर किस रूसी कवि का छाया पड़ा था? राष्ट्रकवि ने जब ‘गगला रहा है रवि अनल भूतल तना सा जल रहा’ आदि लिखा था, तब वे किस साहित्य से प्रभावित हुए थे? वास्तव में वे सब रवि परिस्थिति से प्रभावित हुए थे, महदय होने के नाते भूयः महामारी में भी उनका हृदय ग्रान्दालित हुआ था। इससे उनकी रवि सुलभ महदयता में उदासता लग गयी। परिस्थितियों के प्रभाव से ग्रस्त चुराकर जा रूसी कविता का प्रभाव घटने वाले हैं, वे स्वयं दिन स्वार्थों से प्रभावित हैं, यह स्वयं देखें। रवि परिस्थिति का उल्लंघन चाहता है तो विद्वान् आलोचक रहते हैं, न रूस की नकल करता है! मसाले पत्रितनशाल है। छुड़के के चलने वाले व्यक्ति भी रंग में बैठने लगे हैं। अब हर गगल जर्मादारी जिन्दगी का नारा नहा लगाया जा सकता है। इन बातों का रूस की नकल बताना अपने में अनिश्चय करना है।

मानव समाज के अप्रमत्त व्यक्ति हमेशा से अत्याय का विरोध करते आये हैं, करते रहेंगे ।

परिस्थिति—न कि रुम—के प्रभाव का एक-ज्वलत उदाहरण “बगदशा” है । इस सकलन में श्री मैथिलीशरण गुप्त, निरालाजी, धामती महादेवी चमा आदि ने बगाल पर कविताये लिखने का ही अपराध नहीं किया है वरन् महादेवी जी ने उसको बिक्रा का रूपया भा बगाल के अकाल-पीड़िता के लिये भेजा है । लीनिये, कवि कितानों बेचकर भूतों को गटियाँ काँटने पर आ गये । भारतय संस्कृति का पतन हा गया ! साहित्य रसातल चला गया ! “बगदशा” का विरोध हागा, यह जान कल्पना मे भी परे है, परन्तु हिन्दी म एमे लेखक हैं ति होने श्री महादेवी पर रोष भरी दृष्टि डाली है कि आप भी ! अत्र प्रलय के दिन दूर नहा हैं ।

मचमुच प्रलय के दिन दूर नहा है,—उन विद्वान् आलोचकों क लिये ना दा तीज सूत्रा का जपरर हिन्दी साहित्य का समूची प्रगति-शील परम्परा को अमिद्ध कर देना चाहते हैं !

[ १९४४ ]

## युद्ध और हिन्दी साहित्य

पिछले चार-पाँच वर्षों में ससार की कुछ बहुत बड़ा बड़ी घटनाएँ हो गई हैं। युद्ध का आरम्भ, सोवियत-संघ पर जर्मन आक्रमण, नौ अगस्त का दमन और अगाल का अकाल इस युग की ऐसे मुख्य घटनाएँ हैं जिनका प्रभाव इस युग में ही सीमित नहीं है। इन घटनाओं से हमारे देश की जनता आन्दोलित हुई है और उस जनता की आशा निराशा का चित्रण करनेवाला साहित्य भा घटनाओं से प्रभावित हुआ है। इतिहास की इस पृष्ठभूमि पर नजर रखते हुए हम अपने साहित्य की गतिविधि परखेंगे।

पहले प्रगतिशील साहित्य के आन्दोलन के सम्बन्ध में एक मोटी बात यह साफ दिखाई देती है कि पाँच साल पहले जैसे लोग 'प्रगतिशील' शब्द पर शक करते थे, आज वह बात नहीं है। आज के लोग में उठा सनेत्र साम्राज्यवाद विरोधी भावना है, वह मानव द्वारा मानव के शोषण का जट से मिटा देने के पक्ष में है, स्पष्ट या अस्पष्ट—नये शोषणवादी समाज की भावना समा लेखकों के सामने धूम रहा है। अश्लीलता, नास्तिकता और रूसी नकल के नाम पर कुछ लोगों ने इस आन्दोलन का विरोध किया है ता बहुत लोगों ने उसे युग की भाँग कहकर उसका स्वागत किया है। युग का भाँग का अनुभव करके ही नये और पुराने लेखक ज्यादा से ज्यादा संख्या में ऐसे साहित्य की ओर आग्रसर हुए हैं जो युग के अनुकूल हैं। कवि या साहित्यकार दूर रहकर अपने एकांतवास में मराठी साहित्य की रचना कर सकता है,—इस बात का दावा करनेवाले लोग अब प्रायः नहीं ही रह गये हैं।

आक्रमण होने पर दिनकर ने मेरठ में विद्रोह-रागिनी मुनी। नरेन्द्र ने देवला जेल में सोवियत् जमन युद्ध की बात सुनकर 'गीत लिखें क्या वीरों के जब गला घोटती हा कारा से आरम्भ करके अनेक कविताएँ लिखीं जिन्होंने उनके असमजम को धक्का दिया। गिरजाकुमार अपनी नव-वयस्क रामाटिक कल्पना से दूर हाते हुए अधिक स्वस्थ चिन्तन की ओर बढ़े। 'आज अचानक जल आया है, यका हुइ मेरी बाहों में'—इस नये चिन्तन और चेतना का प्रतीक है।

सोवियत् युद्ध से हिन्दा के अधिकांश नये कवि प्रभावित हुए हैं। नरेन्द्र ने लोकगीता की धुन और उन्हें। जैसी सरल शब्दावली लेते हुए लाल फौज, स्तालिनवाद, फासिस्ट आक्रमण आदि पर अनेक कविताएँ लिखीं। शिवमगलसिंह मुमन का कविता "मॉस्को ग्रन भा दूर है" उम समय लिखा गइ थी, जब मॉस्को गिरा हुआ था और पराजयवादी आये दिन उसके पतन की प्रताक्षा कर रहे थे। सोवियत् संस्था वह संस्ते अधिक आनृष्य रचना है। रंगेश रावण ने स्तालिनवाद पर एक खडकान्य लिखा है, जिसमें उहाने उस युद्ध से भारताय जन सम्राम का सम्बन्धसून जाड़ा है। भारतभूषण अग्रवाल, नेमिचन्द्र जैन, प्रभाकर माचवे आदि ने भी सोवियन् युद्ध से प्रभावित हाकर कविताएँ लिखी हैं।

गीत-रचना का यह प्रसार सन् ४२ के दमन के बाद क्रमशः क्षार होता गया है। देश के राजनीतिक गतिरोध का गहरा असर राष्ट्रीय जीवन के सभी अर्गा पर पड़ा है। वह प्रसर हमारे साहित्य में भी दिखाई देता है। अगस्त के बाद बहुत से लेखक यह न समझ पाये कि इस उत्पात के लिये उत्तरदायी कौन है और ब्रिटिश जर्मन युद्ध में सोवियत् के आ जाने से जा नये परिवर्तन हुए, यह भा स्पष्ट रूपरेखा म उनके सामने नहा आये। गतिरोध की जड़ता ने देश में निराशा का जन्म दिया।

फिर भा बगाल के अकाल से नये पुराने अनेक लखका का दृश्य द्रवित हुआ और उदान अकाल-पीड़िता का सहायता के लिए अपनी लेखना का उपयोग किया। सुमन, नरद्र, अक्षय आदि की रचनाएँ साहित्य का वस्तु बन गई हैं। 'वगदशन' ने जो मार्ग प्रदर्शन किया है, वह भा भाग्याय साहित्य में गर्व करने की रात है। भाताय सत्सति की जननी की दुःख-गाथा से भामती महादया वमा, निरालाती, श्री मैथिलाशम्भुजा पुष्ट, श्री माग्नलालता चतुर्वेदी आदि का दृश्य द्रवित हुआ। महादेवीनी ने वगदशन की भूमिका में मुनाफा खार्गी का पदाकाश किया और नये रिया ने अपना रचनाओं में उसे आडे हाथा लिया।

फिर भी,—बगाल के अकाल से जो हलचल हिन्दी सभार में हुई थी, वह कुछ दिन बाद शान-सी हो गई। फिर से तब जहाँ-तहाँ मरुत हुए, परन्तु राम-ममू का हृदय जिन्ही राष्ट्र-त्याग अथवा समाज-व्यापी आन्दोलन से ली लहराया। राष्ट्र का जान उन्निस्पर्य्य और गतिमान दिग्गम दे रहा था।

वर्षों पर अपने आम रिया का स्मरण करना उचित है जो जो जीवन के अधिन निरुद्ध होने में उमा भौति निराशा के शिकार नहा हुए। इस समय स्मारक का बहुत सुन्दर रिया पत्नी और उनके पुत्र बुद्धिभद्र जीवन-सम्राट में जूकन हुए बन रहे। आज ये जीवन हात ता अरथा के जन साहित्य का मजबूत महारा मिलता। फिर भा चन्द्र भूषण रिया उन परम्परा का आग ल गये हैं और ठाना श्रेष्ठ गान 'धम्ती-मारि' किसान का अजय चेतना का प्रतीक है। गजस्थाना, मैथिला बुद्धेलगण्डा आदि भाषाओं में उन साल अनेक सुन्दर गानों का रचना हुई है। बनारस जिले के रामर और धमरान ने अपने गीतों में सैफ़ड़ा किसानों में आशा और नवनीयन का सञ्चार किया है।

युद्धमालाने जिंदा मादित्य न अपनी मत्तप और प्रगातशील पर  
 म्परा की रत्ता का है। कविताएँ हम नये गात रूप म मिली हैं नान  
 अपना भाषा, लन और छन्द में जाता के अधिक निम्न आये हैं।  
 क्या साहित्य म राहुलता और यशपाल ने नया करम उगारा है,  
 अपना क्याओं म उहाने श्रद्धुत विषया पर लखनी उठाई है और  
 अमूटा क्यायस्तु का गठन किया है। आलाचना साहित्य म शर दा  
 वर्षों से कुछ स्थिरता ना प्रा गई था। फिर भी कुल मिलानर युद्ध  
 काल म नय पुराने मादित्य क मूल्यादन और मिडाल्ना का लखर  
 लखका और पाठका म काफा चचा रहा है। निराशा और गतिराध  
 के समय हमार लग्न हाथ पर हाथ धर नहीं बैठे रहे।

फिर भा, यह मत्त है जि निराशा का यह औरी रात अभा बीता  
 नहीं है। यागी' (दीपावली विशेषाङ्क) अपने 'हड्डी का चिराग' साधन  
 मम्पादनाय द्वारा आन क राष्ट्रीय जीवन की निस्पदता की आर ध्यान  
 आरुपित करता है। राष्ट्रीय नेताओं का नारावाग और गांधीजिना  
 घाना का भग हाना म नदता का उनाय करने म म्हायन हाते हैं।  
 सभयत यह निगशा की श्रंखला गत का अतिम प्रहर है, परन्तु जैनी  
 निधियता क दशन हम हम समय हा रहे हैं वमा निधियता सपूर्ण  
 युद्धमाल में भा नहीं रना। इमालिय उसस लाग लन क लिय आज  
 हम अपना सपूर्ण मनायल मद्रित करना है आर हमन लिय सामूहिक  
 प्रयाम आवश्यक है।

गतिरोध की सह तन गये जिना का भा प्रयाम किया जायगा,  
 यह सह का होगा, उसम जीवन का जन्ता न दूर होगी। यह जन्ता  
 दूर हाना दिताइ दी थी जे गांधीजी ने आत्मनिर्णय क अधिकार पर  
 मि० जिना स सम्झौत की रातचीत शुरू की था। जडना क दूर करने  
 का यहा एक माग है। क्लानारा, कविया और लखना का देशनापी  
 गतिरोध का दूर करन क उपाया पर अचार करना है, सामाजिक

प्रगति न यनुगामा नेता प्रां का हीनवन स न वातावरण उत्पन्न करना है, जिससे ग्रान का मतभेद दूर हो और जो ममकोता ग्रान नहीं हुआ, वह कल हास्य हो रह। साहित्य और मस्त्रति म यदि हमें गति गनता और जडता का अनुभव जाता है, यदि गतिराय का व्यापक प्रभाव हम अपने सारे समाज पर देरते हैं, तो हम साहित्य म उसका चरण भा कर सकते ह, उसमे लड़ने के लिये अपने पाठका म मना-यन भा उत्पन्न कर सकते हैं। इस ग्राम मे पराट्मुख रहने का परिणाम हागा अश्लील साहित्य का वृद्धि, अतमुग्धा प्रवृत्तिया का उभेय और साहित्य म निराशासन्य अराजकता का प्रसार।

हमारा साहित्य ग्रान जिस दलदल म है उससे उमे उधारन का एक ही माग है,—गतिराय का भग करने क उपयोग म हम अपनी लेखनी द्वारा सक्रिय सहयोग दें। हमारे नये और पुराने लेखक जो गणन परम्परा म पले और उठे हैं, यह सहयोग दे सकते हैं। केवल नतान्त अनादा, मरति और विवृत साममानाआ क प्रेमी, उच्छृङ्खल और अराजकनादा यनि ही इस प्रयत्न का विरोध करेंगे। शक सभी स्वस्थ मन न देशभक्त लेखका मे हम सक्रिय सहयोग की आशा कर सकते हैं।



## स्वाधीनता आन्दोलन और साहित्य

देश में नये सामूहिक और राजनीतिक जागरण के साथ साथ आधुनिक हिन्दी का जन्म हुआ और उसका साहित्य क्रमशः विकसित होता गया। उन्नामर्षी सदा के उत्तराद्भूत मन्त्र के लिये ब्रजभाषा को त्यागना और गूढ़ा शलाका को अपनाना एक सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति था। १८५७ के फल और कुछ दिन बाद तक निरमित और पुष्ट गद्य के विना भाषा साहित्य अधूरा नहीं माना जाता था। लेकिन अब परिस्थितियाँ बदल रही थीं। समाज में नये उच्च और मध्यम वर्गों का जन्म हो रहा था। ये वर्ग पुराने सामंती वर्गों का गूढ़ा लेखन साहित्य और समाज दाना का भी नेतृत्व करने के लिये आगे बढ़ रहे थे। इस परिदृश्य के फलस्वरूप जो नया-नया सामाजिक आवश्यकताएँ पैदा हुईं, उनका पूर्ति के लिये गद्य साहित्य आवश्यक हो गया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नवाने हिन्दी गद्य का प्रतिष्ठा करने के लिये एक ऐतिहासिक कार्य किया।

उस समय के साहित्य का देगकर कुछ लोगो का आश्चर्य है कि सन् '५७ के विद्रोह पर कविताएँ या कथानकाँ कथाँ गूढ़ा लिख गयीं। जो कुछ लिखना गया है, नये गूढ़ा का जन्म है और उन्नाम भी विद्रोह का नही रूप नया दिखताइ देता जो हमारा कल्पना में है। इसका एक कारण यही है कि उस समय की राजनीतिक चेतना का स्तर विद्वान और विद्रोह का भावना से गूढ़ा, दूर था। उच्च और मध्यम वर्गों के लिये अंग्रेजी राज एक दरवान के रूप में था जिसे देश में पैदा हुई अराजकता का शान्त कर दिया था। शिक्षित लोग अंग्रेजी से आशा करते थे कि वे सामाजिक सुगतिशा का दूर वर्ग और

भारतवासियों का महत्वांग लेकर समाज का सुधार की शक्ति प्रदान करेगा।  
 मंगराना विकटारिया का वापसाआ के ऊपरा रूप म भी लाग  
 आरपित हुए। अमलिय उस समय क साहित्य म अंग्रेजों के लिने  
 प्रशस्तिवा की समा नया है।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतिय पूर्वजादि म एक आरम्भ  
 सिरा था जो दाना क मत चाल पर जाग-बाग प्रहार करता था।  
 उच्चरगों क एक अरु ने क बहुत बल्दी दान लिया कि अंग्रेजों के  
 म ररे भागनरुप यह उठाने नहा कर सनता निभ वे आरज्यरु समझते  
 र। सिटुन्नान क अपने रूम-कारग्याने ही, यह खुद अपना माल  
 रीग कर और तमाम धन विलासत न मन, यह भावना भारतेदु  
 माल म पैग न गन था। अमलिय उस युग क साहित्य म अमे री  
 मिला चुना जागयें मिलता है, एक ता अंग्रेजों का प्रशस्त करने  
 राना है, उनम नरुग का इच्छा करता है और उसका तमाम  
 प्रशस्तिशाल चितन समाज सुधार क क्षेत्र म र्मागत करता है। उस  
 गग क मयम अन्द्रे प्रतिनिधि राजा शिन्प्रसाद 'मितारहिन्द' थे।  
 अरु धारा समाज सुधार क माध साय स्वदेशी और स्वाभिनता की  
 रतना का भी पैग रहा था। उस धारा के प्रतिनिधि भारतेदु जाबू  
 गिश्बद्र थे। यह साचना मूलतः अगा कि पहला धारा का प्रभाव  
 नागनरु पर पना नानहा। वे उमने भी प्रभावित हुये परन्तु उस  
 दुाना भाग का आठरु नट लिगा म रत्ने का कार्य करने पहले  
 उगन हा सिगा।

सामाजिक सुधार नया धारा का एक आरम्भ अङ्ग था। तमा  
 न यह परम्परा चला कि स्वाभिनता आन्दोलन क नेता समाज-सुधारक  
 भी हा जाग अपने राजनानिक प्रचार में सुधार का बात भी करें।  
 अरु अरु स्वराज-प्रचार म हरितन उद्धार का इसा तद म्यान  
 प्रक है। भारतदु क जमान म विधवा-विवाह का समर्थन करना

श्रैलोक्य भज का हटाने से कम क्रान्तिकारी नहा था। इस प्रश्न का लेकर कई दशकों तक घनघोर युद्ध शान्त रहा। भारतेन्दु, राधाचरण गण्यमाना आदि न विधवा विवाह के साथ बाल विवाह, स्त्रियों का अशिक्षा, धार्मिक अध विज्ञान आदि का विरोध किया। यह समाज सुधार की भावना स्वदेशी और स्वाधीनता की कल्पना में जुड़ी हुई थी। सन् ५७ तक इन्दी के साहित्यिक म राष्ट्रीयता की कल्पना उभर कर न आई थी। भारत-दु काल में प्रत्यक्ष भ्रम लेखक राष्ट्रीयता की नई कल्पना से प्रभावित दिग्गम पड़ता है। प्रताप-नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, कर्तिकप्रसाद खन्ना आदि आदि की रचनाओं में यह नई भावना गहरा-गहरा प्रकट हुआ है।

इस गण्यमाना का एक उम्र और क्रान्तिकारी पल्लू भा था। देश में अज्ञान पड़ते देखकर और सरकार का तटस्थ हाना, उमर लिय उत्तरदायी मानकर, कई लेखकों में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हो रहा था। वे दस्त दे रहे थे कि अंग्रेज कूटनीतिज एशिया और अफ्रीका में अपना राज्यविस्तार करने के लिये भारत के धन जन का दुरुपयोग कर रहे हैं। अपने जनगीता, जनवा और नाटकों में उन्होंने इसका तीव्र विरोध किया। ये लेखक गौश्रमथ अज्ञान का जगाकर ही सन्तुष्ट नहा थे। वे एक कदम आगे बढ़कर सामंता अत्याचार का विरोध करते थे और गाँव से हर तुरन्त का दमन खत्म करने का लक्ष्य निम्न-मुमलमान किसानों के संगठन की बात भी कहते थे। भारतेन्दु ने बलिया में दिये हुये अपने एक व्याख्यान में इस एकता पर काफी ज़ोर दिया था। उनके शब्द इस बात के सूचक हैं कि गाँव और श्लेष का भावना से गाँवो उत्कर जनता दानों के साम्राज्य विरोधा संगठन की आरंभ रहा था। भारतेन्दु ने कहा था—‘वह मैं आप लगे तब जिठानी-दघौरानी का आपन का डाह छाटकर एक साथ वह प्राग बुझाना चाहिये। बंगाला, मगडल, बजरा, मद्रास, कर्कि-

जैन, ब्राह्म, मुसलमान सब एक का हाथ एक पकड़ा। जैसे हजार धागा होकर गङ्गा समुद्र न मिला है, वैसे न तुम्हारा लक्ष्मी हजार तरंग स रंगलएट प्रामाण, जमना, अमरिका का जना है। अफसान, तुम ऐन हा गय कि अपने जिन क काम का उम्तु भा नहा बना सकते। चांग प्रार अद्वितीता का आग लगी है। अपना परारिया के मूल रागणा का खाता। फाइ धम का आड म, फाइ देश का चाल का आड म, फाइ सुख का आड में छिप है। उन चांग का वहाँ वहाँ स पकड़ पकड़ कर लाया। उनका गंध गंध कर कैद करा। जब तक मो-दा-भा मनुष्य उन्नाम न जागे जाति मे रात्र न निकाल दिय जायेंगे, दरिद्र न जायेंगे, कैद न हागे, परछ ज्ञान मे न मारे जायेंगे तब तक का देश भी न मुबरेगा।'

प्रगति का यह अतधारा साहित्य का वसतमान प्रगतिशाल रास क अत्यत निरुद है। भारत ने "अनि-वचन-मुग" म प्रभाषित अपना प्राथगा म कहा था कि हिन्दा लगना का भाधुहिदी में रचना करने क साथ साथ प्रामाणों और अपन विज्ञाना और विद्या के लिय भा उन्हा की गालिया में गात आदि लिखना चाहिये—और इनका विषय अदशा तथा समाज-मुगर होना चाहिये। इन प्रकार साहित्य का सामाजिक उन्नति का साधन मानकर उठाने यह आशय रचना जिन पर चलने म ही भारत क नय साहित्य और समाज का कल्याण हा सकता था।

य सब गते तब हुई तब सगठित रूप न देश में की स्वाधीनता आन्दोलन न चला था। मदिया से चला आता हु सामतयाहा क प्रभुता का पत्नी रास धरमा लगा और उच्च और मध्यम क नेतृत्व में पहला रास भागत का जना ने अपने सामाजिक और राजनातिक स्वता की पहचाना। समाज का ठगार टूटा और उसका नया हलनल म हिन्दा का य विचारदिल साहित्य पदा हुआ।

पहले मन्मथ ने राद देश की गरीबी और बर्नी। मन्मथारी का प्रयास हुआ। युद्ध में म्रिये हुये रादे एक न बाद एक हून्ते गये। यही नदी, अपने शामन को त्माय रखने के लिये श्रमैज्ञा का त्मा भी बन्ता गया। राष्ट्रीय आन्दोलन न सुधारवाणी नेतृत्व से प्रमत्तुष्ट हानर उग्र विचार न कुछ युवकों ने मशख्मन्ति के लिये छुट पुट तैयारी शुरू की। जर्न-तर्न पड्यत्र परडे गये। पत्रा म रोलट रिल और जलियानवाला बाग न दृश्य दिग्मा दिय। डायर ब्रिटिश साम्राज्य राद का प्रतीक बन गया। वैसे ही जलियानवाला बाग देश का उग्र साम्राज्य विरोधी भारना का म्मामन बन गया। तर से लेनर आन नर न जाने कितने गायकों और कर्त्रियां ने जलियानवाला बाग का आह्वान करने अपने राष्ट्रीय सम्मान की भावना का त्मन किया है। १९४७ म श्रमैज्ञी दृटनीति के मुलावे म प्राकर हिन्दू मुसलमान और म्रियां ने जलियानवाला की पवित्र भूमि को अपने ही रक्त में पिर डुबाने की मशिश की। लम्बिन पत्रा न इतिहास के माथ जलियानवाला बाग और भगतसिंह के दा नाम एमे पुने हैं कि यह तमाम रन पात भी उनके गात्र का डुवा नहा मरता। शांति और एरता के प्रचार के लिये जलियानवाले का नाम आन भी मन् का काम मरता है।

१९२० के आन्दोलन में हिन्दू मुसलमान एरता के श्रभूतपूव दृश्य देन्ने गये। उस एरता से साम्राज्यवादी नितना आतन्कित हुये, यह उन्ग की रिपोर्न म अकित है। १९४७ के हिन्दुस्तान के लिये यह तर एर मपना है परन्तु ऐसा मपना है जा कलकत्ता और म्बइ की सडकी पर तर भी हमारे उज्ज्वल भविष्य का तरह मलन उठता है। मन् '२० की एरता, स्वाधीनता के लिये श्रश्रुत उत्माह, आजादी के आन्दोलन म निशार्थिशा और म्रियां के पन्ला बाग प्रवेश करने का प्रभाय उस समय के मान्दित्य पर भी पडा। नये नये नाटक और गीत इसी भावना से प्रेरित हानर रचे गये। मूक जनता का प्रचानन जैसे नद वाणा

मिल गई। मर्दानी मेडिकली कलेज सुत, विशूल (सनेनी), माधरगुक्ल  
 आण्ड्रि आण्ड्रि कुरिया की राणा ने इम नया चेतना का व्यक्त किया।  
 उपयाम क्षेत्र म प्रेमचन्द के रूप म यह भावना काकार हु। मन् '२०  
 के आन्दोलन ने प्रेमचन्द का कायापलट कर ता। जिस लक्ष्य की  
 आर वे धार धारे पर उठा रहे थ, उसकी आ आर एक कटफ से दोड़ते  
 हुये चल दिय। मन् '२० क बाद स्वाधीनता-आन्दोलन का परम्परा  
 ने उनका अभिन्न मन् व चुड़ गया। निलत्मी और एवारी उपन्यासा  
 का जाण शाण्ड परम्परा का उदहर उचने तथा माण्ड्रि म पहला बार  
 देश का साधारण जनता का प्रतिष्ठित किया। उनका सबसे बड़ी  
 विशेषता यह था कि साम्राज्यवाद क विरोध का उचने केवाला गंगाड  
 से देगा। किसान आर जमींदार की समस्या साम्राज्य विरोध का एक  
 अङ्ग था। अंग्रेजाने अन्न राज्य का बड़ जमाये रखने के लिये जमा-  
 दारा के रूप म उनका सामाजिक आधार कायम किया था। साम्राज्य  
 का पूरा विरोध करने क लिये इस आधार पर भा आक्रमण करना  
 आवश्यक था। प्रेमचन्द नरिसाना की समस्या का स्वाधीनता आन्दो-  
 लन का अभिन्न अङ्ग बना दिया। शुरू के उपन्यासा म व इम समस्या  
 के सुधारवादी समाधान की आर करते है परन्तु कुछ दिन बाद उम  
 पर म उनका आस्था उठ जाता है। जैसे जैसे आजादी के आन्दोलन  
 में खुद किसान आर बन्दर हिम्सा लेन हैं, जैसे जैसे किसानों का  
 शक्ति पर प्रेमचन्द का विश्वास भी गूँटा जाता है।

प्रेमचन्द का स्वाभाविक विरोध भारत के नये जनतंत्र की ओर  
 हा रहा था। मन् '३० क आन्दोलन के बाद उनका यह धारणा पुष्ट  
 हो गई कि अंग्रेजा क जाने क बाद हिन्दुस्तान में जन साधारण का  
 राज कायम हाना चाण्डिय। उनर जनतंत्र में दशा राया के नये  
 बड़े सामंती और ब्रिटिश भारत के नये बड़े बाल्लुफदारा क लिय  
 राद स्थान नरी रा। मन् '२० के बाद उठाने का कुछ निर्या था,

उससे प्रतिनिधायिकादिया म खलपला पट ग था । मन् '२० के बाद उन्होंने जा कुछ लिखा, उसमें सुधारवादी चीजें लगे । समाजवाद के प्रतिपक्षी मार्ग का आरम्भ वाल प्रेमचन्द की कला म उँ हाम दिखाइ देने लगा । स्वाधिनता आन्दोलन म जा एक आत कि प्रवृत्ति था कि वह आगे चलकर समाजवाद रूप धारण कर उस एतिहासिक विग्राम क्रम का प्रतिविम्ब पहले प्रेमचन्द म पडा । मन् '२० के बाद हिंदी साहित्य म समाजवाद की भाषा चचा हान लगा । साहित्य रूम का नया साहित्य, जिस साम्राज्यवाधिया ने देश स दूर रखने की भूमिका निरिशा का था अथ हिन्दा लेखना तर पहुँचने लगा । प्रेमचन्द गाँधी की चिन्ताओं म विगष प्रभावित हुए । राजनातिक सुधारवाद से चलते हुए व क्रमश उस मजिल तर पहुँचे, जहाँ ने व नया प्रगतशाल विचार-गग क प्ररर्चन रहे जा सकते थे ।

मन् '२० के आन्दोलन के बाद हिन्दा रचिता म एक नय युग का आरम्भ हुआ और व युग छायावाद का था । छायावादी रचिता म अनत और पलायन का विगष सप्रथ जाटा जाता है । उसकी प्रारभिक यमथा म उगन निराधिया न अन्त क पक्ष पर विगष रूप से जाइ दिया । वास्तव म छायावाद रचिता रीतिकालान परम्परा का निरोधा था । यद्यपि मन्ती गाँधी की रचिता का भाषा मान लिया गया था, फिर भी लक्षण व था के आदर्श अभी साहित्य समजा के लिए नन हुए थे । छायावादी रचिया न नन पर प्रचूर प्रहार किया । दृगनिय विगरी लामिका कर उनके अनन्तवा का खिलना ता उडात रहे, परंतु उनर निद्रो पन का जनता की दृष्टि म द्विषा गये । य का यान्त्रिक घटना नन था कि पन आर निराला न अपने गय लखा म दरगरी रचिता की परिपाठा का निन्दा की । देश का स्वाधिनता आन्दोलन हा सामतशाहा म निद्व एक दूमग दिया म बन रहा था । उसका प्रति निया साहित्य क नैय म भी हुई आर नये रचिया और लेखना ने उस

पुराना षष्ठी का चुनाव था। हमारा उद्देश्य नहीं था कि वे समस्त प्राचीन साहित्य के विरोधी थे। पतन और निगलाना नही मत साहित्य का समर्थन किया है।

समानसुधार के पक्ष का उद्देश्य नही था और सम्मान देना था। निगलाना का 'विधवा' आदि स्वनाम, पतन का गल विधवा के प्रति मनुष्यता—जैंग कलही इलही म नथ—आदि समान सुधार का परिणाम का और इंगित करता है। उन कविता का विरोधता यह था कि सामाजिक क्षेत्र में उठाने नाग की पृष्ठ स्पर्धनता का घोषणा का। जानि और उर्गभद्र से परे उठाने पृष्ठ मनुष्यता का प्रतिष्ठा का। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के समान उठाने अपन साहित्य का आधार मानववाद का देना था। जाति, उम्र और प्रान्तों का हानि नही देना का सीमाओं भा पाव करके परस्पर सास्त्रिक आदान प्रदान के लिये उठाने मार्ग प्रशस्त किया। स्वाधनता आन्दोलन सनातन रूढ़िवादी का उद्देश्य स्वराज्य का लक्ष्य थापके कल्पना का और उठाने था, उमर का विषय घोष सत्रमे पदल छायावादा कविता में सुन पडा। द्वितीय युग के सुधारवादी का कानि और विप्लव शब्दों में भय ग्राते थे। समान में आमूल पारवर्तन करने का भावना छायावादा कविता का अत्यन्त प्रिय भावना था। हमारे अनुरूप भाषा, भाव, छन्द, साहित्य के समान आशा में वे मुक्त कल्पना के सार नथ रग भगना चाहते थे। उठाने कुछ दुर्बला के साथ किया कविता का नथा व्यञ्जनाशक्ति भा दा। अनन्त का कल्पना के साथ उठाने उठाने विद्वान् स्वर भा सुनाते नेता है, हम गत में उठाने नही किया था करता। साम्राज्य विरोध, विमाना की मुक्ति आदि का भावनाओं निगलाना के विप्लव, सत्त्व पर आरूढ दारु साहित्य के आकाश में आर्द्र। उठाने किया—

यह तर्क रग तग

भरा आकाश आ म,



उन, भेरी गर्जन से मजग सुन अकुर  
 उर म पृथ्वी के, आशाआ मे  
 नमनान नी, ऊँचा कर सिग,  
 ताऊ रहे हैं, ए विलव के गाल !  
 म्द नाप, है चुन्च ताप,  
 अगता अग से लिपटे भा  
 आतक अर पर नाँप रहे हैं  
 धना, उत्र गजन से गदल !  
 नस्त नयन मुग टाँप रहे हैं ।  
 नागनाह, है शीर्ण शरीर,  
 तुम्हे बुलाता कृपन अधार,  
 ऐ विलन न वार !  
 चूम लिया है उसका सार,  
 दाड मान नी है आघार,  
 ऐ नाउन न पागवार !

यद्यपि यह विप्लव एक यज्ञ द्वारा जाता है, मग मगठन द्वारा नहीं, फिर भी यह ममान के आमूल परिवर्तन की भावना का यज्ञ करता है। यह बात सूचित करता थी कि आग चल कर राष्ट्रीय आन्दोलन पर क्रांतिकारी विचारधारा का गहरा असर पड़ेगा और हमारा स्वाधीनता मैग्राम का लक्ष्य केवल अंग्रेजा का हटाना न होगा बरन उनके जाने के बाद एक नये जनतंत्र की स्थापना भी होगा।

आयाजाद काल में लिखी हुई यचनाएँ रचनाआ म पतकी ने प्रकृति के आलम्बना के सगर मानव समाज का दुरवस्था का सन्त किया है। उनके गीता का यह ट्रेफ उन गइ कि प्रकृति सुन्दर है किन्तु मनुष्य परस्पर भेद और विद्वेष के कारण नस्त और व्यथित करता है। इसा यथा मे आन्दोलित क्षर उहाने अपने मन को

सौन्दर्य लाभ में मिलमाने का नागिश की। 'शाब्दा' नाटिका में एक शान्त और सुखा मानवसमाज का रंगान चलना है। नाटक रूप में 'शाब्दा' सफल नहीं है। नये मानवसमाज का चलना जा नाना वर्गों में चित्रित हुई है, वह उमर युग का किया व मम का छूटन वाला उस्तु था। सामाजिक विद्रोह का यह द्रुमग पालू था जो पुगना स्थिया का नष्ट करने का मद मनुष्य मात्र का समता का आधार पर एक नये समाज का निर्माण करना चाहता था। निर्माण की यह चलना यथार्थ का भूमि से काफी ऊपर उठा हुआ था अस्तु थी। पर भा वह इस बात का प्रकट करता था कि हमारा उता और साहित्यकार एक स्वार्थी जनता का रूप में अपने भविष्य का स्वप्न देख रहे हैं।

सन् '३-२४ के लगभग राष्ट्रीय आन्दोलन का सुधारवादी नेतृत्व से प्रा. गान्त हाकर अनर लम्बन गरम-दला विचारधारा का आग जग रहे थे। इस काल का साहित्य में यह माह दिखान देता है। साधारण जनता में से चुने हुए पात्रों द्वारा सामाजिक विषमता के प्रति लम्बन का, समताप प्रकट हुआ है। पहले का छायावाद कविताशा के अमताप से यह काफी भिन्न है। वह अब एक गम्भीर सामाजिक रूप ले रहा है और उमरों जटें यथाथ भूमि में और भातर तर चला गया है। निरालाका का 'अलका' में यह परिवर्तन स्पष्ट दिखान देता है। जिमाना की ममम्या का हल करने का लिये व पुगन सुधारवादी नेतृत्व का दिल्कुव अममर्थ श्रेष्ठ है और एक नये कान्तिवादी जिमान नेतृत्व की चलना करते हैं। 'दवा', 'चतुरा चमार' आदि रोगा चित्रा में उठाने एक नया यथाथवादी व्यंग्यपूर्ण शैली के मगरे कान्ति का नये विनास का और सफल किया। उनके पात्र जनसाधारण के लिये गये हैं। अनन्त का उठान का उदल उनमें ऐसी सामलता है

कि उम पर कोई भा यथायथादा कलाकार गव नर मरता है। इन नये रसा चित्रा म ज्ञायारा ने अनन्तया पलायन पक्ष पर भा तत्र प्राघात क्रिय गय हैं। "मैं विनाय का नदि 'फर क्रांतिकारी', निगलाता क ये शर उम अरमा क सूचन हैं जिमसे शरर सिन्दा क अनेन मान्त्रिक गुजर रहे थ। राष्ट्रीय आन्दोलन के मुधागवादा पक्ष से उनका आरमा हट गी थी और वे उमे एर मान्त्रिक माम्राज्य विरागी का रूप देना चाह रहे थ ता पुगना सामाजिक व्यवस्था का आमूल परिवर्तन कर दे। राष्ट्रीय आन्दोलन में भा यर परिवर्तन दिखाइ दे रहा था। अनेन गान्धिक चरित्रता मुधागवादा से आस्थाहीन शरर उग्र विचारधारा का आर नर रहे थ। कांग्रेस क भीतर एर अकडा खागा गरम बन गया था। विमाना और मजदूरा क संगठन की कल्पना यथार्थ रूप धारण करने लगी थी और इस बात की भाग का जाने लगा थी कि यर संगठित उग्र राष्ट्रीय आन्दोलन म अधिक म अधिक भाग ले। प्रथम कांग्रेस कान्फ्रेंस होने क बाद उग्र विचारधारा क लोगा म और भी आत्म विश्वास पैदा हुआ और व अपने नये समान की कल्पना का आर और भा तजा ने कदम उठाते लग। जा परिवर्तन स्वाधीनता आन्दोलन म हा रहा था, उसकी मूलक मान्त्रिक म भी दिखा देती है और काफी पले दिखा देती है, इसलिये कि अपनी मार्मिक महदयता के कारण उस परिवर्तन के चिह लेगना का मरसे पहल दिखाइ दिय थ। इहां का संगठित रूप प्रगतिशील मान्त्रिक के आन्दोलन में प्रकट हुआ। इस नय आन्दोलन के विराधी यद भूल जात हैं कि मान्त्रिक का यह नर गान्धिक देश म एर उहुत बडे परिवर्तन की सूचन थी। स्वाधीनता आन्दोलन म जो परिवर्तन हुआ था, वह इमा साहित्यिक धारा म प्रतिबिम्बित हुआ। वे लाग देश के स्वाधीनता आन्दोलन और मान्त्रिक की नवान चेतना क प्रति बहुत

वला अन्तर्गत है जो दश का सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि का एकदम जुलाफ़ नया साहित्य का एक आकस्मिक और अनपेक्षित घटना के रूप में व्यक्त हैं। निम्नलिखित चार-पाँच वर्षों में—जाना मन् '२० का आन्दोलन खत्म होने से लम्बे १५ अगस्त के राजनीतिक परिवर्तन तक—प्रगतिशाल साहित्य ने स्वाभिनवा आन्दोलन का माथ-माथ आगे बढ़कर उमरों चेतना को प्रतिबिम्बित किया है। इन वर्षों में यह नई विचारधारा एक महान् प्रेरणा और रचनात्मक शक्ति के रूप में हमारे सामने आती है। निगलाना के रेखाचित्र, पतञ्जलि का 'ग्राम्या', सुमन और निरंकर का औषधियाँ रितायें, नरेन्द्र का 'मिष्टा ओग फूल', गङ्गुलजी और यशपाल का उपयाम यादि आदि उमा भावना का परिणाम हैं जो राजनीतिक मुद्दों से अस्तुष्ट होकर नए साम्राज्य विरोधी क्रान्ति और उमर का समान का नया निमाण का अरना लक्ष्य बना रही थी।

१९३६ में युद्ध छिड़ने से इस महत्त्व विकास का एक धक्का लगा। दश में एक राजनीतिक गतिविधि पेश हो गया। ब्रिटेन में काफी माल भाव किया गया लानन नवाजा कुछ न निकला। जनता का माँग थी कि नया राणय सरकार होने परतु साम्राज्यवादी इस माँग का परारर अनसुनी कर रहे थे। फामस्टा का आक्रमण यूरोप तक सीमित न रह कर एशिया के भी एक बहुत बड़े हिस्से को लपट चुका था। हिन्द एशिया, विभक्तनाम उमा आदि दक्षिण पूर्वा एशिया के तमाम भाग जापानवा का अधिभार में आ गये। जापाना इस भारत के नगर पर भी गिरन लग। देश का रक्षा का कोई समुचित उपाय न हो रहा था। जापान आक्रमण करना चाहता था यह बात निर्विवाद है। चीन, उमा और दूसरे देशों में उमने स्वाधीनता संग्राम नहीं छड़ सका था, यह भी निर्विवाद है। दुस्तान में कोई भी राजनीतिक विचारधारा

ग पायीं सुन्दर यह नदी बहती थी। नगर का आरम्भ होने  
 चाहिये और उसमें विदुत्तान का प्राण मिलना, लुप्त रूप का कुछ  
 लोग चाहे जा प्रचार रूप है। प्राणद वि का व मुक्त  
 और दूसरे ज्ञाना स य बात गति हुए कि जापानी फामिदन श्री  
 आद वि फौज का पटल नया बढता था। फामिदा का वाग्य  
 थी कि हम फौज का प्रया विषय का मान बनाये। देश का  
 स्वाधनता चांगराल माधरग मिषानिया का च्छा था कि उनसे  
 चगुल म न केसर प्रथो मगडन का दरतव रगत हुए प्रिथि  
 साम्राज्यवाद म माना लें। उस साम्राज्य विगरी भारत का सांगु—  
 फामिदा स रिता गुतमेरा क कारण न—आद वि फौज  
 का प्रश्न आर चलकर राप्रय अदलन का एक मस्तिपण  
 प्रश्न बन गया। लस्ति हमर पस्ति, देश म रगत न अराल का  
 भाषण दुाटना हा चुना था। इस घटना ने विन्दा क नये-पुगत  
 प्रा मभी लगना का आन्वलित रिया। नय लगना म शोयरा म  
 न अराल पस्ति रगत का याना ही श्री रिषात्रा लिये।  
 अमृतनाल नागर न 'महाजाल' उपनाम लखा तिमरा ज्ञानो  
 उराने चित्तप्रमाद आदि ऐसे लाग म एकर का था का अराल  
 का अभारिका म गहुना निरस परिचित थे। शय मास्ति म  
 धामता म्पादेरा वमा, बच्चा, दिनकर मुमन, नरट प्रादि न स्मर-  
 राय रितारो रिया। का लाग मास्ति का मुगविधायक सामात्र  
 घटनाया म अरुना रगत चात व, उरें मुं का राना प।।  
 छायागत का विद्वानी सामात्र पत् अत्रिक पुष्ट हुया और प्रगति  
 शाल विराधारा म धुलमिा कर एक हा गया, उरना पनावनरादा  
 पत् निल्ल व नरक धगशरा हा गया। छायागत के समथर कड  
 अगमर्थ प्राचाचरा का छात्रर छायागती करिया ने मय पदल का  
 कात्यनिर उराना का निर्या का श्री सास्ति म सामात्र यथाय

का मार्ग था। हमारे साहित्य में जीवन का परिवर्तन हो गया था, यह महादेशात्मा की 'अपनी बात' (अपन डायरी) में बहुत स्पष्ट लिखा है। उन्धान लिखा था — "आज ढाई करोड़ अखि किसान और नेता म काम करने वाले अभिजात का रंग है मित्तुन, आजीविका के भिनाशन, विनाश है 'आपि ग्रीक लक्ष्य है मृत्यु। अपने उदर का पूर्ति करने में भा असमर्थ यह धरता के पुत्र चलन के नियमों के अनेकाले परिणामों के समान नगरों का आन गौड़ पड़े। यही मे माना उनका प्रमाण था आरंभ हो जाती है। अब इन आमाशा के हृदय में धरता में मिली स्वच्छता का उल्लास था, अर्थात् म आभिव्यक्ति के विषय, पैदा में उत्तम का दृढ़ता थी और हाथा में उन्धान का रंग था, तब भी नगरों में उन् कर्मा गप मर छाया गड़ी थी। फिर आज का अद्वैतवादा ने इन उन्माने पैदा, अर्थात् हाथा, सभीन अर्थात् और दृष्टे हाथा न साथ उन मित्तुका का बाल म गैठने देना जो अपनी विस्मयिता का प्रदर्शन करने की नीति का प्राप्त करते हुये दुःखार्थ न समर्थ पर हा नम मृत्यु का अभिभव करने हैं।

"आज न निराह मानन की 'यथा का समुद्र आज के लेखक का, जीवन का नम महात्तम्य, कोइ अमूल्य सच न से सदेगा, देना विश्वास रहित है। म दुर्भिन का ज्ञाता परत करत हमारे अन्त-धारा, लेखन का नूला यदि स्वयं न हो सका तो उसे रात हो जाना पड़ेगा। किन्तु ऐसा चलना करना भी अच्छे कलाकार का अपमान करता है। यदि न आधुनिक युगीन विद्या के ज्ञान में स्थित रह सके, आज की मन्-बुद्धि का गौदन उनका चेतना का न हो सके और उतमान सामाजिक विज्ञान तथा साम्प्रदायिक (राज्यता का धूल उसका हाथ का पुंषला न कर सके, तो न सत्याय पथ का पथी न अन्त होगा, न विचलित।"

विद्यार्थीन पाठन देवेगे कि ऊपर कहा हुआ बातें केवल मातृभार

का परिणाम नदा है। इनमें मनुष्य के प्रति सहानुभूति के साथ साथ एक दृष्ट मनासल भी है जो मनुष्य के ही प्रयत्न से इस दुखस्थिति को दूर करके एक नया व्यवस्था का जन्म देने में विश्वास करता है। यह पर साहित्य का कल्याण जिलाम की वस्तु न मानकर समाज का उत्थिति पथ पर अग्रसर करने वाला एक महान् प्रेरक शक्ति के रूप में देखा गया है। साहित्य की पुराने पथी विचारधारा से इस नई चेतना का अंतर स्पष्ट हो जाता है। साहित्य कुछ रसिज्ञा और ममता की वस्तु न रहकर लेखक का चुनौती देता है कि मानव-व्यथा का समुद्र से बाजीवी का महान् तथ्य और अमूल्य सत्य निजाल। साम्प्रदायिक मर्यादा और सामाजिक विवृति से अपने को रचाकर ही वह निद लेखन करने सक्त है। ऊपर के वाक्या में दुर्भिक्ष की ज्वाला का बदल बरि १९४७ का जनसंहार निग्न दें, ता य पुरानी बातें यात्र भा हमारे लिये एक चेतावनी का काम करेंगी। सामाजिक नवीणता की रात पहल से सौ गुना ज्यादा खरी उतरती है। इस युग में ता और भी लेखक के लिये प्राश्यक है कि वे अपने मानवीय आदर्शों की रक्षा करें और समाज का मध्यशाला पररता का आर लौटने से रोके।

बंगाल के अकाल का बाद कुछ दिनों के लिये साहित्य में फिर ठहराव आया। साम्राज्य-विरोधी क्रांति का पथ पुँगला हो रहा था। देश में चार-बजारों और मुनाफारारों नाम की ब्याकियाँ फैल रही थी। उच्च और मध्य वर्ग के लोगों का नैतिक धरातल गड़ा जांचा हो रहा था। देश में पुँजावाद दिन पर दिन एक प्रतिप्रियावादी शक्ति के रूप में सामने आ रहा था। उसने साथ में प्रचार और प्रकाशन का साधन भी आगे बढ़ अपना साथ वृत्ति और असत्य जनता का भूना और गगा करने का अपराध को छिपा रहा था। नये मनि-मण्डल बनने के बाद भी अनेक तन चार जाचारी और मुनाफारारी

निर्मूल नहीं हो सनी। इससे पता चलता है कि समाज का आर्थिक व्यवस्था और उसकी नैतिकता पर कैसा घातक प्रभाव निहित स्वार्थों ने किया है।

नेताओं के छूटने के बाद जनसाधारण में नई आशा पैदा हुई। बड़े-बड़े प्रदर्शन हुये और यह विश्वास दृढ़ होने लगा कि अब गति रोध मिट जायगा और वर्षों बाद पुराना स्वाधीनता की साध पूरा होगी। आजाद हिन्द फौज के उन्धियों को लेकर प्रथम आन्दोलन छेड़ दिया गया। देश के नारीले नवयुवकों ने फिर पहल की तरह अंग्रेजी फौज और पुलिस का गालियों का सामना किया। इस आन्दोलन से बहुत से लेखक प्रभावित हुए और आजाद हिन्द फौज पर अनेक कविताएँ लेख, कहानियाँ लिखी गयीं। इससे पता चलता है कि जनता का साम्राज्यविराधी भावना कितना प्रबल थी। इस भावना से लाभ उठाकर दक्षिण पथा नेताओं ने चुनाव में घाट लिये और घाट लाने के बाद आजाद हिन्द फौज की समस्या से तटस्थ हो गये। काफी दिन बाद उन्धियों का रिहा किया गया, लेकिन स्वाधीन भारत की फौज में उन्हें जो उचित स्थान मिलना चाहिये था, वह यथा तर्क उन्हें नही दिया गया।

इस समय यूरोप और एशिया के अनेक देशों में युद्धोत्तर काल का उम्र सन्तानात्मक आन्दोलन मशरूफ़ क्रांति का रूप ले रहा था। त्रियत-नाम और हिन्द-एशिया—भारत के प्रान्तों जैसे—देशों ने भी डच, फ्रांसीसी और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ हथियार उठा लिये थे। सुमन का कविता 'नई आग है, नई आग है' में एशिया का जाग्रत जनता का नया स्वर सुनाइ देता है। उभर पूर्वा यूरोप के स्वाधीनता आन्दोलनों के ब्रिटिश और अमरासी पूँजा का विनाश बाहर किया। पोलैण्ड, यूगोस्लाविया, जेकोस्लारविया आदि देशों ने वास्तविक स्वाधीनता प्राप्त की। यूनान का प्राचीन देश पहले



तुकों और राद को अंग्रेज़ों का उपनिवेश बन गया था। वहाँ की प्रतिभियावादी शक्तियाँ अंग्रेज़ों से मिलकर जनता के स्वाधीनता आन्दोलन का दगाना चाहता था। इनके विरुद्ध जनवादी शक्तियों ने अपना नया मोर्चा बनाया और सशस्त्र लड़ा छेड़ गी। दिनकर ने लिना—

“लडा हो, कि पच्छिम के बुचले हुये लोग  
उठने लगे ले मराल,  
गटा हो, कि पूरुव की छाती से भी  
फूटने का है ज्वाला कराल।”

इस तरह हिन्दी के उप-पथी कविया ने यूरोप और एशिया न स्वाधीनता आन्दोलन के प्रति भारतीय जनता की महानुभूति प्रकट की। यह इस बात की सूचना देता है कि जा लोग राष्ट्रियता के नाम पर ब्रिटिश या अमरीकी साम्राज्य से हिन्दुस्तान का गठनधन करना चाहत हैं और साम्यत विराधी प्रचार करके अपने मसूरा न ढँकना चाहत हैं, उनका विराध हिन्दी के सभी सचेत लेखक करेग।

ब्रिटिश साम्राज्य के युद्धात्तर कालान सफट म हिन्दुस्तान की जनता ने स्वाधीनता के मार्च का मजबूत बनाया। फौज, पुलिस टाक-तार आदि क विभागा में भी यह सामाज्य विरोधी चेतना आग बनकर फैल गयी। तमाम हिन्दुस्तान का हिला जनवाता डानियों न हटताल हुई। किसानों ने जर्मादारी प्रथा नो मिटान के लिये खुद कदम उठाया। ब्रिटिश शक्ति के हिन्दुस्तानी अड्डा, देशा राज्या में, वहाँ का प्रजा ने नये नये आंदोलन चलाये। निशपरुप से शस अन्दुल्ला के नेतृत्व म काश्मीर की जनता ने गड़ी,वीरता से युद्ध किया। सबसे गढ़ी घटना रम्वइ का नायक विद्राद थी। सन् '५७ क राद पहली बार हिन्दुस्तानी ताशा न अंग्रेजी फौजा पर गोक उगल। रम्वइ की तमाम जनता ने विद्रादियों का साथ दिया।

नायिका ने नेताओं के कहने से आत्मसमर्पण किया। लेकिन अंग्रेजों को नहीं, भारत का। इन क्रान्तिकारी घटनाओं का साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा। नये गीत, कवितायें और कहानियाँ इन सब घटनाओं पर लिखी गई। परन्तु साहित्य की यह क्रान्तिकारी धारा गहरी तरह पृष्ठ में ही पायी। दक्षिण पंथी नेताओं के साथ मुल्क की गतचीत करके अंग्रेज सरकार का शिष्ट कर रहे थे कि इस क्रान्तिकारी उठान को रात ही न दिया जाय, वरन् हिन्दुस्तान का एक नय गृह युद्ध ही प्रायः में स्थापित दिया जाय। यह दाँव चलाने के लिये राजस्व का बागडार उठाने काग्रेसी नेताओं का सौंप दा। उसके बाद तो वह चाहत य बना हुआ। भारत के अंग्रेजों की जिम्मेदारी उठाने हिन्दुस्तान के नेताओं पर डाला। पौर और पुत्रिक के भावर घुसे हुये अंग्रेज अफसरों ने अपने निर्याते पंथीय पुराने साथियों का मदद से बड़े पैमाने पर नरमत्त करवाया। हिन्दू और मुस्लिम राष्ट्र का प्रचार जारों से हाने लगा। देश की सामन्ती और पूँजीवादी शक्तियाँ अल्पसंख्यक का राजनानिक दाव घात के लिये गाय रनाकर गेजने लगीं। उनका यह प्रयत्न अब भी जारी है कि देश में अराजकता पैदा करके वे साम्राज्यवादी ताकत का विलुल निरम्मा कर दें और तिन अंग्रेजों का छत्र छाया में वे अब तक पलता रहा था, उन हिन्दुस्तान के दुश्मन का फिर बना बुलालें। य प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ आज कितना मुँहवार हैं। गइ हैं इतना पता इसी रात से लगता है। एक राष्ट्रीय सरकार में ऐम एम लाग धुम गय हैं तिनका स्वाधानता आन्दोलन स रमी को सम्भव नहीं रहा। यहा नहीं, अंग्रेजों से मिलकर वे स्वाधीनता आन्दोलन का रातर विरोध भी करते रहे थे।

आज यह किसी से छिपा नहीं है कि हिन्दुस्तान का स्वाधानता आन्दोलन एक बहुत बड़े सफट में है। इस सफट का गहरा करने



पूँजीवादी पत्रों ने नये उत्साह में प्रगतिशील साहित्य के आन्दोलन पर हमला शुरू कर दिया है। वे जानते हैं कि साहित्य में यह नई विचारधारा हा उनका जहराले प्रचार का गण्डन करती है। वे अभी इस विचार धारा का रूस से आइ हुई बताते हैं, कभी उसे कम्युनिस्टों का पञ्जरा कहते हैं। कुछ और लोग टूर की चौड़ी लाकर उसका सम्बन्ध विज्ञा और मुस्लिम लीग से भी जाड़ते हैं। उनका लक्ष्य बहुत स्पष्ट है। वे शान्ति के आन्दोलन का विफल करने शहयुद्ध को उसका आगिरी मन्त्रित तक लं जाना चाहते हैं। प्रगतिशील साहित्य के विरोध में किन्ती मचाइ है, हमारी कसौटी यह है कि उसके विरोधी शान्ति आन्दोलन का किन्तीना उपाते हैं और साम्प्रदायिक द्वेष का किन्तीना कम करते हैं। वे खुलकर अपना साम्प्रदायिकता का राक्षस कहते हैं किन्ती उनका इस गण्डनता का हमारे अन्तर के स्वाधीनता आन्दोलन से का सम्बन्ध नहा है। प्रतिद्विधावादी शक्ति और उनके मुख्य पत्र शान्ति और स्वाधीनता के आन्दोलन का किन्तीना कमजोर सम्बन्ध रूँटे हैं, उनका यह नहा है। उसी के साथ हिन्दी का नया साहित्य जुड़ा हुआ है। उनका पराजय निश्चित है क्योंकि साम्प्रदायिकता से राक्षसता बढ़ी है, अज्ञता से अनुप्यता गठी है, अंग्रेजी कृतनात में स्वाधीनता प्रेम बढ़ा है, कठपुतली राजाया और मुनाफारयाओं में भारतीय जनता की सम्मिलित शक्ति बढ़ी है। इसीलिये साम्प्रदायिक विद्वेष और शहयुद्ध का प्रचार करने गले, हिन्दी भाषा और साहित्य को क्लान्त करने गले इन पूँजीवादी पत्रों के अर्थप्रचार पर भी साहित्य की प्राणवत नया चेतना विजय पायेगा।

( अक्टूबर ४७ )

## गोस्वामी तुलसीदास और मध्यकालीन भारत

गोस्वामी तुलसीदास भारतवर्ष के अमर रत्न हैं। इसमें किसी को सन्देह नहीं है, परन्तु वे मध्यकालीन भारत के प्रतिनिधि कवि हैं, इसका भार मिला जा सकता है। देश की सामाजिक प्रगति में उनका स्थान कहाँ है, उन्हें प्रगति का समर्थक कहा जाय या प्रतिनिधायक, हिन्दू समाज पर जा उनका धर्म और नीति का गहरा छाप है, उससे देश का कल्याण हुआ है या अकल्याण इन प्रश्नों का लेकर लोगों में यथेष्ट मतभेद है। गोस्वामीजी वृष्णाश्रम धर्म का समर्थक थे, सिन्धु का सहज अपावन मानते थे, राजा राम' के उपामर और उनके गुणगायक थे, तब प्रगति से उनका सम्बन्ध कैसे जाता जा सकता है? डा० तागबन्द ने "भारतीय सभ्यता पर इस्लाम का प्रभाव" नाम की अपनी पुस्तक में रामानन्द का शिष्य परपरा का दो भागों में बाँटा है। पहला का 'कज्रवेष्टित और दूसरा का 'रंजित' बताया है। पहला का नेता तुलसीदास हैं और दूसरी का कबीर। इसका विपरीत प० रामचन्द्र शुक्ल कबीर और दूसरे निगुणपथी साधुओं और सुधारकों का दाग और समाज का बरगलान वाला समझते हैं। वह गोस्वामीजी का न रंजित कहते हैं, न कज्रवेष्टित वरन् उन्हें लोहित का उदाहरण मानते हैं। शुक्लता वृष्णाश्रम धर्म का समर्थक हैं, इसलिए वह उसका लिए किसी तरह की क्षमा-वाचना करने की आवश्यकता का अनुभव नहीं करते। वरन् उन्हीं 'लोहित' इस धर्म की स्थापना में ही है जिस कबीर आदि निगुणपथी दृष्टांत रहे थे। क्या तुलसीदास का लोहित चिन्तन वृष्णाश्रम धर्म तक ही सीमित है?

प्रत्येक कवि और महान् लेखक अपने युग से प्रभावित होता है, युगसत्य उसकी रचनाओं में प्रातिरिम्बित होता है, युगसत्य की व्यक्तता से कवि अपने युग का भी प्रभावित करता है, उसके परिवर्तन में, उसकी प्रगति में उसका हाथ होता है। ऐसा कवि और लेखक ही महान् साहित्यकार हो सकता है। परन्तु युग का परखने में, परिस्थितियों को आँकने में और उनमें कवि का सम्बन्ध ढाढने में बड़ी सावधानी का आवश्यकता है। रूसी लेखक तात्स्नाय क्रान्ति से पराह्मण थे, फिर भी लेनिन ने उन्हें 'रूसी क्रान्ति का दण्ड' कहा था। इमलिये कहा था कि अपने समय का महान् सामाजिक प्रगति के यह पहलुओं का प्रति-उक्ति उनकी रचनाओं में आती थी। शेक्सपियर राजसत्तावादी था, फिर भी माकम उसके साहित्य का अभिनन्दन और समर्थन करते थे इमलिये कि सामन्तात्मक सभ्यता के विरुद्ध नवजागरण ( रिनसास ) का नेता शेक्सपियर निश्चय ही एक विद्रोही कवि था। फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति के अग्रगण्य तब तक प्रसिद्ध 'शक्ति' राजसत्तावादी थे, फिर भी क्रान्ति के लिये उनका जो महत्त्व था उसे सभी जानते हैं। यह महत्त्व इमलिये था कि उन्होंने विचारशीली में, चिन्तन-व्यवृत्ति में ही, एक क्रान्ति कर दी जो जिसका व्यापक प्रभाव फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति में प्रतिफलित हुआ। गोस्वामी तुलसीदास के वर्णाश्रमधर्म पर विचार करते हुये इन उदाहरणों का मन में रखना अनुपयोगी न होगा। गोस्वामीजी महान् हैं, क्योंकि उन्होंने ब्राह्मणों को भूसुर रहकर लोकमयादा की ग्ना का,—यह तक भ्रामक है। वे प्रतिनियोगवादी हैं, क्योंकि उन्होंने वर्णाश्रमधर्म का समर्थन किया है—यह भी एक युक्तक है जो सामाजिक सधन और प्रगति का। टास्कीन न पढ़वाने के कारण उत्पन्न होता है।

तुलसी-साहित्य का सामाजिक महत्त्व परखने के पहले उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर एक बार दृष्टि डालना आवश्यक है।

तुलसीदास का माल मुगल साम्राज्य के वैभव का फल था। अकबर और जहांगीर उनके सम सामयिक थे। हुमायूँ और शेरशाह के प्रस्थापी शासन के बाद अकबर ने मुगल सिंहासन का पाया जमा लिया था और वह धीरे-धीरे अपना राज्य विस्तार कर रहा था। अकबर ने धर्मावता और कट्टरपन को गहरी ठेस पहुँचाई थी और हिन्दू-मुस्लिम एकता की 'अपना' नीति से देश में शान्ति स्थापित की थी। ना लोग समझते हैं कि तुलसीदास ने इस्लाम का स्तरित प्रगति को रोकने के लिये रामचरित मानस का रचना की, उन्हें यह न भूलना चाहिये कि कट्टर नुवा और मौलवी अकबर पर क्या दाव लगाते थे कि उसका इस्लाम में मुँह फेर लिया है। उनकी अनुकरण पर सिध्द जैसे इतिहासकार अकबर का अपना धर्म त्यागने का दोषी कहते हैं। यह आपागण अनुचित है, परन्तु उससे यह भी स्पष्ट है कि अकबर इस्लाम का कट्टर प्रचारक न था। उनमें जगिया उन्द करा दिया था और जनसाधारण का एक व्यापक धर्मसम्बन्धी स्थापना दे दी थी।

अकबर गणपूत मरदाना की अपना सम्बन्धी बनाकर अपने शासन का दृष्ट कुरना चाहता था। उसका मुख्य ध्येय राजनीतिक था। हिन्दू सामन्तवाद के विपर ह्य विराय का समेटकर अकबर ने उसे अपना समर्थन बना लिया। उनकी नीति स्तुन कुट्ट अकारिया की सी थी सामन्त उनसे विरायी न हारर समर्थक बन गये। अकबर का शासन हिन्दू और मुस्लिम सामन्तवाद का युक्त शासन था, उसका हिन्दू-मुस्लिम एकता का त्रिधात्मक रूप बना था। फिर भी उसका धर्म-सम्बन्धी नीति उदार था। उस समय प्रश्न हिन्दू धर्म की रक्षा का न था। यह प्रश्न अकबर के पले का था। उनकी उदार धार्मिक नीति के सामने गोस्वामी तुलसीदास ने यदि हिन्दू धर्म की रक्षा की तो इसमें उनकी कौन सी बढ़ाई हुई। वास्तव में गोस्वामीजी

ने हिन्दू धर्म की रक्षा की, परन्तु अक्षर और इस्लाम से नहीं, उन्होंने रक्षा की उसकी अपने आंतरिक शत्रुओं से, मतमतान्तर, द्वेष, कलह अध विश्वास से। परन्तु उनकी दृष्टि इस क्षेत्र से बाहर भा गई थी।

मुगल वैभव का यहाँ नित्र देने की प्राण्यता नहीं है। समस्त सभार में अद्वितीय उनके दरबारों का चकाचौंध की कल्पना मात्र कर लीजिये। उनके वैभव में योग देनेवाले सिद्ध और मुसलमान राजा और सरदार थे। ( निरोप विवरण के लिये देखिये श्री राम प्रसाद खोसला की पुस्तक 'मुगल सिगशिप एंड नाविलिटी' ) राज्य की आमदनी का एक ही उत्सग था—भूमि। जैसा कि अग्नेय इतिहासकारों ने लिखा है, भूमि से ही मुख्य आमदनी होने के कारण हिन्दु रतान में "रेवेयू" कहने से लोगों को "लैंड रेवेयू" का ही बोध होता है। इसी भूमि पर आधार पर राजदरबार की शोभा थी और उमी के तल पर अक्षर ने गुजगत से लेकर गगल तक अपना राज्य विस्तार किया था। इस प्रकार मध्यकालीन भारत में मुख्य उत्पादक शक्ति किसान थे और उनके उत्पाद से लाभ उठानेवाले हिन्दू और मुगल सामन्त थे, चित्त में मुख्य गगडन केन्द्र अक्षर का दरबार था।

भूमि-गमनरी कर व्यवस्था उचित था या अनुचित यह प्रश्न बाद का है। मुगल शासन में का व्यवस्था या उसका पाना कहाँ तक होता है, मुख्य प्रश्न तब यदा था। जेर शासन कर मध्यधी व्यवस्था में अक्षुत प्रतिभा का परिचय दिया था। परन्तु उसके शासन का शीन ही अन्त हा गया। अक्षर के शासन का आगम्भ होने के पहले देश में भयावर अकाल पड़ा। दा माल के युद्धों ने जनता के ही प्रादि प्रादि कर रदा थी। उम पर मलामारा का भी प्रकाय हुआ। गोस्वामी तुलसीदास का अपने जीवन के अन्तिम दिना में फिर इस महामारी का सामना करना पड़ा। पतेहपर मारदा और



सिकन्दरा के स्मारकों में लिखे हुए इतिहास का दूसरा पक्ष यह अकाल और मरामागै है ।

शासन के आरम्भिक वर्षों में अकबर ने शेरशाह की मनाहट हुई लगान की दर से किसानों से कर वसूल किया । शेरशाह ने अन्न का जा माना निश्चित की थी, उसके दाम लगाकर लगान तैयार किया जाता था । यह दाम स्वयं अकबर तैयार करता था और हर जगह एक ही दाम लगाये जाते थे । परन्तु चीजा का फामत तो जगह जगह पर अलग होती थी, इसलिए यह लगान की दर उड़ी गलत चलती थी । अकबर के शासन के दसवें साल में अलग-अलग जगहों में भाव के अनुसार लगान तैयार किया गया । पन्द्रहवें साल में लगान की नयी दरें तैयार हुई । हर परगने की पैदावार के अनुसार उसके एक पिढाई का दाम लगाकर लगान तैयार किया गया । दस साल तक यह क्रम चलता रहा । लेकिन किस फसल में भाव उहाँ पर कितना है, इस मरामागै विचार करना पड़ता था । हर फसल के लिए जगह जगह के भाव समझाट्ट ही तैयार करता था । शुद्ध आदि की आवश्यकताओं के कारण अकबर का मरामागै चलने रहना पड़ता था । इसलिए उसका हुकुमनाम निकलाने में देर हो जाती थी और मरामागै व्यवस्था की गति रुक हो जाता थी । स्थायी भावों की गलत रिपोर्टों में अकबर पास भेजा जाता था । इसलिए दस साल के बाद अकबर ने भाव तैयार वाला किस्सा खत्म कर दिया और भाव के हिसाब से लगान तैयार कर दिया ।

मालगुजारी का एक दूसरी समस्या उन लोगों का था, जिन्हें तनखाह के बदले ज़मीन दे दी जाती थी । ज़मीन का सरकारी लगान ही उनकी तनखाह होता था । १५७३ में अकबर ने इस प्रथा का अन्त कर दिया और भिक्षुओं को तनखाह देने का प्रबंध किया । परन्तु १५८० में भूमि देने का फिर चलान हो गया ।

मालगुज्तारी विभाग का चलाना बड़ी जीयट का काम था। यत्र पैदा करने से ज्यादा कठिन हर जगह भाव आदि का हिसाब करके लगान ले करना था। घूमसारा और अत्याचार के लिए द्वार खुला हुआ था और शाह मसूरे प्रबंध में तो उस हद हो गई थी। जिन लोगों का भूमि मिस्री हुई थी, वे तो किसानों के भाग्यविधाता थे। जो राजा अफसर का सम्राट् मानस कर देते थे, उनका व्यवस्था अलग थी। ऐसे ही राज्य के दूर के खानों में वहां व्यवस्था न थी जो आगरा और अजमेर में थी, जहाँगार के शासनकाल में यह व्यवस्था भी टूटने लगी और शाहजहाँ के समय में किसानों की बुरा दशा हो गई। किसान जमान छाट छोड़कर भागने लग गए और औरगजेर का यह आशा निकालना पड़ा कि अफसर रहने से किसान जमान न जायें तो उन्हें सजा से पिटाई कर रोते तुतयाय जायें। (मंगलह प्रॉम अफसर टु औरगजेर, पृ० २५४)

इस नारस गाथा का तात्पर यह है कि मध्यकालीन भारत में मालगुज्तारी वसूल करने में बड़ा धाँधला होनी था। हमने मध्यकाल के जिन सुनहले स्वप्न का कल्पना कर रखा है, वे वास्तविकता का भ्रम पर चूर हो जाते हैं। उस समय का मुख्य मस्ये सामंत और किसान के बीच था। ज्यादा हम औरगजेर की ओर नज़र हैं, क्योंकि सत्यता प्रकट होता जाता है। अफसर से पदले विभिन्न युद्धों के कारण उस पर पदा पड़ा रहा। विशेष कर हिंदू मुस्लिम राज्य का समझना न मदद का। औरगजेर का कट्टर धार्मिक नाति के कारण फिर इस सभ्य पर पदा पड़ गया और उस समय प्रकट अब कि यह सभ्य प्रसर हो रहा था।

इस प्रकार वग-सभ्य देना देना रहा और दूसरा-दूसरी समझनाओं से लाग उलझ रहे। इसलिए हम किसी मध्यकालीन कवि से यह आशा नहीं कर सकते कि वह वग-सभ्य का स्पष्ट चित्रण करेगा, कि वह

राजाश्री और सामन्तों के विरुद्ध किसानों के राज्य की माँग करेगा। परन्तु बिना अपनी रूप रेखा स्पष्ट किये हुए भी यह सधर्म विद्यमान था और किसी न किसी रूप में उस समय क महान् साहित्यिकों की रचनाओं में उसका छाया मिलेगी ही। अन्तर और जहाँगीर के व्यक्तिगत जीवन का, उनके युद्धों का, उनके स्थापत्य सम्बंधा निर्माण कार्य का आधुनिक इतिहास पुस्तकों में जो एकांगी महत्व प्राप्त है, उससे यह कहा जा सकता है कि यह इतिहासकार भी उत्पादन और वर्ग शोषण की समस्याओं के प्रति सचेत हो पाये हैं।

“खेती न किसान का भित्ति का न भीतर पत्तिका पत्तिका का बनिच न चाकर का चामरी”—इस प्रसिद्ध पंक्ति में तुलसीदास ने अपनी भौतिक जागरूकता का परिचय दिया है। कुछ लोग इस पंक्ति का अर्थ कठोर बर्तन का इस जागरूकता से औरों को चुराना चाहते हैं। परन्तु यह छद्म अर्थ नहीं है। जैसा कि प० रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है, गोस्वामीजी ने कलिकाल के वर्णन में अपने समय का ही चित्रण किया है। “कलि मारहि मार दुमाल परे” यदि पत्तिका कल्पनालाभ का चित्रण नहीं करता। उनका तथ्य तुलसी के युग का तथ्य है और इतिहास उसका साक्षात् है। बचपन में उदाते जो कष्ट पाया था, उसका मार्मिक वर्णन उनका छंदों में मिलता है। कुछ विद्वान् उसे भगवान् का पुसलाने का यज्ञाना समझते हैं। उनका समझ में महान् विद्वान् तुलसीदास के लिए यह कहना कि बचपन में उदाते का तथ्य पढ़ा, उनका अपमान करना है। उनका समझ में राहुपीठा का वर्णन भी एक कल्पना है। काशी में महामारी का वर्णन समस्त काशी निवासियों को मोक्ष दिलाने का यज्ञाना है। अपने का पत्तिका का सिरता न कहना और बात है, अन्तर, महामारी, राहुपीठा आदि का यथाथ वर्णन करना निरुल्लूख दूसरी बात है। तुलसीदास जन्म भर अपने

कर्ण का नहीं भूले, इस जन्म में उनके कष्टों का अन्त हो गया, यह भी निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। इस कारण दुर्गिया और पीड़िता के प्रति उन्हें सहज सहानुभूति थी और मध्यकाल से लम्बे अत्र तत्र मानव-सुलभ सुहृदयता के सपने बड़े रूप में तुलसीदास ही हैं। सुहृदयता के अद्वितीय प्रतीक त्रयाध्यात्मों के भारत हैं।

अपने समय की दुर्गस्था के कारण ही उन्होंने रामराय की कल्पना की। दुर्गस्था के कारण ही उन्होंने कहा कि—“जासु राज प्रिय प्रजा दुर्गारी। सो नृप अत्रमि नरक अधिकारी।” उत्तरकांड में एक और राम राज्य की कल्पना, दूमरी और कलियुग की यथार्थता द्वारा तुलसीदास ने अपने आदर्श के साथ वास्तविक परिस्थिति का चित्रण कर दिया है। जिस भी दूसरे रूप में चित्रों में ऐसा ताव नियमता नहीं है, किसी के चित्रण में यह “कण्ठ” नहीं मिलता, परन्तु रामराय के सिवा अन्यत्र भी दुष्ट शासकों पर उन्होंने अपने वाग्मण्य उरसाये हैं। उन्होंने भविष्य वाग्मणी की हैं कि राज्य और कीर्ति के समान इन शामकों का भी अन्त होगा।

“राजकरत विनु कान हा, करें कुचालि कुमान ।  
तुलमा ते दसकध ज्या, जइहें सहित ममान ॥  
राज करत विनु राज ही, करहि जा कूर कुटाट ।  
तुलमा ते कुम्हान ज्या, जइहें बाग्इ गट ॥”

ये मायागण दोहे नहीं हैं, वे कवि का शाप हैं। कुटाट करने वाले शासकों का उद्धार उच्छा नहीं है और उनके गारहनाट होने का कामना की है। अन्त कहते हैं कि शापण कर्णों वाले बहुत हैं परन्तु जन्ता का हित करनेवाले कम हैं। पाठक “जगन्नीरन” और “मायन” शब्दों पर भाष्यान दे।

“तुलमा जगन्नीरन अन्ति, कतहें काउ दित जानि ।  
सोपन भानु वृषानु महि, पवन एर धन दानि ॥”

स्वार्थ पाथक देवताओं और राजाओं को एक ही श्रेणी में गढ़ा करने कवि ने उन पर एक साथ प्रहार किया है। देवता उल्लिखित चाहते हैं, राजा कर, और राता में उन् काम नहा है।

‘उल्लिखित देसे देवता, कर मिल यादव देव।

मुए मार मुनिचार इत, स्वारथ माधन एव ॥’

एक अर्थ दाहे में उहाने कहा है। कृष्णी गाय क समान है जा उच्छे जैसी प्रजा क लिए पहाती (अपना दूध उतारती) है, उसक पेर बाँध देने से अथात् भूमि सम्बन्धी नियंत्रण ने राजा के हाथ कुछ भी न लगेगा।

“धरणि धनु चाग्नितु चरत, प्रजा सुच्छे पहाद।

दाथ कडू गहि लागिहै, किए गोडकी गा ॥”

यह सही है कि कलियुग के वर्णन में तुलसीदास ने बणाभम धम क नष्ट होने पर लाभ प्रप्त किया है, परन्तु इसक साथ वे समाज की और व्याप्त समस्याओं क प्रति भी सतर्क हैं। अत्रकष्ट, महामारी आदि का उहाने जा वर्णन किया है उगसे मिद्ध होता है कि वे अगद की भाँति अपने युग की सामयिकता में पाव रोपे हुए थे। तुलसीदास में अादश और यथाय का विचित्र मम्मिश्रण है। उनक सामाजिक वर्णन में, उपमाओं में, शब्द चयन आदि में एक ऐसे यक्ति की छाप है, जिसमें अपनी भौतिक पृष्ठभूमि के प्रति अनाधारण आगरूकता है।

उस जागरूकता की भीमाँ अवश्य हैं। यह स्पष्ट है कि वे अपने युग का समस्याओं से परिचित थे, परन्तु उन समस्याओं की रूपरेखा अभी विलुक्त स्पष्ट न हुई थी। किसान दुग्नी हैं, प्रजा पीड़ित है, राजा उत्तरदायित्व शून्य हैं, परन्तु इस व्यूह से निपलने का मार्ग क्या है? उन्ह ने रामराज्य की कल्पना द्वारा मार्ग लियाया। उहाने अभी यह अनुभव न किया था सामन्तवाद और राजसत्तावाद

का अन्त होने पर ही इस उत्पीड़न का अन्त हो सकता था। सामन्तवाद के साथ जातिप्रथा और वणाश्रम धर्म रूंधा है। बिना एक का अन्त हुए दूसरे का अन्त असम्भव है। जहाँ सामन्तवाद होगा, वहाँ किसी न किसी रूप में यह जाति धर्म भी होगा। अन्याय और शोषण का अन्त करने के लिए उन्होंने पुरानी व्यवस्था का ही सहारा लिया, राजा हाँ, परन्तु न्यायी और प्रजापालक हाँ, वणाश्रम धर्म हो परन्तु व्यवस्थित, रामभक्ता के लिए यथष्ट प्रवर्द्धनागला हा। ये युग की सीमाएँ थीं जिन्होंने गोस्वामीजी के चारों ओर एक लोहे की दीवार खड़ी कर दी थी। उसे तोड़ना ऐसे सहृदय कवि के लिए भी कठिन था।

इस साम्राज्य को अतिरिजित करके देसना भूल होगा। तुलसीदास का सहृदयता और तार्किकता में सदा सामञ्जस्य नहीं रहता था। तर्क-बुद्धि से बिना वणाश्रम धर्म का वे श्रेय समझते हैं, उसी के विरुद्ध उनकी सहृदयता विद्रोह करती थी। जहाँ जहाँ उन्होंने इस सम्बन्ध में कुछ कहा है, वहाँ-वहाँ उनका वाणी में एक तर्कशास्त्री की कठोरता है, कवि तुलसी का चिर-परिचित कामल स्वर नहीं है। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनका मूल संदेश यही है कि मनुष्य उड़ा जाना है अपनी मनुष्यता से, न कि जाति और पद से। और भा, ब्राह्मणों की पुरोहिताइ का वे निन्दा करते हैं। संस्कृत की तुलना में भाषा का समर्पण करके उन्होंने संस्कृत द्वारा पुरोहिती शापण पर सीधा कुटाराघात किया था। एक पद में अपने दाप गिनाते हुए उन्होंने यह भा कहा है—

“निप्रद्राह जनु गँट परधा, हठि सगसाँ पैर ग्वावीं।

ताहू पर निज मति जिलास सब सन्तन मांझ ग्वावीं।”

यदि कष्ट ब्राह्मण उन्हें निप्रद्राही समझते रहे हों, तो काइ आश्चर्य नहीं।

वर्णाश्रम धर्म और राजसत्तावाद के साथ नारी की पराधीनता जुड़ी हुई है। विरक्त होने के नाते वे उसे 'सहज श्रावण' समझते हैं, पति-भक्ति को पराधानता का रूप समझकर वे उस पर श्रौंसू भी उहाते हैं। जिस तुलसी ने 'ढाल गँवार सूद पसु नारी' लिखा था, उसी ने यह भां लिखा था—

'कत विधि सृजिं नारि जग माहा।  
पराधीन सपनेहुँ सुख नाहा।'

और किसान भा चाराइ में उनका हृदय ऐसा द्रवित नहीं हुआ जैसा यहाँ। यह पराधीनता सामन्तवाद के साथ ही समाप्त हो सकती था। तुलसादास की सामानिक व्यवस्था में स्त्रियाँ के लिए पति-सेवा छाड़कर और गति नही है। परंतु इस वे पराधीनता समझते य, यहाँ क्या कम है। पतिसेवा का उपदेश देते हुए ही मना ने पावती से यह बात कहा था।

सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न उनका भक्ति का है। वे पराधान जाति का भक्ति की वृत्ति देखकर माह-निद्रा में सुला रहे य या उसे जगा रहे य ? क्या भक्त मनुष्य का त्रियाशाल भा बना सकता है ?

विनयपानना के पदां में उच्चतम भक्ति-भाव्य हमें मिलता है। कोई भी मध्यकालीन कवि इस तरह स्पष्टता से अपने उपास्यदेव से नहीं बोला, किसी ने राम या कृष्ण का या अपना हृदय चारकर नही दिखा दिया। उनके आत्म-निवेदन में अपार वेदना है और यह वेदना उस व्यक्ति की है जिस अपार कष्ट सहन पड़े हैं। यह उत्कट आत्म निवेदन कल्पना विलास से भिन्न है, जिसे भक्ति का नाम दिया जाता है। माँगकर खाने और भोज करनेवाला का भक्ति दूसरे ढंग की होता है। यह आत्मनिवेदन उस फाय का है जो अपने और दूसरा के कष्टों से पाकिंत है। उसक स्वर में श्राधयदाताआ और उनके

चाटुकारों के प्रति अरुण है। स्वयं वह अपनी भक्ति के भरोसे सारी दुनिया का निराधर सहने को तैयार है।

‘धूत कही, अथधूत कही,  
रजपूत कही, जुलहा कही कोइ ।  
काहू की बेटी सो बेटा न बनाइय,  
जात की जाति निगार न सोइ ॥’

श्रीर,

‘जागै भागी भोगही, वियोगी रागी सोग उस  
सोने मुख तुलसी भरोमे एक राम के ।’

यह नीरस भक्ति नहा, एक उद्दह व्यक्तित्व का प्रदर्शन है। राम में भक्ति होते हुए भी तुलसीदास भक्त का ही उदात्त मानते थे। भरत को राम से उड़ा करके दिग्गयाया था। अया-याकांड में भरत के आत्मत्याग व आगे राम का त्याग भाइलता पद जाता है।

भक्ति का प्रतिक्रियावाद के अन्तर्गत इसलिये समझा जाता है कि वह समाज की उठार समस्याओं से मनुष्य का ध्यान दूरगी और त्याग ल जाती है। भक्त उन्हें सांसारिक दुःख से नहीं मुलमाना चाहता। तुलसीदास मसार और उसका समस्याओं के प्रति जागरूक हैं, अपने ऋग से उन समस्याओं का समाधान भी करते हैं। वे राम के उपासक है, राम के जो आदर्श पति, पुत्र और भाइ है। तुलसीदास की नैतिकता उनका भक्ति से मिला हुई है और दानों का अलग करना कठिन है। इसी नैतिकता अपना मामाचिकता के कारण एक तरह उद्वेग दृष्टिता का हा संरण बना डाला है और राम का पद की आग बुझानेवाला कहा है।

‘दारिद्र्य-दखानन दनाइ दुना दानपधु, दुखित-दहन देपि तुलसी हहाकरी ।



और,

‘तुलसी बुझाई एक राम धनस्याम ही तैं, आगि उड़वागि तैं  
बड़ी है आगि पट की ।’

जिस भक्ति में पेट की आग को बड़वाग्नि से भी उड़ा बताया गया हो, और दरिद्रता का दशानन कहा गया हो, उससे आत्म सतोष की भावना नहीं उत्पन्न हो सकती। तुलसी लोकधर्म के समर्थन हैं, उससे विरक्त नहीं हैं। उनसे मतभेद तभी होगा जब उनकी भक्ति लोकधर्म से विमुख हो जायगी।

तुलसीदास ने राम को इष्टदेव के रूप में माना है। परन्तु इससे अन्य देवताओं की उपासना का विरोध नहीं किया। जैसे तो देवताओं में सभी मानवीय दुर्गुण हैं, फिर भी उपास्य देवता इनसे परे हैं। शैवों और वाणवों में सुहृद्भाव उत्पन्न करने का उन्होंने जो प्रयास किया, वह सुनिश्चित है। परन्तु उपासना में जो व्यापक सुधार उन्होंने किया, उसका महत्व भरत का शपथों का स्मरण करके ही हम समझ सकते हैं।

‘जे पगिहरि हरिहर बचन, भजहिं भूतगन घोर ।

ति हका गति माहिं देउ विधि, जौ जननी मत मार ॥’

आज भी ये अधविश्वास निर्मूल नहीं हुए, मध्यकालीन भारत में तो उनका घटाटाप अधिकार छाया हुआ था। जहाँ मास का सन्देश पहुँचा, वहाँ कुछ अधिकार तो अवश्य छूट गया।

अन्त में उनकी भाषा सम्बन्धी नीति महत्वपूर्ण ही नहीं, उनकी प्रगतिशीलता का मुख्य प्रमाण है। संस्कृत-साहित्य से सुपारचित होते हुए भी उन्होंने सब उपदेश की चिन्ता न करते हुए भाषा में कविता की। रामचरितमानस के लिए अधी का अपनाया, उसकी भाषा का ग्रामीण प्रयोगों का दृष्ट आधार दिया। संस्कृत शब्दानली

उनकी आधारशिला नहीं है, उसका काम करोखे और महाराज बनाना है। आधारशिला अवधी के अति-साधारण 'भदेस' शब्द है जिन्हें तुलसीदास ने बड़े स्नेह से सजाकर अपनी कविता में रखा है। यह तभी सभर हुआ, जब उन शब्दों का प्रयोग करनेवालों के लिए उनका हृदय में स्थान था। उन्होंने अपना काव्य इन्हीं लोगों के लिए लिखा, उहा की बोली में लिखा। किसी कवि ने ऐसे उद्धत और उद्दड भाव से धूल भरे शब्दों को उठाकर अनुपम चतुराई से ससृष्ट शब्दावली के साथ नहीं पिठा दिया। वैसे ही उनका छन्दों का प्रयोग रीति कालीन परम्परा से भिन्न है। उसमें व्यथ के चमत्कारों का प्रायः अभाव है, उसमें सुचारु प्रवाह और ध्वनि-सौन्दर्य है। आलंकारिकता उनका लक्ष्य नहीं। उन पाद, प्रभाव उत्पन्न करने के लिए ही उन्होंने अलंकारों का प्रयोग किया है। रीतिकाल का साहित्यिक परम्परा का देखते हुए उनका भाषा, छन्द और अलंकार सम्बन्धी नाति सचमुच क्रान्तिकारी ठहरती है।

इस प्रकार तुलसीदास भारतवर्ष के अमर कवि ही नहीं, मध्यकालीन भारत के प्रतिनिधि कवि भी हैं और हम आज भी उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं।

## भूपण का वीर-रस

आज से दो-तीन सौ वर्ष पहले हिंदी साहित्यिकों की वीर-रस के प्रति जो भावना थी, उसमें अब तब बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका है। उस समय मोटे तौर पर दो प्रकार के वीर काव्य हाते थे, एक तो खुमान रामो, गीसलदेव रामो आल्हा प्रभृति के, जिनमें वर्णित युद्धों का मूल-कारण प्रणय होता था, दूसरे सुदन, लाल, आधर आदि के ग्रथों की भाँति, जिनका संबंध केवल युद्ध तथा वार-रस से रहता था। दोनों ही प्रकार के ग्रथों की वृत्ति प्रशसात्मिका होती थी। कवि का लक्ष्य होता था, अपने नायक की वीरता का वर्णन करके उसे प्रसन्न करना। स्वभावतः कवि रात को बहुत गप्पार, तिल का ताड़ गप्पार, कहता था, साथ ही यह भी ध्यान रखता था कि कहने के ढंग में चमत्कार हो, कविता सुनते ही स्वामी का हृदय गुदगुदा उठे। आधुनिक धारणाएँ इससे विपरीत हैं। हम वार-कविता में अतिशयोक्ति-पूरा किसी राजा महागजा के शौर्य का वर्णन नहीं चाहते, जिसे सुनने से उसकी सच्चाई पर विश्वास भी न हो, धन पाने के लिए किये गये उमरु यश और दाग के वर्णनों की भाँति हम आवश्यकता नहीं। हम वार काव्य के मूल में ऐसी सद्भावना चाहते हैं, जिसने किसी मुदरी के लिए नहीं, धन प्राप्ति तथा राज्य विस्तार के लिए भी नहीं, वरन् मृत्यु के लिए, स्वदेश तथा स्वजाति की रक्षा के लिए, अपने तथा पूर्वजों के स्वाभिमान के लिए मनुष्य को प्रेरित किया हो। हम ऐसी वीर कविता चाहते हैं, जिसे पढ़कर अत्याचार और अत्याय से दबे हुए मनुष्य को, अपनी पतित से पतित अवस्था में भी अपनी मनुष्यता का शान हो

मके तथा वह उसे पुन प्राप्त करने के लिए सचेष्ट हो। पुरानी कविता का इस कसौटी पर पूरी तरह सरा उतरना असंभव है। उस समय के कवि देश व काल के जिन्हीं विशेष नियमों से बँधे भी थे। वह प्रजातन्त्रवाद का जमाना न था देश पर शासन करनेवाले छोटे-बड़े राजे और सरदार थे। कवि उन्हीं के आश्रय में रहकर काव्य के साथ-साथ उदर पूर्ति कर सकते थे। स्वामी की रुचि का कवि के ऊपर प्रभाव पड़ना निश्चित था। वह यदि आलम्भारिक चमत्कारों तथा अतिशयाक्तियाँ से पूर्ण वर्णन पसन्द करता, तो कवि भी वैसी कविता करने में अपना सौभाग्य समझता। एक बार एक प्रथा के चल निकलने पर किसी मत्कवि द्वारा एकाएक उसका यहि प्रकार भी संभव न था। आज जब हम उस काल के किसी कवि की कविता की परीक्षा करें, तो तत्कालीन रचनाओं का ध्यान रखते हुए हमें अपने आलोचना के नियमों को लागू करना होगा।

भूयण ने अपने आश्रय-दाताओं के सन्ध में जा कविता लिखी है, वह उनकी चातायना वीरता तथा आत्मरसाग में प्रेरित होकर नहीं लिखी, उसके मूल में एक महती प्रेरणा धन की-नी है। स्थल-स्थल पर उनकी कविता में स्पष्ट हो जाता है कि वह अपने नायक की वीरता से उतने ही प्रसन्न हैं, जितने उनके दाता से। दान की प्रशंसा करने में उन्होंने धरती आकाश के कुलाब मिला दिये हैं—

“भूयण भनत महाराज-सिंहराज दत,  
कचन को देख जा सुमेरु सा लसात है।

“भूयण भिन्धुन भूप भये भलि,  
भीरु ले केवल भौंछिला ही की।”

यहाँ-यहीं पर यह मांगने की प्रवृत्ति अत्यंत हीन रूप में प्रकट हुई है, यथा—

“तुम सिवराज ब्रजराज श्रवतार आज,  
 तुमही जगत का पारत भरत हो।  
 तुम्हें, छोड़ि याते काहि प्रिाती मुनाऊँ मैं  
 तुम्हारे गुन गाऊँ तुम टाले क्यो परत हो ?”

यहाँ पर वीरता की नहा, धन का उपासना की गई है। एमे भाव भूषण का उनके उच्च स्थान से बहुत कुछ नाचे रींच लाते हैं।

भूषण ने अपने किसी भी नायक पर उसकी जीवन घटनाओं के तारतम्य का ध्यान म रखते हुए कविता नहीं लिखी। समय समय पर मुनाने के लिए उहाने जा छद प्रनाये, उनमें एक या अधिक ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन किया है।

किसी वीर पुरुष पर काइ महाकाव्य लिखकर ही महाकवि हा सके ऐसी बात नहीं, एक या अनक घटनाओं को लकर सुन्दर मुक्तक लिखे जा सकते हैं। परतु भूषण घटनाओं की ओर सक्त-मात्र करके आगे न जाते हैं, अधिकांशत किसी घटना का वह सांगोपाग वर्णन नहा करते। सिन्हा निश्चित घटनाओं का बार-बार दाहराना खटफता है। उदाहरण के लिए शिवाजी का औरगजेव क द्वार में जाना, निम्न-श्रेणी के सदारी म उनका सड़ा किया जाना तथा क्रुद्ध हाने पर औरगजेव का गुसलखाने में पनाह लेना—

✓ “भूपन तयहुँ ठठफत ही गुसलखाने,  
 सिंह लीं कपटगुनि साहि महाराज की।”

“रम्मर की न कटारी दड़े इसलाम ने गोसलखाना प्रचाया।”

“ह्यति गयो चकते मुल देन का गोसलखाने गयो दुख दीना।”

इसी भाँति अन्य स्थलों में भी इसी घटना के वर्णन हैं। शाइस्ता खान, अफजल खान आदि के वध, सरत, बीजापुर आदि के युद्ध भी अनेक बार वर्णित हैं।

भूषण के ऋतु-से वर्णन ऐसे हैं, जिनमें कोई नया तथ्य नहीं, केवल पुरानी रूढ़ियों की लकीर पीटी गई है, जैसे रायगढ़ का अधिकांश वर्णन—

“भूषण सुगम फल फल युत,  
छट्टे ऋतु वसत रसत जहँ ।”

चारहों मास वसत का हाना उस काल के किसी भी महाकवि के लिए असंभव नहीं। इसी प्रकार सेना के चलने पर धूलि से श्राममान का टक जाना, पर्वतों का हिल उठना, दिग्गजों आदि का झोलना युद्ध में कालिका और भूत प्रेता का प्रमत्त होकर नृत्य करना, नाम की धाक से, नगाड़ों का शब्द सुनकर ही शत्रुओं का भाग खड़ा होना, किसी के यश में तीनों लोकों का डूब जाना तथा उसमें कैलाश पर्वत, नीरसागर आदि का न मिलना, किसी के दान में जुबेर व अन्य देवों का मान भग—रस प्रकार के वर्णन पुरानी रूढ़ियों के अनुसरण मात्र हैं। शिवाजी की सेना चलने पर—

✓ “दल व दरारेन तें कमठ ररारे फूटे,  
केरा के से पात विहराने पन सेस के ।”

एक दूसरी सेना चलने पर—

✓ “काँच से कचरि जात सेस के असेस पन,  
कमठ की पीठि पै पिठी सी बाँटियतु है ।”

दोनों में कोई विशेष अंतर नहीं है।

भूषण के कुछ बंध अलंकार, कुछ रंध वर्णन और विचार हैं, जिन्हें उन्होंने अनेक बार दोहराया है। शत्रुओं की स्त्रियों का घर छोड़कर भागना, अपने स्वामियों को संधि की सील देना तथा अनभ्यस्त होने के कारण अनेक प्रकार के कष्ट सहना। इस पुनरावृत्ति का एक उदाहरण है—

- ✓ “तेरे पास नैरी-बधू पीतल न पाणी कोऊ,  
पीतल अनाय धाय उठे अकुलाई है ।  
कोऊ रही गाल काऊ कामिनी रसाल,  
सो ता भइ बेदवाल भागी फिर बनराइ है ।”
- “भूपन भनत सिंह माहि के सपुन सिवा,  
तेरी धाक सुने अरिगारी तिललाती है ।”
- “इना हू न लागती ते हवाते पिहाल भइ,  
लारन की भोर म सँभारती न छाती है ।”
- “मुनत नगारन अगार तजि अरिन मी,  
दारगन भागत न वार परसत है ।”

ऐसे वर्णनों की अत्यधिक सराया तथा उनकी भावव्यञ्जना के ढंग का देखकर ऐसा मान होन लगता है, मानो भूपण को उनमें कोई विशेष आनन्द आता हो तथा शत्रु नारियाँ की ऐसी दशा होने से वह अपने नायक में विशेष वारता पाते हों ।

भूपण व वर्णन प्रथिनाशत इतने अतिशयाक्तिपूर्ण होते हैं कि कि दो स्थलों पर किये गये यथार्थ वर्णन भी अत्यन्त से लगते हैं । शत्रुआ की नारियाँ जय रोती हैं तो—

“रज्जल कलित अँमुमान क उमग मग,  
दूना होत रोव रग जमुना के जल में ।”

यह पढ़कर निम्न पंक्तियाँ भी तिल का ताड़ भासित होने लगती हैं—

“आगरे अगारन छै पाँदती कगारन छूवे,  
वाधती न वारन मुसन कुम्हलानियाँ ।  
कीवी वहे कहा श्री गरीबी गद्दे भागी जायँ,  
नीरी गद्दे छयनी सु नीरी गद्दे रानियाँ ।”

यह सब होने पर भी सच्ची वीर पूजा की भावना भूषण के अनेक छंदों से फूटी पढ़ती है। भूषण के दोष उनके देश और काल के हैं, उनके गुण सा इन बोझीले अलंकारों तथा वे सिर-पैर के-से वर्णनों के नीचे एरुपत्रिप्र वीर कविता का स्रोत प्रवाहित है। उस सहृदय कवि को, जो अपने भाद्यों पर निरंतर अत्याचार तथा उनकी अवधि-हीन दासता का देस व्याकुल हो उठा है, एरु तिनका भी पर्वत के समान लगता है। चाहे वह महाराजा शिवाजी हों, चाहे छत्रसाल या अन्य कोई छोटा सरदार, भूषण के लिए वही राम और कृष्ण हैं। कवि उनके लिए अपने काव्य भांडार का खाल देगा, दलितों के लिए जिन्होंने तलवार पकड़ी है, उनको महान् प्रसिद्ध करने के लिए वह अपनी ओर से कुछ उठा न रखेगा—

✓ “दुहूँ कर साँ सहस्रर मानियतु तोहिं,  
दुहूँ राहुसोँ सहमराहु जानियतु है।”

शत्रु का एक सफल सामना करनेवाला देखकर भूषण उसकी पीठ टाँकते हुए औरगजेव को कितने सुदूर ढग से ललकारते हैं—

✓ “दारा की न दौर यह रादि नहीं एतुवे की,  
गँधिया नहा है किर्घी मार सहसाल की।  
बूझि है दिह्ला सो सँभारे क्या न दिल्लीपति,  
धषा आनि लाग्या सिरराज महाफाल-का।”

भूषण के रचितों में इतना आत्तपूर्ण प्रवाह है कि पढ़ने या सुननेवाला उसके उस धारा में बहता चला जाता है। यह धारा जैसे उनकी अतिशयास्तियों का रक्षाये लिये चली जाती हो।

वीर-रस के अतिरिक्त व्यंग्य-साहित्य में जा हिन्दी में अभी तक छुद्र सीमाओं के ही भीतर है, भूषण का स्थान बहुत ऊँचा है। यह मानी बात है कि तिन पर उन्होंने व्यंग्य रिये हैं, उन्हें वे अच्छे



न लगेगे, पर वे केवल गालियाँ हँ, ऐसी बात नहीं, उनमें साहित्यिक चमत्कार है।

दक्षिण के सूवेदार बदलने पर भूषण की उक्ति है—

“चंचल सरम षरु काहू पै न रहै दारी,  
गनिना समान सूवेदारी दिला दल का।”

इसी प्रकार—

“नाव भरि वेगम उतारै बाँदी डोगा भरि,  
मफा मिस साह उतगत दरियाव हँ।”

तथा—

“चीकि चीकि चन्ता कहत चहुँधा ते यारा,  
लेत रहौ खनरि कहाँ लीं सिवराज है।”

इसी काटि के और भी उदाहरण दिये जा सकने हैं।

भूषण यदि चेष्टा करते तो मुदर यथाथ वर्णन करते। नहीं कहा इस प्रकार के वर्णन किये हैं, वहाँ थे खूब ही वन पडे हैं।

मराठों के आक्रमण का कितना वास्तविक चित्रण है—

“ताव दै दै मूछन कँगूरन पै पाँव दै दै,  
अरिमुख घाव दै दै कूदे परै काट में।

इसी भाँति रणभूमि का दृश्य—

“रणभूमि लेटे अधलेटे अरसेटे परे,  
रुधिर लपेटे पठनेटे परकन हँ।”

भूषण की इस प्रकार की स्वाभाविक चित्रणवाली कविता, उनके व्यंग्य-छन्द तथा उनका वीर-रस, वह कितनी ही परिमित मात्रा में क्यों न हों, अमर हैं।

## कवि निराला

जिन लोगों का साहित्य में कुछ भा मरघ नहा, जेवल दूर से, या व्यक्तिगत रूप से निराला का जानते हैं, उनका भा रहते सुना है, निराला की बात ही निराला है। जा थोड़ा बहुत उसके साहित्य को जानते हैं, हृदय में महानुभूति रखते हैं, सरासर ही उसकी कृतियाँ का ऊपट्यांग नहीं कहना चाहते, वे भी कहते हैं, निराला निराला ही है। निराला कवि का उपनाम है प तु इतना उसके जीवन और उसकी कृतियों पर लागू होता है कि बहुत सावने समझने के बाद एक शब्द में ही उसका साहित्य का परिचय देना ही तो हम निराला से अधिक व्यापक दूसरा शब्द नहा चुन सकते। निराला वह जा युग की साधारणता के विपरीत विचित्र लगे, और सार्वभौम सार्वकालिक निराला वह जा किसी भी देश, किसी भा काल के नितांत अनुकूल न हो सके। प्रथमाया काल में निराला का कल्पना कठिन है, आधुनिक युग में वह कितना विपरीत रहा है, यह उसका तान विराध देखकर कुछ समझा जा सकता है। और आने वाले युग में राजनीति का लिए हुए साहित्य का अन्तरंग धार सपर्य में, निराला का नाइ साहित्य सिंहासन पर बिठाएगा, यह भी कल्पना में नहीं आता। फिर भा उसके लिए हर युग में गुनाहारा है, हर युग उसमें कुछ समाता पा सकता है क्योंकि निराला एक विराधाभाम, पंगडाक्स है, उसमें विराधी धाराएँ दूर-दूर से आकर टकराई हैं, वह नया भा है पुराना भी, भूतकाल का है, और भविष्य का भी, उमा फ शब्दों में 'है है, नहा नहा'। उसका साहित्य में इतने मनादा और विनादा स्वर लगते हैं कि उनका प्रभाव हमारे ऊपर विचित्र पन्ता है वे एक में बंध हुए

न लगेंगे, पर वे केवल गालियाँ हों, ऐसी बात नहीं, उनमें साहित्यिक चमत्कार है।

दक्षिण के सूवेदार बदलने पर भूपण की उक्ति है—

“चञ्चल सरस एन काहू पे न रहै दारी,  
गनिका समान सूवेदारी दिली दल की।”

इसी प्रकार—

“नाव भरि बेगम उतारै बाँदा डांगा भरि,  
मझा मिस साह उतरत दरियाव हँ।”

तथा—

“चौंकि चौंकि चकता कहत चहुँधा ते यार,  
लेत रही रनरि कहाँ लीं सिवराज है।”

इसी काटि केँ और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं।

भूपण यदि चेष्टा करते तो सुंदर यथार्थ वर्णन करते। जहाँ कहा इस प्रकार के वर्णन किये हैं, वहाँ वे सूब हो बन पड़ हैं।

मराठों के आक्रमण का कितना वास्तविक चित्रण है—

“ताव दै दै मूछन कँगूरन पे पाँच दै दै,  
अरिमुत्त घाव दै दै कूदे परे काट मै।

इसी भाँति रणभूमि का दृश्य—

“रनभूमि लटे अधलेटे अरसेटे परे,  
रधिर लपेटे पठनेटे फरकत हँ।”

भूपण की इस प्रकार की स्वाभाविक चित्रणवाली कविता, उनके व्यंग्य-छन्द तथा उनका धीर-रस, वह कितनी ही परिमित मात्रा में क्यों न हा, अमर हैं।

## कवि निराला

निन लागो का साहित्य में कुछ भा सपथ नहा, फेवल दूर से,  
 या व्यक्तिगत रूप से निराला को जानते हैं, उनका भी कहते सुना  
 है, निराला की बात ही निराली है। जा याड़ा बहुत उसने साहित्य  
 को जानते हैं, हृदय में सहानुभूति रखते हैं, सरासर ही उसका कृतियाँ  
 को ऊपट्याग नहीं कहना चाहते, वे भा कहते हैं, निराला निराला हा  
 है। निराला कवि का उपनाम है पतु इतना उसके जीवन और  
 उसकी कृतियों पर लागू होना है कि बहुत साचने समझने के बाद  
 एक शब्द में ही उसके साहित्य का परिचय देना हो तो हम निराला  
 से अधिक यापन दूसरा शब्द नहा चुन सकते। निराला वह जा युग  
 की साधारणता के विपरीत विचित्र लगे, और सार्वभौम सामकालिक  
 निराला वह जा किसी भा देश, किसी भा काल के नितांत अनुबल न  
 हो सक। प्रथमाया काल में निराला की कल्पना कठिन है, आधुनिक  
 युग के वह कितना विपरीत रहा है, वह उसका तीव्र विगध दग्गर  
 कुछ समझा जा सकता है। और आने वाले युग में, गतनीति को  
 लिए हुए साहित्य के अन्तरंग घोर सङ्घर्ष में, निराला का कोई साहित्य  
 सिद्धान्त पर विटाएगा, यह भी कल्पना में नहा आता। फिर भा  
 उसने लिए हर युग में गुनाइश है, हर युग उसमें कुछ समानता पा  
 सकता है क्या निराला एक विराधाभास, पैगडाकम है उसमें  
 विराधी धाराएँ दूर-दूर में आकर टकराई हैं, वह नया भा है पुराना  
 भा, भूतकाल का है, आगे भविष्य का भी, उमा न शब्दों में 'है है,  
 नहा नहा'। उमन साहित्य में इतन सदादा श्री विनायी स्वर लगते  
 हैं कि उन प्रमाण हमारे ऊपर विचित्र पटना है न एर न बने हुए

है, उसकी साहित्यिकता के बल पर, कोमल और कर्कश सभी स्वर एक ऐसे सगीत में ढँपे हैं जो राग विशेष कहकर निर्धारित नहीं किया जा सकता।

श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने किसी लेख में लिखा था, निराला सभी क्षेत्रों में चैलेंज देता है। उसकी प्राथमिक कविताओं में चैलेंज स्पष्ट है और अत्यन्त स्थूल रूप से छंदों में। वर्णिक और मानिक, गेय और पाठ्यवृत्तों में उसने अनेक कविताएँ लिखीं परन्तु हिन्दी पाठकों ने यह चैलेंज स्वीकार न किया, प्रत्युत यही कहा, उसे छंद लिखना न आता था। निराला का दावा था, मुक्त कविता के लिये मुक्त छंद की आवश्यकता है तब कुछ इस रूप में दिया गया जैसे छंद की मुक्ति से ही कविता मुक्त हो जायगी। 'शियाजी ना पत्र' मुक्त ही नहीं उच्छृङ्खल भा है, गति के साथ विचारों का भा बधान उसमें नहीं है। केवल अपने धारावाहिक वक्तृत्व के आन पर ही उड़ता चला जाता है, और कुछ लोगों का, जिन्हें 'परिमल' में अथवा कुछ भी रस नहीं मिलता, अवश्य प्रभावित करता है। 'नागो फिर एक बार' के दूसरे भाग में यह आन सुसंगठित हो गया है, प्रवाह जारी है। उसी कविता के पहले संखंड में माधुर्य के साथ छंद की मद गति सहज ढँप गई है। और 'जुनी की कली' और 'शेपाली में वही छंद इतने प्रशान्त भाववेश का परिचायक जान पड़ता है कि छंद के नियम भंग का भवाल ही नहीं उठता। मुक्त होते हुए भी छंद गति के इतने सुरामल प्राय अस्पृश्य तत्वों से बंधा हुआ है कि उसे मुक्त कहना अर्थात् जान पड़ता है। मुक्त छंद के भी अपने नियम होते हैं, साधारण छंदों के नियमों से कठिनतर क्योंकि उनकी व्याख्या सहज नहीं,—यह इन कविताओं से सिद्ध है। और ये कविताएँ वर्णिक हैं। मानिक मुक्त छंद में लिखी हुई कविताएँ गाई जा सकती हैं, विदेशी सगीत का आभास

देते हुए कवि उन्हें गाता भी है। इसके बाद वे कविताएँ हैं जो छंद के साधारण नियमों के अनुसार लिखी गई हैं, 'दिल चुना जा जा आये य, चले गए' इत्यादि परिमल ने वे सुक्त कवि की सरल भाव-व्यंजना कवि का बाद को कृतियों में उद्धृत कम या पाइ। उच्छ्वलता, मुक्ति म यधन, और यधन में मुक्ति,—'परिमल क छदा ना यहा उद्रजाल है। यह छंद-वैचित्र्य कवि के निराला-तत्व का परिचायक है।

यहा हाल भावना में है। आलोक और अधकार दाना तन कवि की कल्पना पैगें भरती है। अचल का चंचल सुद्र 'प्रपात' अधकार से निकलता और प्रकाश को आर जाता रवींद्रनाथ के 'निकर स्वप्नभंग' को बाद दिलाता है। इसका गति अधिक नम्र है, जहाँ रवींद्रनाथ के पवतचय टह जाते हैं, यहाँ निराला का प्रपात कनल पत्थर से टकराता है, मुस्कराता है और अज्ञान की आर दशारा नर आगे न जाता है। और दूगरी आर बादल है, चिमन लिए, 'अधकार—धन अधकार हा बाड़ा का आकार ह। इमी शून्य में बादल का सारी क्रियाएँ समाप्त हा जाती हैं न कही आना है न जाना है। इन दो चरम स्वरां के बीच 'परिमल' का सगत निहित है। प्रायता के कण रादन न लकर मित्राह का उदात्त चात्कार तन समी कुछ यहाँ मुनने का मिलता है। और अपने पीठ से कवि ने इन स्वरां के कमानात पर विनय पाइ है। अपने बादल का ही तरह,

मुक्त ! तुम्हारे मुक्तकठ म  
स्वरागद, अवरो, विधान,  
मधुर मद्र, उठ पुन पुन धनि  
छा लता है गगन, श्याम कानन,  
मुरभित उद्यान !

‘गीतिका’ के अनेक गीतों में इस अवधारणा का निदर्शन हुआ है। ‘कौन तम के पार’ गीतिका का शायद सबसे जटिल गीत है, जटिलता का एक कारण हो सकता है, कवि भाड़े में बहुत ज्यादा कहना चाहता है, यह भी हो सकता है कि उसके मानसिक दृष्टि में यह भाव स्वयं कवि के लिए बहुत स्पष्ट न हो पाया हो। किन्तु इस गीत के भीतर एक ऐसा शक्ति का परिचय मिलता है जो अस्पष्ट होने पर भी अपना तरफ पाठक का परस खींचती है। डिरेक्टिम, जुद्ध या वर्गघन की भाँति सभा तब यहाँ चल रूप में देखे गए हैं। विश्व एक स्रोत कहा गया है निम्नका प्रवाह वह आकाश ही है। इसी प्रवाह में चर अचर, जल और जग, दोनों आ जाते हैं। समस्या यही है, जिसे चर कहा जाय, जिसे अचर। और इसी प्रवाह में प्रवाहित मनुष्य है, एक सरोवर के समान, जहाँ लहरें बाल हैं, कमल मुख है, निरण स वह खुलता है, आनन्द का भौंरा उस पर गूँघता है, किन्तु सध्या हाते इस कमल का खिलाने वाला सूर्य निशा के हृदय पर निशाम करता है, तब सार उभका उर्य था, या उसका अस्त? प्रकाश सार है या अधकार? तमोगुण से सत्य का विरोध है किन्तु विना तम के सतागुण की कल्पना भी असंभव है। इसलिए कवि पृच्छता है ‘कौन तम के पार? शून्य में ही निश्चय का आदि है और अवसान! ‘डूबा रनि अस्ताचल’ गीत में वह अधकार का देवी का आह्वान करता है। चारों ओर स्तब्ध अधकार छाया हुआ है, उसी में ‘तारक शत लाख हार’ और विश्व का ‘कारुणिक मंगल’ भी डूब गए हैं। तभी तमसावृता मृत्यु की देवी का यह जानन-फल दर्शन करने के लिए बुलाता है।

‘वही नाच-न्याति-यसन  
पहन, नील नयन हसन,

आशा छवि, मृत्यु दशन  
करा दश जीवन-वन ।'

ऐसे गीता में एक प्रकार की जायन से विरक्ति है, एक ऐसी निराशा है जो जितना ही शब्दों के नीचे मुँदा हुआ है, उतनी ही गंभीर है। हम निराशा में रोमांटिक निराशा का, सांसारिक सुख में अनिच्छा आदि की, भूलन नहीं है। निराला की निराशा दार्शनिक और युक्ति-पूर्ण है, इसे तब से आशावाद में परिणत नहीं किया जा सकता। केवल कवि की आत्मा के मोने हुए शक्ति केन्द्रों में जब स्फुरण होता है, तब वह इस अधकार को छिन्न भिन्न करने के लिए आवृत्त हो जाता है। तब और आलोक, अस्ति ग्रीक नामित में तुमुल मधुम मच जाता है और वह अपने क्लेश की एक भूलक हम किसी गीत में दे देता है।

‘प्रातः तत्र द्वार पर,  
आषा जननि, नैश अथ पथ पार कर ।’

रात्रि भर वह अधकारमय पथ में चला है प्रातः काल इष्ट का देहरी पर पहुँचा है, उसकी भाषा में थकान है परंतु विजयोत्साह भी।

‘लगे जो उपल पद, हुए उत्पल जात,  
कटन चुमे नागरण रो अथदात,  
स्मृति में रहा पार करता हुआ रात,  
अवसन भी हूँ प्रसर में प्रातः—

प्रातः तत्र द्वार पर ।’

पैरों में पथक लग, वे कर्मन में जान पड़े, उपल का साधना के उल से जीने तिलकर उत्पल बन गए हैं। फोटे चुमे, वे नींद को दूर करते रहें। इस प्रकार वह स्मृति में संस्कारों के कटाक्षित मार्ग को,



पार करता रहा है। इस समय जन्म, उमका शरीर अस्तर हा गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। यहाँ हम एक सघर्ष का चित्र देखते हैं, और इसमें कवि अपनी पूरी शक्ति से एक निराधी तत्व को परास्त करने में लगा है। हम यहाँ इस अद्भुत क्रियाशीलता की कलक भर पाते हैं, किंतु यही द्वंद निराला की इस 'युग की दो महत्तम कृतियों का कारण है, 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' का।

'तुलसीदास' कविता पहले लिखी गई था, उसमें कवि ने अपना पूरा द्वंद तुलसीदास पर आरोपित करके उसका विशद चित्रण किया है। भक्त कवि तुलसीदास के लिए यह सघर्ष, विजय पराजय, तत्वा की क्रियाशीलता सत्य हो या न हो निराला के लिए अवश्य है। तुलसीदास में निराला ने अपनी प्रतिच्छाया देखी है, पुरातन कवि की मनाभूमि का उमने अपने सघर्ष का रगमच रनाया है। तुलसीदास भारत की सभ्यता के सूत्रधार हैं और जा कुछ है वह विरोधी तमागुणपूर्ण है। तुलसीदास इसी विरोधी तत्व से युद्ध करते अतः म 'अस्ति' का लिए विजयो हाते हैं। अनेक मानसिक भूमियों पर ये विचरते हैं, विचित्र समस्याओं से उलझते और उन्हें मुलझाते हैं और अतः म अपनी पूरी शक्ति के साथ वह रघनों का ताड़ देते हैं। उनकी मुक्ति ही, भारत की, विश्व की मुक्ति है।

तुलसीदास के बाद तुलसी के चरित नायक राम में वह इसी द्वंद को आरोपित करता है। राम रावण का सामा छिड़ा हुआ है, रुद्र दिन जीत गए हैं परंतु विजय निश्चित नहीं हुई। एक दिन की घटना का वर्णन है, राम युद्ध से थके हुए अपनी सेना के साथ अपने सेमे की यात्रा चलते हैं। सशय से वह विकल हा गए हैं और रावण विजय अब पूव की भाँति एक निधारित वस्तु नहीं जान पड़ती। गरजता गागर, अमावस की काली रात और पर्वत के सानु का प्राकृतिक सेटिंग में राम को चिंतामन हम देखते हैं।

यहाँ पुरुष और प्रकृति मभा अपने तत्वा के अनुकूल एक भयानक युद्ध म लग हुए है। रावण तमोगुण का प्रतीक है, आकाश तत्व मे उसकी मैत्री है। आकाश में शिव का वास होने से शिव उसके इष्टदेव हैं। शिव का मगिना शक्ति भा स्वभावतः रावण के साथ है। इसा रावण राम का पराजय हाता है। 'लाछन को ले जीते आकाश नभ म अशक',—यह देना रावण को गाद में लिए राम के भा ज्योति पुत्र अर्न्धा का अपने ऊपर ले लेता है। जायमान के होने से राम शक्ति का नवीन कल्पना करके उसका पूजा म तल्लीन होते हैं और अतः म याग द्वारा शक्ति उनसे वश म होती है। निराला का पुरुषता, उसका आन यहो विगवा तत्वा क पारस्परिक सघर्ष म सूत्र स्पष्ट दर्शने का मिलता है। निराला म आकाश शक्ति का आसक्त है, उसने यहाँ अपनी पूर्ण व्यक्तता पाई है। आकाश का अन्धास, रावण का अन्धकार, समुद्र का आदालन, श्रमानिशा का प्रथम उगलना और इन सब पर राम को अचना महावार का नयी हाकर, आकाशवासी शकर का भा अन्त करना आदि वखन हँदा ही नहीं, कविता क लिए नवीन हैं। शकसपियर म 'किंग नियर' के तीसरे अंक म कृष्णा का प्रचंड कार और नियर की विफलता, 'पिराटाइज लॉन्ट' म मैटन का पहली बार नरक के अघकार-आलाक का देगना, दति के इनफनों क पीडित जन समुदाय, वहाँ क तूफान, वहाँ का कदन,—मभा अपना विशेषताएँ लिए हुए हैं, परंतु 'राम की शक्ति पूजा' का प्राकृतिक सेटिंग इन सब मे भिन्न है, वेदनापूर्ण नहीं परंतु सवाधिक आनपूर्ण। इन आन का रहस्य अनगला का प्रतीक-व्यक्तता है। रावण, अधकार, आकाश, सभी एक साथ त्रियाशाल हैं, रहस्यवादिया ने एक ही आलोचकमय जावन में राव को हुआ हुआ देग्या था, परंतु तमोगुण को इस प्रकार प्रकृति म मानने में पैला हुआ युद्धात्मक, शक्तिपूर्ण और त्रियाशाल

उदाने नहीं देता। 'राम की शक्ति पूजा' हिन्दी की श्रेष्ठ 'हीराइक पाएम' है।

'तुलसीदास' में सतागुणी तत्त्व का वर्णन अधिक आनपूण हुआ है, 'राम की शक्ति पूजा' में अधकार का। विपद दानों का प्राय एक हाते हुए भी चित्रण में भिन्नता है। 'शक्तिपूजा' में अधकार और अन्य तामसी तत्त्वों की क्रिया से अधिक आकर्षण हम कुछ नहीं दिखाइ देता। राम के विनयी होने पर भी रावण और उसकी शक्ति अविनाशनीय हैं। और यही कवि का निरालापन है, कभी आलाप कभी अधकार, यह दानों का चित्रित करता है, कभी किसी का घटाने कभी उत्पन्न कर।

निराला एक नए युग की भावना लेकर आया है, ब्रजभाषा के स्कूल से बहुत सा मार्ग में वह भिन्न है। 'गानिका की भूमिका में उसने पुराने गीता से असतोष प्रकट किया है। फिर भी आलस्य कता में वह अपना 'वन वला' या 'सम्राट् अष्टम एडवड के प्रति' कविताओं द्वारा ब्रजभाषा का अलंकारप्रियता का मात देता है। शब्दों के आवर्त रखने का उसमें साह, अविनाश वे मुदर हाते हैं, कभी कभी भाँटे भी। रामांतिक कविता के व गिर पर न भावावश में वह विश्वास नहीं करता, फिर भी 'राम की शक्तिपूजा,' 'जागा फिर एक बार' आदि में उसका कविता स्वतः प्रगहित जान पड़ती है। कवल मैदान में सर् सर् करता गगा का भाँति उदा करत पहाड़ा के चक्र टकराती, घना अँवरा घाटियाँ में पथरों का काटती, उहाती, वह तुमुन शब्द करता चलती है। शक्ति का एक अचल धारा सी, विरोधा का नाश करती, वह उहाइ हुई नदी नहीं लगती। यह सब भी उसी पैराडॉक्स का एक अंग है।

भाषा में वह सरल से सरल और कठिन से कठिन शब्दों का

नाग करता है। कभी मातुर्य की पुरानी मूल्यना से प्रभावित जान  
 टता है,

‘चला मनु गुजर धर  
 नूपुर शिखित चरण

—लिंगता है, कभी मात्र शब्दां व प्रयाग द्वाग वर एक  
 कश ग्राधुनिकता का आभास देता है। कभी उसका स्वर लवे  
 वचे हुए प्राफेट क स आते हैं—

‘बुझे तृष्णाशा, विषानल कर भाषा अमृत निम्कर।’ कभी वह  
 गट उठे स्वर भग कर पढ़ना मुश्किल कर देता है —

‘मैं लिंगता, मग रहते,  
 तुम सहते प्रिय महत ।’

उसने भातर पम्पता है, मृदुलता भी, पुम्पत्व भा, स्त्रीत्व भा,  
 उम्य भा, गभार उपामना भी, आन्तिक भी, नास्तिक भा

विदा आलाचन कभी हाथी की टांग देख कर उसी का हाथी कहने  
 लगते हैं, कभी उसकी पूँछ का ही काट रोई गारर पर हा पैर पटने से  
 रादि नादि करन लगते हैं। उसने सघर्षपूर्ण डैमेटिक व्यक्तित्व पर  
 योगी की कम नजर जाता है। विना इस आतरिन सघर्ष व कोई महता  
 सादितिक कृति क्या देगा ? जो एन का हाकर रहेगा, यह विश्व का  
 व्यापक चिन्तन क्या करेगा ? भानु कवि छोटी छोटी ‘लिरिक्स  
 निगम मकत है वे निराला का ‘हीराइन पाएम्स नहां लिंग मकते।  
 उसकी ‘लिरिक्स’ के घात प्रतिघाती को भी वे नहा पा सकत। पा  
 प्रादि ने मींदय म मनुष्य का आश्रय में डाल देने वाला कोई वस्तु  
 देगी है, इस ‘सप्राइज़’ को हम निरालापन कह सकते हैं। सभी कार  
 निराले होते हैं, क्योंकि अपनी मौलिक प्रतिभा से वे विश्व को कुछ  
 नया देते हैं। यदि निराला खान-पान, रहन सहन की राता से

लेकर अपनी सूक्ष्मतम स्पष्ट अस्पष्ट दिवार भावना धाराओं  
 निराला है। निरालापन उसके व्यक्तित्व के अणु अणु में व्याप्त है।  
 इसीलिए उसके काव्य-साहित्य का एक शब्द में निराला कह कर  
 परिचय दे सकते हैं। निराला कह कर मुँह मटमाने के लिए नह  
 वरन् उसकी श्रेष्ठ कवि-प्रतिमा का स्वीकार करने के लिए।

[ नवंबर '१९३८ ]

## निराला और मुक्तछंद

‘मुक्तछंद’ में एक निराधामास है। यदि वह मुक्त है, तो निर छंद क्यों ? नास्त्य में छंद का अर्थ ही उपन है—‘उपनमय छन्दा ना छोटी राह’। परन्तु जैत छन्द का सामाज्य में भी कवि गति-नय में म्नेच्छाचाग हाता है, वैम हा मुक्तछंद नी ‘मुक्ति’ भी निरपन्न नहा है, उरन् गाल-लय की सामाज्या न वैधा है। मुक्त छंद म लिखा हुइ कविता ‘कविता’ है या नहीं, यह अर निनाद का विषय नहा ग्द गया। परन्तु मुक्तछंद और साधारण छंदा में निम्का प्रयोग अरिभ नाडनान है और मुक्तछंद के सात्त ना सापेक्षता का सीमा म र्धनवाल रीन ने नियम है, यह विषय विवादान्पद है और उन पर अभी यथ चचा भी नहा हुइ।

छायावाद की युग के आरम्भ से मुक्तछंद का प्रचार हुआ है। उस समय ने लेकर लामग दस-पन्द्रह साल तर इस विषय पर जा विनाद चला, वह विवाद न हाकर नितडानाद उन गया। निराधी अधिक् ये और व इस विषय पर गभारता मे कुछ साचने आर कहने के लिए तैयार न थे। इसका नफल करना आसान था और हास्यरस के लिए उहुत से जाकरा का यह उहुत सस्ता जाना मिल गया था। एक ध्यान देन की बात है नि कवित्त-सर्वेसा आर समस्या पूति वाला मप्रदाय इसका मय स कट्टर निराधा था। वह छाया वादियों पर जहाँ यह दाष लगाता था नि वे अलफार-शास्त्र का नहा जानत, वहाँ पङ्कल-सम्बधी ‘अज्ञान’ भा उमे एर अन्धो अस्त्र मिल जाता था। उस समय मुक्त छंद ने कवित्त-सर्वेसा और समस्यापूति के मार्चों को ताइन म अप्रदल का काम किया, यह

उसका ऐतिहासिक महत्त्व है और इसके लिए हमें उसका कृतञ्च हाना चाहिए।

यह स्वाभाविक था कि उस समय उसकी सापेक्ष मुक्ति के नियमों की आरंभिकों का ध्यान न जाय। वरन् इसके आचार्य निरालाजी की अनेक उत्तिया से किसी हद तक एक भ्रान्त धारणा की भाँति हुई। निरालाजी ने रीतिशालीन साहित्य की विचारभूमि से जो स्वाधीनता प्राप्त की, उसे उन्होंने 'छन्द' मात्र के साथ जाड़ दिया। उनका कहना था कि मुक्त भावना का वाहक छन्द भी मुक्त होना चाहिए। जैसे सन् '२४ की इस कविता में—

ग्राज नहीं है मुझे और कुछ चाह,

अधविकच इस हृदयभलम ग्रा नू

प्रिये, छाड़कर न धनमय छंदा की छोटी राह !'

“छंदा की छोटी राह” में तिरस्कारशाला भाव स्पष्ट है। इसके दस बारह साल बाद 'माधुरी' में अपने गीतों की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा था—'भावा की मुक्ति छन्द की भी मुक्ति चाहती है। यहाँ भावा, भाव और छन्द तीनों स्वतंत्र हैं। और 'पगिमल' की भूमिका में भी—'मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से टुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना।' तब क्या 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' के भाव-बंधन में हैं अथवा स्वयं बंधनहीन होने पर भावों के छंद की सीमाओं के भीतर मुक्ति के लिए छल्पटा रहे हैं ?

'लिख गये हंगों में साता न राममय नया'

या

'भाता कहती थीं मुझे मदा रानीवनवन

इन पक्तियों के भाव किस प्रकार पगधीन हैं ? यदि स्वाधीन हैं तो वे छंद को तोड़ने की विकलता किस प्रकार निशापित कर रहे हैं ?

प्रवाह में स्वाधानता हो सकती है परन्तु उसका मापों की स्वार्थानता से काइ अगोचर सम्बन्ध नहीं है। निरालाजी ने 'पत और पल्लव' में श्री मैथिलीशरणना गुप्त के 'वरांगना काव्य' के अनुकूल छन्द का जिक्र करते हुए लिखा था—'गुप्तना के छन्द में नियम था। मैंने देखा, उन नियमों का कागण, उस अनुवाद में उदाहरण कम था—उनका बाँधना तोड़कर स्वच्छन्द गति में चलने का प्रयास कर रहा था—वे नियम मेरा आत्मा का असह्य हो रहे थे—कुछ अनुरोधों से उधारण से निहोना नाज हो रहा था।' पन्द्रह वर्षों का पत्र में प्रवाह अचानक रुक जाता है, परन्तु सालह वर्षों का पत्र में यह आन नहीं जाता। सदाय छन्द का छाड़ने का अर्थ यह नहीं है कि मुक्त छन्द का बिना प्रवाह का गन्ना हो नडा हो सनता।

निरालाना ने मुक्त छन्द में आचरण का विशेष मैत्रा कल्पित का है।

'उद हो जाएँगे ये सारे रामल उन्द,  
मिन्दुगम का हागा तन आलाप,'—

श्री 'पत और पल्लव' में—'उद शक्ति का आमुमुमागता नहा, रुदित्य का पुन्य-नार है।' मुक्त उद और पुरण्य का का मा प्राइतिक सम्बन्ध नहीं है, न निनामन छन्दों और आमुमुमागता ना। 'गम ना शक्ति-भूता' का म्मरण करते हैं (श्री 'तुना की नला' ना नी।) इस उक्ति का कल्पित प्राणन स्पष्ट हो जाता है।

उद कहा ना सकता है कि गति और प्रवाह न लिए निना निम्नार मुनछन्द में सम्भव है, उतना साधारण छन्दों में नहीं है। यह बात निदान्तरम में भल हो मान ली जाइ, परन्तु व्यनगर में इसका उलटा हो निनाइ नेता है। मुक्तछन्द की गति अत्रिक मामित, उषरा प्रवाह अत्रिक सकृचित होता है। निरालाजी के



मुक्तछन्द की सिन्धी भी पत्तियाँ का स्मरण काजिए और इन पत्तियाँ से उनका तुलना कीजिए—

‘बहती जाता साथ तुम्हारे स्मृतियाँ कितनी,  
दग्ध चिता क कितने हाहाकार !

नश्वरता का—धीं सजाव का—कृतया कितनी,  
अपलाश्रों का कितनी करुण पुकार !’

और भा—

‘गरज-गरज घन अधकार में गा अपने सगीत,  
उन्धु, वे बाधा बंध विहान ।

आँसों में नजवान की तू अञ्जन लगा पुनीत,  
गिरर कर जाने दे प्राचान ।

इन पत्तियाँ का प्रसार दशमीय है । परंतु प्रवाह का गम्भारता, नाद-सौन्दर्य, भाव का ‘मुक्ति’ और छन्द को ‘मुक्ति’ इन पत्तियाँ से अधिक मुक्तछन्द में नहीं प्रकट हुए,—

‘है अमानिशा उगलता गगन घन अधकार,  
छा रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवनचार,  
अप्रतिहत गरज रहा पाछु अर्मुधि विशाल,  
भूधर ज्या ध्यान मग्न, कजल जलता मशाल !’

इसका यह अर्थ नहीं है कि नियमित छन्दों में ही कोई ऐसा गुण है जिससे यह ध्वनि-सौन्दर्य उत्पन्न होता है । सारी बातें तो कवि कौशल की हैं ।

मुक्तछन्द का नियमों से परे मानते हुए भी निराला का उसके “प्राह” का स्वरकार ही नहीं करत, वरन् उसे मुक्तछन्द की सफलता के लिए प्राणशुक्र भी समझते हैं । मुक्तछन्द में लिखा हुआ कविताओं की रचना करते हुए ‘परिमल’ की भूमिका में उन्होंने लिखा था—  
‘उनमें नियम काई नहीं । कजल प्रवाह कविच्छन्द का-सा जान

पड़ता है। मुक्तछन्द का मर्मर्यक उसका प्रमाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है, और उसका नियम-गन्तिय उसकी मुक्ति।' उसा मूमिका में 'जुनी को कला' से पहली पाँच पक्तियाँ का उद्धरण देकर कहते हैं—'तमाम लडियों का गति रचितछन्द ही है और 'हिंदी में मुक्तनाय्य रचितछन्द का पुनियाद पर सफल हा सकता है।' यह एक काफी बडा रचन है, उसका पाउ टीले हा क्या न हा। कवित्त की भूमि लक्षित क देने के बाद उसका प्रमाह पर यह रचन लग जाता है। न यह उस गति स पत्राह नहीं कर सकता। 'विम तगद तल्ल मुक्त स्वमात्र है, वैसे ही यह छन्द भा—यह कहना इस नियमित प्रमाह से मल नग पाना। 'पल्ल और पल्लव' में उन्होंने कवित्त और मुक्तछन्द क सम्बन्ध पर विस्तार में प्रमाह डाला है।

मुक्तछन्द की पक्तियाँ का सुगठित बनाने क लिए ध्वनिसाम्य का आधार लिया जाता है। निरालाजी ने इसका विशेष उपयोग किया है।

‘जागा फिर एक राग ।

प्यारे जगाते हुए हार मय तार तुम्ह

अरुण-यग तरुण किंग्य

रवही गेल नी द्वार ।’

‘प्यारे, हारे, तार और ‘अ-रु, तरुण’ शब्द पक्तिर्या के सुगठित होने क सहायक होते हैं।

एन ही—

सुमर म अमर कर प्राण,

गान गाय मशमिन्धु मे,

मिन्धुनद तारमावा,

सैचर तुम्ह्रा पर,

चतुरग चमूषय ,

सना-सवा लास पर,  
 एक को चगाऊँगा,  
 गाविन्दमिं निज  
 नाम जत्र वगाऊँगा ।'  
 निसन मुनाया यह,  
 वीरजन मोहन अति,  
 दुजय समाम राग,  
 पाग का खेला रण गारहा महीना म ?—  
 शेरों की माद म,  
 आया है आज स्यार—  
 जागो फिर एक गार ।'

इस बन्द में ध्वनि के सहज मानुषास आवत दर्शनीय हैं। उनके साथ निगलाजा ने 'चगाऊँगा, 'वहाऊँगा' के बीच में तुकान्त कट्टियाँ भी मिला दी हैं। अतः में 'म्यार' और 'गार' का तुकान्त पत्तियाँ से उन्द समाप्त हाता है। तमाम पत्तियाँ में आंतरिक सगठन के साथ पूरे उन्द में तारतम्य और सम्यङ्कता है। बन्द के पश्चात् पूरी कविता में यह तारतम्य निद्यमान है। हर उन्द के बाद 'जागो फिर एक गार' की ध्वनि नवयुग के वैतालिक के स्वर की तरह हृदय पर एक विचित्र मात्क प्रभाव डालती है। निगलानी जिन पुरुषत्व के उपासक हैं, उसकी अभियन्ति अनूठी हुई है।

मुक्तछन्दा में भासाँ के कितने प्रकार, शब्दा की कितनी कृत्तियाँ, कितने गुण प्रकट हो सकते हैं, यह कवि के कौशल पर निर्भर है। निगलानी ने कहा है कि मुक्तछन्द का प्रयोग आत्मगुण के लिए हाता है परन्तु इन पत्तियाँ की कामलता की तुलना के लिए अन्य पत्तियाँ टेंदने पर ही मिलेंगी—

पिउ ख पपीहे प्रिय गल रहे,  
 सेज पर निरह निदग्ग वधू,  
 याद कर गीती वातें, रातें मन मिलन की,  
 मूँद रही पलकें चारु,  
 नयन जल ढल गये,  
 लघुतर कर व्यथा-भार—  
 जागो फिर एक बार !

पहली पक्ति में 'प,' 'र' की आवृत्ति, 'रातें,' 'रातें' का ध्वनिसाम्य, 'जल ढल' की सजल ध्वनि, 'पलकें चारु' का चित्र-सौष्ठव—गद्य कुछ कितना स्वाभाविक है, परन्तु इसके पीछे जिस काटि का कौशल छिपा है ! क्या गद्य के दुन्दुभे मुक्तछंद पढ़ने से यही आनन्द उत्पन्न हो सकता है ? निरालाजी ने अनुप्रासा का भांडा प्रयोग नहीं किया, परन्तु अनुप्रासा से कितना प्रेम उन्हें है, उतना और किसी छायावादी कवि को नहीं है। चतुर कलाकार की भांति उन्होंने उनका उपयोग पक्तियाँ के सुगठन और सम्बद्धता के लिए किया है। 'शफालिका' में 'पल्लव-पर्यङ्क पर', 'व्याकुल विगत', 'नक्षत्रदीप कक्ष', 'सुरभिमय समार लोफ' आदि और इस तरह के सैकड़ उदाहरण उनकी रचनायाँ से दिये जा सकते हैं। पुनः, ध्वनि के आवर्त, जैसे लोफ के बाद शफ, 'शाला शफाला' आदि उनके भावें हाथ का खेल हैं। इस कला के निरालाजी अद्वितीय आचार्य हैं। उनके अनुकरण पर जिन गद्य कवियों ने मुक्त छंद का रचनाएँ की हैं, उनमें से कुछ ने निरालाजी के कौशल को नहीं अपनाया, वे मुक्ति-सिद्धान्त में ऐसे प्रभावित हुए कि ध्वनि-चमत्कार और श्रवण सुन्द प्रवाह से ही हाथ धो बैठे हैं।

निरालाजी जिसे मुक्त छंद कहते हैं, वह वर्णित ही होता है, मात्रिम छंदों के आधार पर जिस मुक्त छंद की सृष्टि हुई है, उसे वे

## स्वर्गीय बलभद्र दीक्षित "पद्मीस"

श्री बलभद्र दीक्षित अरबची में 'पद्मीस' उपनाम से कविता करते थे और इसी नाम से वह अधिक प्रसिद्ध थे। उनकी कविताओं का एक ही समूह 'चमत्कार' नाम से निराल पाया था। अरबची में कविता लिखना उन्होंने मन्द नहीं किया और एक छोटे समूह में उनकी कविताएँ और हैं। इनके अतिरिक्त "माधुरी" में उन्होंने रबियों के सम्बन्ध में कुछ अत्यन्त राबक निराल लिखे थे। इनमें रबियों की शिक्षा, उनके साथ बड़े-बूढ़ों के व्यवहार आदि विषयों पर उन्होंने प्रकाश डाला था। हिन्दी में दीक्षितजी पहले लेखक थे, जिन्होंने इन समस्याओं की आर ध्यान दिया था और उन पर क्रांतिकारी ढंग से लिखा था। इन लेखों का कितना सम्बन्ध रबियों के माता पिता तथा अभिभावकों से है, उतना रबियों से नहीं। आधे दिन हमारे समाज में—क्या घर में और क्या स्कूल में—रबियों के साथ जा निर्दयतापूर्ण असभ्य व्यवहार किया जाता है, उससे दीक्षितजी के हृदय का चोट लगी थी। इस लगा में उनी निदयता के विरुद्ध एक ज़ारदार आवाज़ उठाइ गई है। लेखों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण उनकी कहा किया है, जिनका एक समूह 'लामज़हब' नाम से उनके जीवनकाल में निराला था। शेष जा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में—हस, सषप, माधुरी, विष्णु, टैस्ट, चमत्कार आदि में—प्रकाशित हो चुकी हैं, उनकी सरता कम नहीं है और आगे उनके दो समूह प्रकाशित हो सकेंगे। अपना कहानियाँ में उन्होंने समाज के निम्न-वर्ग के लोगों का चित्रण किया है और उन लोगों का भी, जिन्हें परिस्थितियों ने टाँस-बीटकर आधा पागल बना दिया है। एक उनका अधूरा

उपन्यास है, जिसका कुछ अर्थ "माधुरी" के इसी अक्षर में प्रकाशित होगा।

दानितना का साहित्य विपरीत हुआ था, वह सन्तिन्दर पुस्तक में साहित्य प्रेमियों के लिए सुलभ नहीं था। फिर भी उनके कविता संग्रह "चक्रलस" ने ही उन्हें काफी ख्याति प्रदान की थी। जो लोग उनके साहित्य के अन्य अंगों का भी जानते थे, वे उनकी बहुमुखी प्रतिभा के क्रायल थे। जो उनके साहित्य में कम परिचित थे, वे उनके व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित थे। दीक्षितना का व्यक्तित्व उनके साहित्य से भी महान् था और इसका कारण यह था कि वह एक अनन्त निर्झर-सा था, जो महान् साहित्य की सृष्टि करने में समर्थ था। उनमें देवता-पैत्री सरलता थी, यदि देवता भी वैसे सरल होते हैं। उनका सादरा से गृह्य लोगों का भ्रम हो जाता था और अपने असम्भ्य नागरिक सस्कारों का कारण वे दीक्षितना का एक अशिक्षित गँवार समझ बैठते थे। परन्तु ऐसे लोग कम थे। सौभाग्य से अधिक लोग वे थे, जो उनका सादरा से धारणा न खाते थे और उनकी महत्ता का न्यूनधिक पहचान ही जाते थे।

दानितना पहले कसमठा राज्य में नौकर थे। एक विशय घटना के कारण उन्हें राज्य से सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ा था। कुछ दिन बाद उन्होंने वहाँ पुनः नौकरा की, लेकिन फिर छाड़ दी। मुना है कि कसमठा के युवराज साह्य का व्यवहार सहृदयता-पूर्ण रहा है। वह दानितना के साहित्यिक जीवन में दिलचस्पी लते थे और 'पदास' का 'चक्रलस' भी उन्हीं की समर्ति का ग्रह है। उनका उन्हीं से भी युवराज का व्यवहार सहृदयतापूर्ण था।

दानितना एक कमठ व्यक्ति थे, गैत में हल चलाना अपनी पट्ट मस्तिष्क के विपरीत होते हुए भी सुगम ममकत थे। उनकी मृत्यु अचानक ही गई। हल का फाल उनका पैर में लग गया था

और उसी से निष पेटा हाकर सारे शरीर म फेल गया । पैर म चाट लगने पर उहोने अपने बडे लडके का जा पत्र लिखा था, उससे मालूम होना है कि वह स्वयं उसे घातक न समझने थ । परन्तु भाषी कुछ और ही था ।

यहाँ पर मैं दीक्षितजी तथा उनकी रचनाओं का सक्षिप्त परिचय देना चाहता हूँ । यह भरे लिए, अपने मित्रों और परिवार के लिए तथा हि दी भाषा और साहित्य के लिए जो कुछ थ, उसे शब्दों में प्रकट करना कठिन है । महृदय पाठक उनका अनुमानमात्र कर सकेंगे ।

दीक्षितजी ने कुछ पाले रागड़ की स्लिपा पर अपने जीवन की घटनाओं का जिक्र किया है । एक पारिवारिक समस्या का मुलकाने के लिए उन्होंने अपने जीवन क कुछ पहलुओं पर डमम प्रकाश डाला था । उस लेख का प्रकाशित करने का अभी समय नहा आया । परन्तु उससे उनके जीवन क एक ऐसे पहलू पर तीव्र प्रकाश पडता है, जिसे उहोने अपने मित्रों से गुप्त रक्ता था । ना हँसा उनक ग्राठा पर गेला करती थी, उसके नीचे वह जानने के प्रकृत-से निक्त अनुभवा की छिपाये हुए थे । अथ समझ में आता है, उनकी यह हँसा एक ऐसे सिपाही की थी, जो क्षत विन्तत हाकर भा फल मुद की चिन्ता करता है और अपनी पीड़ा से दूसरा ना पीड़ित करना अपराध समझता है ।

इस लेख में उन्होंने अपने जन्म क विषय म लिखा है—“भादा, म० १९५५ विक्रम में यह श्रीदीनबन्धु का भदर यहाँ इसी घर म पैदा हुआ था ।” श्रीदीनबन्धु उनके सबसे बडे भाइ ना नाम था और उनके लिए दीक्षितजी क हृदय म अगाध स्नेह था । उनसे नि स्वाथ जीवन की यह सदा प्रशाना किया करते थ । उनके अन्य दो छोटे भाइ उनसे बडे थे परन्तु उनका चरित्र विनास दूसरी दिशा में

हुआ था। अपने कहानी-संग्रह "लामजहर" को उन्होंने अपने सबसे बड़े भाई श्रीदीनराजु का ही समर्पित किया है। "ददू" को मनोहित करते हुए उन्होंने स्नेह म ड़वे हुए ये शब्द लिखे थे—“जायन के प्रभात म हा तुमने मुझे यह सुक्ता दिया था कि गरीबी-अमीरी, श्रेष्ठता-अश्रेष्ठता मूर्खों के दिमाग का चीज़ है। उधर तुम्हारी देशन के गठरी भर रूपये आते थे, इधर तुम गोमती किनारे अपने चमार श्रीग धोरी मित्रों के साथ नित्यप्रति एक पटा गहर घाम छोलते थे। ज़ुम आठ परस रु थे, तब दा जैसे दिन भर की निरवाही के लाकर बड़े गर्व से मा का देने थे। अम्बरपुर के कुली और किसान तुम्हें अपना सलाहकार मानते थे। 'लामजहर' में तुम्हारी स्मृति को देता हूँ।

### ‘तुम्हारा भद्र’

मद्र से 'भद्र' नाम उह अधिन प्यारा था, क्योंकि इससे उन्हें अपने भाइ के स्नेह की सुध ही आती थी। 'लामजहर' का जा प्रति उन्होंने मुझे दी थी, उसमें उन्होंने अपना नाम "जलभद्र" हा लिखा था। बड़े भाइ से उन्होंने जा कुछ सांगा था, माना उसी को वह अपने जीवन में चिन्तार्थ करने की राशिष करतें थे। दीनराजुजी भी नममटा राज्य में नौकर थे। जब राजकुमारी का विवाह विजया नगरम् म हुआ, तब वह भा राजकुमारी के साथ वहाँ गये। बाद में वही रहने लग और राजकुमारी के अभिमायक का कार्य करने लगे। सन् '३५ की गमिया म दीनराजुजी का स्वगवास हुआ।

दाक्षित्यो की शिक्षा राजकुमार के साथ ही नममटा म हुई। पढ़ने का रच आर कुछ रजीषा वहाँ से मिलता था। सन् १८ म उताम विवाह हुआ। सन् '२० में उन्होंने दाद स्कूल पास किया और शालेन म भर्ती हुए परंतु छ महाने राद शालेन छाड़ देना पड़ा।



दीक्षितजी साधारण लागा की अपना निशुद्ध उच्चारण से अंगरेजी मालते थे। इसका कारण उनकी शिक्षा से अधिक उनका उच्च वर्गों से सम्पर्क था। कालेज छाड़कर वह कसमडा राय में नौकर हो गये। सन् '२७ में उन्होंने नौकरी छाड़ दी और दो साल तक वहाँ से अलग रहे। परंतु इसने बाद फिर नौकर हो गये और सन् '३५ तक वहाँ रहे। इस वर्ष उनका पड़ा लटका श्रीबुद्धिभद्र बोस टाकीज में नौकर हो गया था और उसी के साथ वह भी बम्बई चले गये। अगस्त से नवम्बर तक वह बम्बई रहे, फिर गाँव चले आये। सन् '३८ तक वह गाँव में ही रहे। रीमान के राजकुमारों को भी इसी समय पढ़ात रह। सन् '३८ में कुछ विशेष कारणों से वह गाँव छोड़कर लखनऊ चले आये। अगस्त सन् '३८ में शायद वह पहली बार रेडिया म—सलानों पर—वाले। नवम्बर में वह लखनऊ रेडिया स्टेशन में नौकर हो गये। रेडियो स्टेशन में वह जिन तरह काम करते थे, उनकी एक तेज मलक प्रसिद्ध कहानी-लेखक "पहाड़ी" के रेखाचित्र में मिलेगा। कुछ समय तक वह और दीक्षितजी रेडियो में साथ-साथ काम करते रहे थे।

रेडियो स्टेशन में काम करते समय उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। उनकी मित्रों का इससे विशेष चिन्ता रहती थी। उधर जिन परिस्थितियों के कारण उन्हें गाँव छोड़ना पड़ा, उनमें भी अब कुछ परिवर्तन हो चुका था। जब उन्होंने गाँव जाना रहने को कहा, तब मित्रों ने उनका रात का समर्थन किया। लखनऊ में रहते हुए उन्होंने मई सन् '४० में अपनी एकमात्र लड़की का विवाह भी कर दिया था। सन् '४० का अन्त हात हात उन्होंने रेडिया में नौकरा छोड़ दी। दूसरे वर्ष उन्होंने अपने सबसे बड़े लड़के श्रीबुद्धिभद्र का विवाह किया। सन् '४१ भर वह गाँव में रहे और वहाँ किसानों— विशेषकर अछूतों के लड़कों की शिक्षा के लिए एक पाठशाला

स्त्री। २७ जून, सन् '४२ का उनके पैर में घातक चोट लगी। इसने एक महीना पदले ही वह लपनऊ आये थे और मुझे मले-मिलकर रिदा हुए थे। उसने बाद प्रलरामपुर अस्पताल में मैंने उड़ फिर देखा, लेकिन तब से अब मैं बहुत अन्तर था। प्रेमचन्द के उस चित्र का स्मरण कीजिए, जो उनकी रोगशय्या पर लिया गया था। मुझे एक भयानक आघात के साथ इस बात का अनुभव हुआ कि अब वह अपना जीवन-लीला समाप्त कर रहे हैं। १४ जुलाई, सन् १९४२ का उद्दिष्ट हम समार से महायात्रा की। उनकी मृत्यु पर श्राद्धमृतलाल नागर ने लिखा था, "मुझे उनकी मौत का दुःख नडा। ज़िदगी भर पलंग पर पड़े-पड़े हाय-हाय करते हुए उनकी साँमें नहीं निरुत्ता। एक सच्चे भारतीय और गुरे साहसिक की तरह जीवन में लड़कर उन्होंने जीरगति प्राप्त की है।"

जिस लोग का ऊपर जिन हा चुना है, उसमें दीक्षितजी ने अपनी सुव्यवस्था के बारे में लिखा है—“मुझे दिग्गवट बहुत पसन्द थी। इसलिए मगर नाम का बहुत-सा सामान मैं खरीद कर घर ले आया। गेहमग खर्च के कपड़े मैंने १००) तक के एक बार म मर कर दिये हैं।” गाय भैंसें खरीदने का भी उन्हें शौक था। गायों में लालन-पालन होने से उनकी आदतें भी वैसी ही पड़ गयीं। उनका एक चित्र साफा राध रियामती वेश में—उस समय में दिल्लीता है। मरा उनसे परिचय पहली बार सन् '३६ में हुआ था। वह कसमदा में तब भी नौकर थे, परन्तु मैंने उससे उनका नाम के मित्र भली भाँति परिचित किया। मैंने उनका लम्बा-चौड़ा परिचय दिया जिसका प्रभाव पड़ा। कुछ दिनों बाद मैंने उनका घर जाना। उमने मुझे उनका भक्त बना दिया। दूसरा घर मैंने मित्र हो गये और दिन पर दिन वह मिथना

परिणत हाती गई। दीक्षित जी का हृदय निराल था, उनकी महदयता अपार थी। उनके श्रोक मित्र भी थे जिन पर उनका समान ह स्नेह था।

परिचय हान के चार वर्ष बाद मने उन पर एक लख लिखा था। उसका कुछ भाग यहाँ उद्धृत करने के लिए समा चाहता हूँ। वह मेरे लिए अब भी वैसे ही जीवित है, जैसे तब था। लेकिन आनरात्तम नागर के शब्द बार-बार याद आते हैं—“पत्नीमञ्जी पर लिखने बैठता हूँ तो ऐसा प्रताप होता है कि वह मरकर भी जीवित है और मैं जीवित भी मृत हूँ।”

“दीक्षितजी ठमके से माधारण क्रम के आदमी हैं। खहर का कुत्ता, धाती, कभी कभी उस पर सदगी, मिर पर गांधीटापी निराल फैशन में रक्खा हुइ, देह मांमलता से हीन, गाला जी हड्डियाँ चेहर में अपना अलग महत्त्व रखता हुइ, माटी भाइ आँगों के नीचे भी हल्के रोयें और बड़ी नुकीली मन्जरभैया मूछें—बड़े आदमी के गहपन की पाम में कोई रात न हाने से लागी का आत्मनिश्वास उन्हे देखकर महज जाग्रत हा जाता है। इसीलिए मने देखा है, जा लाग औरा के सामन कोई रात कन्ते भँवते हैं, वे दीक्षितजी के आग व्याख्यान देने में नहीं इंचरत। लागी के साथ व्यवहार करने में दीक्षितजी का बड़ी नीति है, जिस बह उच्चा के साथ काम में लाते हैं। बच्चे का आत्म गौरव की भावना जगाय बिना वह अपने मे उड़े पर निश्वास नहीं करता और इसलिये खुलकर वह हृदय की बात भी नहीं कर पाता। दीक्षितजी का देखकर उच्चा और बूढ़ा का आत्मगौरव समान रूप से जाग्रत हा जाता है।

“बहुत कम लाग उनकी आँखों की तरफ ध्यान दत है। धनी भौंहा के नीचे छोटी-छोटी आँगें एक शरीर धुँधलपन में रस-मी रहती हैं। किसी अनागरी-मी बात का मुनकर वे चमक उठता हैं-

रिस्मय में खुला रह जाता है, लेकिन वह धुँधलापन भेदकर नीचे के भाग का जानना फिर भा सम्भव नहीं होता। दीक्षितजी मित्रा-परिचिता में गऊ की तरह सोच प्रसिद्ध है। उनकी धुँधली आँखों में रिस्ले हा दग्गने की चेशा करते हैं, क्योंकि अने भावा ना छिपाने की उनम अदभुत जमता है। वह लोगों को जान या अनजान में उच्चा हा समझने हैं और लागा का व्यवहार भी ऐसा होता है कि दानिन जी ना दोषी नहा ठहराया जा सकता। धुधलेपन के पर्दे के नीचे जीवन का एक तुमुल मर्घ्य, सषष के ऊपर एन भावुक कवि का कल्पना की चादर और अलग, कौग में एक मनोवैज्ञानिक की कल-कर्ता हुइ चतुरता और चुहल, इनका पता लगाना उनकी कृतिया का पत्कर कुछ सभव हाता है।”

एक बार लखनऊ प्रदर्शनी में वह अपना एक गीत गा रहे थ। प्रदर्शनी श्रीमतीनागद में और मेरा मजान सुन्दरराग के इस छान पर। म रमर में येठा कुछ काम रर रहा था। रात के साढे दम रन हांग। अचानक हग में मुझे कुछ परिचित से स्वर मँडराते जान पडे। मैं सबसे ऊपर की छन पर चला गया और बहो में अत्यन्त स्पष्ट स्वर सुनाइ पड रहा था—“पपीहा बोलि जा रे, हाला डालि जा र।” जब तक यह गात समाप्त न हा गया, मैं तमय उसे सुनता रहा। वैसा मिठास माना उनके स्वर में पहले मिला ही न थी। आकाश में ठैरता हुइ स्वरलहरा जैसे और परिष्कृत हा गइ थी। बम हा भीठे और दूर जीवन के ये अनेक स्वप्न हैं, जिनमें उनका चित्र दिखाइ देता है। परन्तु उन सप पर विषाद की एक गहरी छाया पड गइ है। उन्हें जगाने का साहस नहा हाता।

कविता के लिए उन्होंने अपना नाम 'पन्नास' रक्ता था और उसे रिमान का पर्यायवाची मानते थ। किसानों का लक्ष्य करके उन्होंने लिखा था—

परिणत हाती गई। दीक्षित जी का हृदय विशाल था, उनकी सह-  
दयता अपार थी। उनके अनेक मित्र भी थे जिन पर उनका समा-  
ह स्नेह था।

परिचय हान के चार वर्ष बाद मैंने उन पर एक लेख लिखा था।  
उसका कुछ भाग यहाँ उद्धृत करने के लिए समा-चाहता हूँ। वह  
मेरे लिए अत्यन्त भी वैशेषी जीवित है, जैसे तब था। लेकिन धीनरात्म  
नागरक शब्द बार-बार याद आते हैं—“पत्नीमयी पर लिखते बैठता  
हूँ तो ऐसा प्रताप हाता है कि वह मरकर भी जीवित है और मैं  
जावित भी मृत हूँ।”

“दीक्षितजी ठमके से साधारण कदक आदमी हैं। खर का  
कुत्ता, धोती, फभी-सभा उस पर सदरी, सिर पर गांधीटापी गिराल  
फैशन में रक्खा हुइ, देह मांसलता से हीन, गाला की हड्डियाँ  
चेहरे में अपना अलग महत्त्व रखता हुइ, माटी भौंहें, आंगों के नीचे  
भी हल्के रोयें और बड़ी नुकीली कन्वरभैया मूछें—बड़े आदमी के  
बड़प्पन की पाम में कोई बात न हाने से लागी सा आत्मनिश्वास  
उह देखकर महज जाग्रत हा जाता है। इसीलिए भी देखा है, जा  
लाग औरों के सामने काइ बात रहतें भेषते हैं, वे दीक्षितजी के  
आगे व्याख्यान देने में नहीं दिखत। लागी के साथ व्यवहार करने  
में दीक्षितजी की वही नीति है, जिसे वह बच्चा के साथ काम में  
लाते हैं। बच्चे की आत्मगौरव का भावना जगाये बिना वह अपने  
से उड़े पर निश्वास नहीं करता और इसलिए खुलकर वह हृदय की  
बात भी नहीं कर पाता। दीक्षितजी का देगकर बच्चा और बूढ़ा का  
आत्मगौरव समान रूप से जाग्रत हा जाता है।

“बहुत कम लाग उनका आँसु की तरफ ध्यान दत है। धी  
भौंहों के नीचे छोटी-छोटी आँगें एक शजीव पुँधलवा में साइ-सी  
रहती हैं। किसी अनोपनी-सी बात में मुनकर व चमक उठती हैं-

रिस्मय में खुला रह जाती है, लेकिन वह धुँधलापन भेदकर नीचे के भाग का जानना फिर भी सम्भव नहीं होता। दीक्षितजी मियाँ-परिचितों में गऊ की तरह साथे प्रसिद्ध है। उनका धुँधला आँखा में निरले हाँदगने की चेष्टा करते हैं, क्योंकि अपने भावा को छिपाने की उनमें श्रद्धात्मकता है। वह लोगों को जान या अनजान में उन्हा हाँ समझते हैं और लोग का व्यवहार भी ऐसा होता है कि दीक्षित जी का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। धुधलेपन के पदों के नीचे जीवन का एक तुमुल सपर्ष, सपर्ष के ऊपर एक भावुन कवि का कल्पना की चादर और अलग, कोश में एक मनोवैज्ञानिक की कल कती हुई चतुरता और चुदल, इनका पता लगाना उनकी कृतियाँ का पत्कर कुछ सम्भव होता है।”

एक बार लखनऊ प्रदर्शनी में वह अपना एक गीत गा रहे थे। प्रदर्शनी अमीनाबाद में और मेरा मकान सुन्दरबाग के इस छोर पर। मैं कमर में बैठा कुछ काम कर रहा था। रात के साढ़े दस तक हाम। अचानक हवा में मुझे कुछ परिचित से स्वर मँडराते जान पड़े। मैं सबसे ऊपर की छत पर चला गया और वहाँ से अत्यन्त स्पष्ट स्वर सुनाई पड़ रहा था—“पपीहा योलि जा रे, हाला डालि जा रे।” जब तक यह गीत समाप्त न हो गया, मैं तमय उमे सुनता रहा। वैसी मिठास माना उनके स्वर में पहले मिली ही न था। आकाश में तैरता हुआ स्वरलहरा जैसे और परिष्कृत हो गई थी। वैसा ही मीठे और दूर जीवन के वे अनेक स्वप्न हैं, जिनमें उनका चित्र दिखाई देता है। परन्तु उन सपने पर विषाद की एक गहरी छाया पड़ गई है। उन्हें जगान का साहस नहीं होता।

कविता के लिए उन्होंने अपना नाम 'पन्नास' रखा था और उसे मिमान का पर्यायवाची मानते थे। किसानों का लक्ष्य करके उन्होंने लिखा था—

"व्यातउ-व्यातउ स्वाचउ-स्वाचउ

आ । उडे पढीसउ दुनिया के ।'

उन्होंने अपना कविताएँ किसान बनकर ही लिखी हैं। किसान तो वह थे ही, कविताओं में अपने किसान के स्वर को उन्होंने स्पष्ट रखा है। किसानों के प्रति शिक्षित जनों की व्यवज्ञा को जैसे उन्होंने अपने किसानपन से ललकारा था। 'नरल्लम' कविता-संग्रह सन् १९६० वि० में छपा था। कविताएँ उसके पहले लिखी गई थीं। तब यह व्यवज्ञा और भी गंभीर-बढ़ा थी। इसी को लक्ष्य करके उन्होंने भूमिका में लिखा था—“शहरों में रहने-गला शिक्षित समाज अपने को दिहाता और उनकी भाषा से अपने को उतना ही अलग समझता है, जितना कि किसी और देश का रहने-गला हिन्दुस्तानियों और हिन्दुस्तानी का।” जैसे इस उपेक्षा की प्रतिक्रिया अबधी भाषा में कविता करने में प्रकट हुई। उन्होंने मुझे बताया था कि जब उन्होंने किसानों की ही भाषा में कविता लिखना शुरू किया था, तब उनके अनेक मित्रों ने उन्हें उपेक्षित अबधी में अपनी प्रतिभा नष्ट न करने की सलाह दी थी। यदि दीनितजी की मानप्रतिष्ठा की दृष्टि चाहिए होती तो वह गढ़ीगाली में एक महाकवि बनने का विचार अवश्य करते। परन्तु किसानों के लिए उनके हृदय में जो सहानुभूति उमड़ रही थी, वह उन्हीं की भाषा में काव्यगत रूढ़ियों के बंधन ताड़कर प्रगाढ़त हा चली। उनकी कविताओं का पत्र-पर बरबस रसों की याद हो आती है। ठान उसी तरह इनकी कविताएँ भी जैसे खेतों में फला फली हो।

ग्राम भाषाओं में साहित्य लिखना जितना मौलिक आवश्यक मालूम होता है, उतना १९वीं शताब्दी में न था। भारतेन्दु ने “रवि चन्दन मुधा” में इस आशय की विराप विज्ञप्ति छपाई थी कि “हिन्दी का ग्रामाण भाषाओं में स्वदेशी, स्वदेश प्रेम, सामाजिक सुरीतियाँ

आदि पर गीत और कविताएँ लिखें। उनके युग में इस प्रकार का बहुत-सा लोकसाहित्य रचा भी गया था। द्विवेदी-युग में ये बातें पीछे पड़ गईं, जो स्वाभाविक था। उस समय प्रमुख कवियों को आधुनिक हिन्दी में नवीन कविता की सृष्टि करने की चिन्ता थी। अब खड़ी बोली में बहुत-सी और उच्च शक्ति की कविता रची जा चुकी है। हम लाग उस आर से निश्चित हो रहे हैं। गीराहुल साहित्यायन तथा अन्य विद्वान् भारत-दु की तरह ग्राम भाषाओं में भी जन-साहित्य रचने के लिए जागे रहे हैं। दीक्षितजी इस नई विचारधारा के अग्रदूत थे, उन्होंने वर्तमान युग में सबसे पहले इस बात के महत्त्व को समझा था और जैसा कि उनका स्वभाव था, एक बात को तय करके वह उसे कायरूप में परिणत भी करने लगे थे। उनके चरमचिद्धां पर अग्रणी में अग्र कवि भा अग्र लाक्षणकारी साहित्य रच रहे हैं।

पत्नीमत्ता की अग्रणी मीतापुर की अग्रणी है, जो उस अग्रणी (वैमनाड़ा) में कुछ भिन्न है, जिसमें प्रतापनारायण मिश्र तथा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कविता की थी। परन्तु भारतवर्ष की सभी प्रांतीय बालियाँ में एक मधुर देमीपन है, जो हिन्दुस्तान की अपनी चीज है, जिस पर बाहर का प्रभाव प्रायः नहीं पड़ा है, और जहाँ पड़ा है, वहाँ उस देमीपन में घुल मिलकर एक हो गया है। गाँव में जाकर न तो काठ पेट का शान रह सकती है, न शेरवानी और चूड़ीदार पायजामे की। वहाँ हाल विदेशी शर्मा का ग्रामीण बालियाँ में होता है।

दीक्षितजी का अग्रणी व शब्दमाधुर्य की वैसी ही परंपरा थी, जैसा किसी महान् कवि का हो सकती है। उनका रचना "तुलसीदास" का एक एक शब्द मधुर है, सम्पूर्ण कविता मानो रामचरितमानस में झरझर निगल उठी है। प्रकृति-वर्णन में वह ताज़गी है, जो अग्रणी की



घनी श्रमराइयाँ म परीहा और कोयल की गाली म हाती है और ज पिजडे म गन्द मैना की गाली म नहा हाती है। उनकी कविताओं में वही आनन्द है, जो गेत गलिगनों म घूमनेगले को खुली हवा से प्राप्त होता है। बस की तरह 'पत्नी' जी ने भा आये दिन की घटनाओं पर कविताएँ लिगी हैं। गाव म एक बार बहिया आइ थी, उसी का आँसा देगा गणन उहाने "हमार राम" नाम की कविता में किया है। केवल किसान कवि ही निग्य सकता है—

“तागि धार ते कटयि गगारा  
 धरती घँसयि पनालु ।  
 लाँस-लाँस बिधना की लागा हम  
 रायी हाल ब्यहाल ।  
 मट्टैया के रगवार हमार राम ।”

एसी तमयता बहुत कम कवियाँ म देखा जाता है। व किसान ही चुन्ध दागर गा रहा है, किसान मट्टैया पर राम न गीर किया है।

दीक्षितजी का बहुत-सा रचनाएँ गस्परम की हैं। ब्यग्य और हास्य के वह सिद्ध कवि थे। एक तो अनधा भाषा हा इस प्रकार का रचनाओं क लिए सजथा उपयुक्त है, जिस पर उसका उपयोग किया था दानितजी ने, जिनका तीक्ष्ण दृष्टि से काइ भी ब्यग्यपूर्ण परिस्थिति अपने का कभी द्विपा न पाता थी। वह किसान का जागन म हा हास्य दूँद निगालते थे, नइ मस्त्रति स प्रभासित श्रय वर्गों पर भा वह ब्यग्यबाण गरमाने से न चुनत थ। 'किहानी' कविता उनकी ब्यग्यपूर्ण रचनाओं का गयोःकृष्ट उदाहरण है। हम 'किहानी' के 'काका' वह स्वय हैं। उहाँ स एक किसान युक्त प्रार्थना करता है कि तब वह राम क घर जायँ, तब उनमे यह 'किरयाद' जरूर करें कि हमें श्रंगरेज का ही रक्षा बनायँ। शगर श्रंगरेज के गन्चे

न हो सकें तो जमादार के घर में हा पैदा करें। इसमें भी कुछ मीन मिले हा तो पटवारगीरी तो बर्बाद गइ नहीं है। पटवारगीरी न मिले तो चौकीदार तो जना ही देंग। किसान से वह फिर भी अच्छे हा रहेंग। शापख-यत्र म कितने फलपुर्जे हैं। इन सबके बीच में है किसान, जा चौमादारी के आशा-स्वप्न का छोड़कर अपने खेत की आर यह रहकर चलता है—

“दुइ पहर दिनउना चलि आग  
जायित हयि रामु न नामु करयि ।  
उडकय ख्यात ते का जाना  
कयतने कँगलन का पेदु भरयि ।”

‘पद्मीस’ जी का कुछ अर्थ अप्रकाशित रचनाएँ माधुरी के पद्मीस अर्थ में मिलेंगी। वह अनेक छन्दों का प्रयोग करते थे और उद रावम समान सफलता मिली है। उनका व्यंग्यपूर्ण कविता में बोल चाल की चपलता है। शान्त और गम्भार कविताया में सगतमय धीमा प्रवाह है।

उनका ग्राम जावन-सम्बन्धी कहानियाँ म वैसा ही सत्तार वर्णन है, जैसा उनका कविताओं म। उनका सबसे पहला कहानी शायद “क्या सं क्या” है, जिसका कथासूत्र कुछ उलझा हुआ है। वह वास्तव म उद् कहानियाँ से मिलकर बनी है और उसके ये विभिन्न कथांश अत्यंत उत्कृष्ट हैं। प्रकाशित कहानियाँ में सबसे पहला “पौर्वा” है, जो “माधुरी” म छपी थी। उसके पहले पैराम्राफ में ही दास न जगल का वर्णन अद्भुत है। “क ख ग घ” में उन्होंने गाँवाँ म अनिराय शिजा के दुष्परिणामों का चित्र खींचा है। इसका “दुशीला” का जिक्र उन्होंने अपने एक लेख में भी किया है। “दाद अच्छर” उन कहानियाँ म है, जिनम उन्होंने रिक्त मस्तिष्क के लागों का चित्रण किया है।

“ममका” “कंगले” आदि कहानियाँ उस कोटि की हैं, जिनमें उन्होंने समाज के निम्नतम वर्ग के लोगों का चित्रण किया है। इन लोगों पर इतने निरुत्थ से उन्हें देख सुनकर किसी ने नहीं लिखा। इन्हें उठाने कुछ छोटे छोटे अत्यन्त सुन्दर स्केच लिखे थे—“चमार भाई” “राज़ी भाई” “पाठक भाई” इत्यादि। इनमें “पंडितजी” यह स्वयं हैं। “राज़ी भाई” स्केच “स्त” में छपा था। श्रीशिवदान सिंह चौहान ने लिखा था—पंडितजी बहुत उदार हैं। राज़ी भाई की तरह उन्हें भी अनुदार होना चाहिए था।

इन कहानियों का पढ़नेवाला समझ सकेगा कि दीक्षितजी मानव-मनोविज्ञान में कितनी गहराई तक पहुँचे थे। उनमें ऐसी ही सहृदयता थी। जिसे लोग देखकर घृणा से अपना आँसू फेर लते थे, उसी के वह और निरुत्थ लिखते थे। वह हिन्दू, मुसलमान और ब्राह्मण, शूद्र का भेदभाव न मारते थे। केवल विचार भूमि पर नज़र, व्यवहार जगत में उन्हें अपने आदर्शवाद के कारण कट्टरपथियों से अपमानित होना पड़ता था। वह गाँव में पामा-चमारों से मिलने और गाँव के बड़े बूढ़ों के चिन्ने की बहुत-सी बातें बताया करते थे।

बच्चों से उन्हें बड़ा प्रेम था। जिस घर में भी जाते, बड़ों से ज्यादा उनकी दोस्ती छाटा से हा जाती। उनके कुछ दिन तक न आने पर अध्यापक बच्चे पूछने लगते—कहाँ आयेगे कब ?

बच्चों की शिक्षा में उन्हें बड़ा दिलचस्पी थी। वह बच्चों का भी स्वयं पढ़ाते थे। अथर्व प्रकाशित उनकी “आत्मकथा” पढ़ने से उनके इस शिक्षण जीवन का परिचय मिलेगा। उन्होंने हिन्दी में पहले-पहल बच्चों का सज़ा देने का तीव्र विरोध किया था। बचपन में जो दार बच्चों में आ जाते हैं, उनके लिए वे माता पिता का ही दोषी ठहराते थे। बच्चों और सेक्स के बारे में उनके विचार अत्यन्त ही स्वतंत्र

और क्रांतिकारी थे। अब हिन्दी में और भा इस प्रकार के विचारों का पाषाण साहित्य रचा जाने लगा है। दीक्षितजी ने अंगरेजी में इस सम्बन्ध का कुछ साहित्य पढ़ा था, परन्तु उनके अधिकांश विचार मौलिक थे और उनके निजी प्रयोगों के परिणाम थे। उच्चों में चंचलपन उन्हें पसन्द था। हाथ जाड़कर नमस्ते की कवायद करने वाले उच्चों के माता-पिता को वह सरा ग्याटा मुनाये विना न रहते थे। उच्चपन में धर्म और पुण्य-पाप की कहानियाँ सुनाकर उच्चों में जा भावता भर दी जाती है, उसकी उन्होंने कठु शब्दों में निन्दा की है। छोट्टे-से परिवार में माता पिता और पुत्र के बीच प्रेम और घृणा का जा द्वन्द्व चला करता है, उद उनही दृष्टि से द्विपा न था। उच्चों में जिस बात की श्राव सहज सम्मान हा, उसी की श्राव उसे प्रास्ताहित करना वह अपना कर्तव्य समझते थे। इनाम और उदशास देकर उच्चों में स्पष्टा भाव जगाना भी वह अनुचित समझते थे। मतमतांतरों के प्रचार से उच्चों में कुसस्वभाव उत्पन्न करना वह पाप समझते थे। सन् '३२, '३७ और '३८ की "माधुरी" में उनके इस विषय के अनेक लेख प्रकाशित हुए थे। उनमें सबसे शक्ति उनके निजा प्रयागा और उच्चों की शिक्षा-सम्बन्धी अनुभवों का वर्णन है। वह अपने आदर्शों की अनुभार ही अपने उच्चों को शिक्षा देते थे और उनसे भाइयारों का व्यवहार करते थे। इसीलिए उनके उच्चों साधारण परिवारों के उच्चों से भिन्न काटि के और ताद्वरणुद्धि हैं।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली की निन्दा करते हुए उन्होंने लिखा था कि अकाल हा माता पिता अपने पुत्रों का धार्मिक और मत्प्रादी बनाना चाहते हैं। "नहीं ता चार चार बालिशत के पील मुँह, पिचर गाल, श्राँवें धँसा, नमें निकला, कितानों के गडर से मुक्ते हुए दारानाल, जा अस्वस्थ हा अकाल ही कालम्बलित हा जाते हैं, स्कूल की मड़की और गलियाँ में भीड़त रँगते न दिग्माइ पड़ते।" उनका

शिक्षण प्रयाग के मूल में यही वेदना थी, माना उसी की पूर्ति वह अपनी महदयता से करना चाहते थे।

जीवन के अंतिम दिना में भी वह अपने यहाँ एक पाठशाला चला रहे थे। ३० जून, मन् '४२ में उद्दाने श्रीबुद्धिभद्र के नाम अपना अंतिम पत्र लिखा—

“प्रिय वत्स,

मेरे पैर में चाट आ गइ है। चुन्नी से सब हाल जानागे। चोट घातक नहा है, परन्तु रुष्टदायक अवश्य है। तुम श्रीभाग्यवती गहू को लेकर, सुविधानुसार चले आओ। चि० परशुराम अभी आये ही थे, न आयें तो अच्छा है।

अधिक प्यार

ककड़

मैं चित्र माहुर ना लिखे भी दे रहा हूँ”

× × ×

यही सुदौल सुन्दर अक्षर हैं, आसन्न मृत्यु की छाया वहीं भी दिखाई नहीं देती। इसका ठीक दो सप्ताह बाद ही उनका देहान्त हुआ। चाट नितनी घातक थी, सारित हो गया।

उद्दाने अपने एक अधूरे लख में लिखा था—“हम जो कुछ करना है वह उनसे, जो नित्यप्रति के जीवन में अखिल रसालकर चलने वाले आज के हिन्दुस्तानी हैं, जिन्हें फरल सच्ची-सोधी बात सोचने और कहने के कारण अपना से ठाकर लेना पड़ती है, फिर भी वे अखिल मूँद या स्वप्नलोक में विचरकर कोई काम नहा करना चाहते, जितना यह मत है कि धर्म और समाज की अच्छाईयों का प्रयोग अधिक-से अधिक ऐदिक जीवन में हो जाना चाहिए।” ऐसे लोगों के लिए, मुझे विश्वास है, स्वर्गीय दीनानाथी का साहित्य उनका एक हठ और जीवित स्मारक रहेगा।

## शेली और रवीन्द्रनाथ

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में शला ने जिम नवीन सौन्दर्य का निम नये सङ्गीत का स्वर-परिधान पहनाकर अपनी कविता में जन्म दिया था, उमा का आग्रह रवीन्द्रनाथ की युवाकाल की कविताओं में गह्र भाषा भाषियां न मिला । इमीलिए वह गङ्गाल के शेली कहलाये । उनकी कविता का मूल ग्रान रोमाण्टिसिज्म ( Romanticism ) है । समार से उचाट, अतीत में सहानुभूति एव सन्धे सौन्दर्य की शोच, प्रकृति में विनी रूच्यमयी महाशक्ति के दर्शन, किसी दूर अज्ञात रहस्यना-लोक की अपने हा भीतर छिपि आदि बातें दोना कवियां में समान रूप से पाया जाती हैं । शाना ने भाषा का बहुत-कुछ नवीन रूप दिया, नये-नये छंदा न सृष्टि न । शेली का कविता और साधारणत तत्कालीन रोमाण्टिक कविता अपने बाह्य आकार-प्रकार से मुगठित न हाने के लिए उदनाम है । कवि के भाव-प्रवाह ने अपिसारात एउ एमा उच्छ्वल गति धारण न कि कलाकारों को उमम बहुत-कुछ प्रससृत, दुःख तथा गला हीन मिला । कविता न शेष ताड़ते समय कवि स्वय उम निराध धारा में बहुत दूर तक दिशा ज्ञान शीन हा रहता चला गया । रवीन्द्रनाथ में आकार-प्रकार-सम्बन्धी कलात्मक भ्रान्तिया शेला में बहुत कम है । कविता की साह्य निमाण-कला न प्यान में खते हुए वह एउ क्लासिकल कवि बदे न मकते हैं ।

( १ ) प्रकृति — रोमाण्टिक कविता का एक विशेष भाग प्रकृति में सम्बन्धित है । शाना कविया ने क्रमश गङ्गाल तथा इटली क नदी.

वर्णन किया है। जहाँ व प्रकृति से तटस्थ रहकर उस एक भिन्न दर्शन मात्र बनकर देखते हैं, एक वैज्ञानिक की भाँति उसके रूप का चित्रण करते हैं। कभी उसका चेतन मानकर उसे अपनी सुख-दुःख का गति सुनाते हैं किन्तु वहाँ अपने परिवर्तित दृश्यों द्वारा उन पर नाना भाव प्रकट करता है। किन्तु उनकी प्रकृति इस लोक का चंद्र साम्राज्य से बँधा नहीं है। उनकी कल्पना समस्त सृष्टि में विचरण करने के लिए स्वतंत्र है। स्वाद्रनाथ देवते हैं—

“महाकाश भरा

ए असाम जगत् जनता,  
ए निरिङ्ग आला अधकार,  
काटि छायापथ, मायापथ,  
दुग्म उदय-अस्ताचल।”

इसा भाँति शैला पृथ्वी, आकाश, नक्षत्र, जन्म और मरण का गान गाता है—

I sang of the dancing stars,  
I sang of the daedal Earth,  
And of Heaven—and the giant wars,  
And Love, and Death, and Birth,—”

प्रकृति से उनके घानष्ट सम्बन्ध का एक सुख्य कारण यह है कि उसके द्वारा ही पहले वे सकारक रहस्य का भेद कर। यद्यपि बद्ध-स्थिति का भाँति उनका रहना यह नहीं है कि प्रकृति का छाड़ अयम ज्ञान प्राप्ति दुर्लभ है, प्रत्युत् स्वाद्रनाथ अपने ही भीतर आत्म-दर्शन पर बार-बार जार देते हैं, ताँ भाँ पहले-पहले ज्ञानालोक मनुष्य से दूर उन्हें प्रकृति का सम्मुख मिला।

शैला का प्रकृति में इस अमर मौन्द्य का अनन्य बार दर्शन होते हैं। स्वाद्रनाथ की उपास्य देवाँ ज्ञाना वेश धारण करके उन्हें प्रकृति

में दर्शन देती है। प्राकृतिक दृश्यों के दोनों ने सुन्दर सुन्दर रूपक बंधे हैं, प्राकृतिक वस्तुओं का उपमाओं में दोनों की कविता में प्रचुर प्रयोग है। प्रकृति का अनेक रूपता और उसके रङ्गों में उनकी कविता रगी हुई है।

( २ ) नारी-सौन्दर्य —सौन्दर्योपासक इन दो कवितां ने नारी को नाना रङ्गों के आरण्य पहनाकर उसे अनेक कोणों से देखा है। प्लेटो के सौन्दर्य सिद्धान्तों का मानने वाले शैली के लिए अलौकिक सौन्दर्य के दर्शन करने के लिये पहले नारी-रूप की उपासना सापेक्ष है। जो ज्ञानालोक सुन्दर और अमर है, उसकी क्षणिक आभा नारी में दिखाई देती है। मनुष्य उसके रूप को पूजकर कर्मश पार्थिव से अपार्थिव सौन्दर्य तर पहुँच सकेगा। “प्रोमीथियस” के लिए “एशिया” उसके जीवन का आलोक एवं अदृश्य सौन्दर्य का छाया है—

“Asia, thou light of life,

Shadow of beauty unbeheld,”

ग्वान्द्रनाथ की प्रेयसी उनके जीवन का आलोक ही नहीं है, उसके गह-बन्धन में उनके जीवन और मरण दोनों बंधे हैं।

“तुमि मार जीवन मरण

गंधियाछो दु टि बाहु दिया।”

निरावरणा इस नारी का वे उसके नग्न सौन्दर्य की आभा-में हा मासमान देखना चाहते हैं—“कैला गो रसन फला—धुचाया अञ्जल, पातो शुभु सौन्दर्ये नम आवरण, मुर-बानिकार बेश किरण रसन।”

(“निवसना”—“कहि श्री, नामल”।)

इसी भाँति शैली उसे अपने ही आनन्द के स्वर्गीय प्रकाश से समावेष्टित देखता है—

“Thou art folded, thou art lying

In the light which is undying



Of thine own joy, and  
heaven's smile divine!"

नारी के सौन्दर्य का रहस्य उस और भी सुन्दर बना देता है । वृन्तहीन पुष्प के समान अपने रूप में जैसे वह आप निष्कषित हो उठी हो । आनाश और पवन तक इस रहस्यमयी की पूजा करते हैं, उसे प्यार करते हैं । "एशिया" से उसकी सला पूछता है—

"Feelest thou not

The inanimate winds enamoured of thee?"

"उर्शा" की तन-बाध-बहन करनेवाला अध वायु चारों ओर घूमती है । अथवा जब "निगिनी" सरोवर से नहाकर निकलती है तो आकाश और पवन सेवक की भाँति उगड़ी परिचया करते हैं—

"त्रिरि तार चारिपाश

निखिल तातास आर अनन्त आकाश

जेनो एक ठाँड एने आमदे सन्नत

सवाङ्ग चुम्बिल तार,—'

यह नारी स्वयं भी प्रकृति के नाना बेशों में दर्शन देती है ।

( ३ ) प्रेम — जिस तरह ये कवि पार्थिव से अपाधिय सौन्दर्य पाना चाहते हैं, वैसे ही माना वासना से प्रेम । खान्दनाथ की प्रायः मिक कविताओं में प्रेम से अधिक वासना ही मिलती है । "निर्करे स्वप्न भङ्ग" में जब रहस्य अवगुण्डन छिन्न होता है, उस काल—

"प्राणर वासना प्राणर आवेग

रुधिया सन्विते तारि ।'

प्राणों की वागता, प्राणों के आवेग का वह रास नहीं करते । इस वासना के आरपण से प्राण उठी जाने लगता है ।

"प्राण पारती काँदे एइ

वासना सने ।'

शैली अपने आवेग को समाल नहीं पाता, वह उसे मृत-मृत्यु बना देता है—

“My heart in its thirst is a dying flower,”  
तथा “I faint, I perish with my love !”

क्या पुरुष, क्या स्त्री, क्या प्रकृति, सभी अपना आवेग समाल नहीं पाते। उकुल फूल “विवश” होकर जल में गिरते हैं—

“निवश होये उकुल फूल  
खसिया पडे नीरे।”

मध्याह्न की ज्योति वन की गोद में मूर्च्छित पडी है—

“मध्याह्न ज्योति  
मूर्च्छित रनेर कोले,”

पुष्प-गन्ध से विहल वायु सारमी के वक्ष पर सुरीन निश्वास छोड़ती गिर पड़ती है—

“उहु वन गन्ध बदे

अफस्मात् धान्त वायु उचत आग्रहे  
लुण्ठये पङ्कितिल सुदीर्घ निश्वासे  
सुर सरसीर बक्षे म्निग्ग गहुपाशे।”

इसी भाँति पुरुष का अङ्ग प्रत्यङ्ग प्रिया के अङ्गा से मिलने के लिए विहल है। यद्यपि प्राणा न मिलन हो चुका है, तथापि अभी देह का मिलन चाही है। “प्रति अङ्ग कर्दिं तव प्रति अङ्ग तरे, प्राणेर मिनन मागे ददेर मिला। हृदये आच्छन दह हृदयेर भरे, सुरधि पङ्किते चाय तव देह परे।”

अब शैली के आवेग की निवशता, मिठास और उसकी मूर्च्छना को देखिये। देहिय मिला उनके अस्तित्व का प्रिया के अस्तित्व में मिला देगा।

“And I will recline on thy marble neck  
Till I mingle into thee”

आनन्द इतना अधिक हो सकता है कि हृदय उसे सहन न कर  
वेदना से कराह उठे,—

‘So sweet that joy is almost pain’

आँखें अपने इस आनन्द को स्वयं न देखें—

“Let eyes not see their own delight’

इसी भाँति हवायें अपने सङ्गीत पर मुग्ध होकर जान देती हैं—

“Winds that die

On the bosom of their own harmony’

वसन्त के दिनों में उनका पङ्ख फूलों की मुग्ध से भर गये हैं—

“The noontide plumes of summer winds  
Satiated with sweet flowers’

और भी

“The wandering airs they faint

On the dark, the silent stream—”

कूना पर मूर्च्छित मध्याह्न ज्योति—

“And noon lay heavy on flower and tree,”

यही वासना कवि को प्रेम-तत्व की ओर ले आती है। वह पार्थिव  
में अपार्थिव, देह में निदेह के दशन करता है। खीन्द्रनाथ को प्रेयसी  
की आँगों में काँपते हुए उसके प्राण दिखाई देते हैं—

‘आमा-माने चाहिए तोमार आँखिते काँपित प्राण खानि ।’

इसी भाँति शैली की प्रिया के अधर बह बात नहीं कह सकते,  
जिसे उसकी आत्म प्रकाश-दीप्त आँखें कह देती हैं—

( "And the tremulous lips dare not speak  
What is told by the soul-felt eye "

जब मिलन होता है तो ससार जैसे छुप्त हो जाता है, मिलनेवालों की एक ही सत्ता रह जाती है—

“विजन विश्वेर माके, मिलन श्मशाने  
निन्वापित सज्जालोफ़ छुप्त चराचर,  
लाज-मुक्त रास-मुक्त दुष्टि नम्र प्राण्ये,  
सोमाते आम्राते होइ असीम सुन्दर ।”

● (पूर्ण मिलन—कडि श्री क्रोमल) ।

इसी तरह शेली में मिलन होने पर दोनों की एक आशा, एक जीवन, एक मरण होता है ।

(४) विपाद —रामाण्टिन कवि की एक अन्य विशेषता है, उसका दर्द । ससार के दुःख उसे दुखी करते हैं । यहाँ स्थिरता किसे है ? किसे हम प्यार करते हैं, जिसका सुन्दरता हम मुग्ध करती है, दो दिन बाद उसका भी सर्मा के समान मरण होता है । शेली ने मृत्यु से उत्पन्न दुःख को बड़े ही कवण शब्दों में व्यक्त किया है । मनुष्य को मृत्यु से कुछ भी नहीं बचा सकता ।

“What can hide man from mutability ? ”

ससार में जो कुछ भी सुन्दर है, जो कुछ भी कल्याणकर है, कम उसे अपने भातर छिपा लेती है—

“The grave hides all things beautiful  
and good ”

रवीन्द्रनाथ भी इस मृत्यु का स्मरण करके एक बार कह उठते हैं—

“तुह जायि, गान जाये, एक साथे भेसे जाये  
तुह, आर तोर गान गुलि !”

तू जायगा और तेरे ये गीत जायेंगे, दोनों एक साथ काल-स्रोत में बह जायेंगे। इस मायामय ससार में चिरदिन कुछ भी न रहेगा।

“एह मायामय भवे चिरदिन किछु, र'बे ना।”

जब तक मनुष्य जीता है, आशा निराशा का हृदय में तुमुल युद्ध मचा रहता है—

“We look before and after

And pine for what is not.”

मृत्यु म ही हृदय की इस उथल पुथल का अन्त होगा—

“Doubtless there is a place of peace  
Where my weak heart and all its throbs  
will cease”

रवीन्द्रनाथ कहते हैं, यह जलती वासना, यह रोना धोना व्यर्थ है—

“वृथा ए वन्दन !

वृथा ए अनल-भरा दुरन्त वासना !”

वह कभी शान्त न होगी, अपनी आँसुओं के पानी में उसे डुबा दो।

“निराशा वासना-रहि नयनेर नीरे।”

(६) अतीत — उनके विषाद का एक और कारण है, उनका वर्तमान से असन्तुष्ट। शैली ने अपने समय के सामाजिक और राजनीतिक नियमों का एक प्रचलित धार्मिक रूटियों का कठोर से कठोर भाषा में खण्डन किया है। राजाओं और पुजारियों के शीघ्र नाश होने की उसने भविष्यवाणी की है, सभी प्रकार के रूढ़ियों के छिन्न होने पर वह मनुष्यको मुक्त देखना चाहता है। रवीन्द्रनाथ इतनी उद्यत क्रांतिकारी नहीं, पर इसीलिए समाज की, राजतंत्र की उनकी आलोचना अधिक गम्भीर एक हितकर सिद्ध हुई है। फिर भी दोनों ही कवि वर्तमान की छोड़ कर अतीत में अपना प्रिय वातावरण खोजते

हैं। शेली ग्रीक और रोमन धर्म-कथाओं को अपनी कविता का आधार बनाता है, उनके देवी-देवताओं की उपासना में अपने गीत गाता है। सामयिक कविता उसकी रुचि के इतनी अनुकूल नहीं होती जितनी पुरातन। रवीन्द्रनाथ अपनी भाषा के कवियों में वैष्णव कवियों को ही पहले अर्ध-पढ़ते हैं। उनकी भाषा, और छन्दों पर वैष्णव कविता की छाप दिग्वाद् देती है। सस्कृत कवियों में कालिदास के वह अत्यन्त महत् हैं। उनकी कृतियों पर तथा स्वयं कालिदास पर उनकी अनेक कविताएँ हैं। कालिदास के समय को लेकर उनकी अनेक कल्पनाएँ हैं। सस्कृत पौराणिक कथाओं का आधार लेकर उन्होंने बहुत रचनाएँ की हैं। इसी भाँति जातक कथाओं एवं पञ्जान और महाराष्ट्र के इतिहास का भी अपनी कविता में उन्होंने आधार लिया है। समय की दूरी के कारण अतीत जिस पर भी अपनी मुनहली मध्या की सी मिल्गिल ज्योति जलता है, वह उनके लिए एक आश्चर्य की वस्तु बन जाता है। आधुनिक सभ्यता को उसके नगर, उसके लौह, काष्ठ और प्रस्तर वापस देकर वह अपने पुराने तपोवन, सामगान और सध्या-स्नान चाहते हैं—

“दाया फिर से अरण्य, लथो ए नगर,  
लहा जनो लौह लौट्टू-काष्ठ ग्री’ प्रस्तर,  
हे नव सभ्यता, हे निप्पुर सर्वग्रासी,  
दायो सेइ तपोवन पुष्यच्छायापराधि,  
ग्लानिहीन दिन गुलि,—सेइ सध्याम्नान,  
सेइ गाचारन, सेइ शान्त सामगान,” इत्यादि।

उनकी कविता प्राचीन भारत के स्वर्ण-स्वप्नों से भरी पड़ी है।

(७) रहस्यवाद — मृत्यु से उत्पन्न निपाद पर ऊपर लिखा जा चुका है। यदि इस दुःख का तब भूल जाता है जब वह भावी जीवन की आरंभ देखता है। मनुष्य का जीवन इसी जन्म से आरम्भ नहीं

होता, न उसका इसी मृत्यु से अन्त होता है। जन्म-जन्मान्तरो के पश्चात् कमश पूर्णता की आर उन्नति करता हुआ वह उस अमर जीवन से मिल जाता है, जो पृथ्वी है, सुन्दर तथा सत्य है। यह संसार बाधन है, मनुष्य अपने जिस सांसारिक जीवन को जीवन कहता है वह जीवन नहीं। शैली की (Pantheistic) भावना यहाँ कहीं-कहीं रवीन्द्रनाथ से बिलकुल मिल जाती है। मनुष्य मरने पर प्रकृति के अनन्त जीवन से मिल जाता है। कीट्स की मृत्यु पर लिखते हुए वह कहता है—

“He is made one with nature there is heard  
His voice in all her music, from the moan  
Of thunder, to the songs of night's  
sweet bird,”

इसी भाँति रवीन्द्रनाथ का गलक प्रकृति-तत्वों से मिलकर अपनी माँ से अनेक खेल खेलता है।

“हावार सङ्गे हावा हा' ये  
जाना मा तोर बुके न'ये,  
ध'रूते आमाय पार'ये ना तो हाते ।  
जलेर मध्ये होबो मा डेउ  
जानते आमाय पार'ये ना केउ,  
स्नानेर बेला खेलूंगो तामार साथ ।”

संसार के छाया-पट परिवर्तित हुआ करते हैं, एक अमर जीवन की ज्योति-मात्र सदा जाग्रत रहती है।

“The One remains, the many change and pass,  
Heaven's light for ever shines, Earth's  
shadows fly, ”

शैली के लिए ससार की आत्मा स्नेहपूर्ण, सुन्दर और सदा प्रकाशमान है।

यह प्रेम और सौन्दर्य की ज्योति ससार का जीवन है। जिस पर उसका पूर्ण प्रकाश पड़ता है, उसके पार्थिव बंधन छिन्न हो जाते हैं। उसी में वह मिल जाता है। रवीन्द्रनाथ के जीवन देवता प्रेम और सौन्दर्य की पूर्णता हैं। जन्म-जन्मान्तर से वह उनमें मिलने के लिए व्याकुल हैं। वही नहीं, समस्त ससार उसी पूर्णता से मिलने के लिए गतिमान है। जब तक वह मिलन न होगा तब तक स्थिरता भी न हागी।

(८) शब्द चित्र — दोना कवि कुशल चित्रकार हैं। शैली की कल्पना पार्थिव आकार प्रसार से कम पघती है। सुन्दर वस्तु के रूप में, उसका ज्योति में जैसे उसकी दृष्टि पघ जाती हो, क्रिया स्थूल को छाड़कर वह जैसे सूक्ष्म सौन्दर्य को हा व्यक्त करना चाहे इस कारण उसके चित्र अपने बाह्य आकार में उतने स्पष्ट नहीं उतरते जितने रवीन्द्रनाथ के। बाह्य सौन्दर्य से आकृष्ट होकर वह उसे देर तक देखते हैं, अनेक कोणों से देखकर उसकी रेखा-रेखा का सु-विस्तार बखान करते हैं। सुन्दरियाँ उनका सामने विभिन्न वेशों में, विभिन्न हाव भावों के साथ आती हैं, तरह-तरह के पोज़ करती हैं, कवि मुग्ध होकर उनके सजीव चित्र उतारता जाता है। उनकी समानता चित्र को प्रकाश से आवेष्टित करने, उसके अङ्गों में रग भरने में है। दोना ही रगों को प्यार करते हैं, चित्र पर प्रकाश और छाया का खेल देखना चाहते हैं। शैली की सुन्दरी सध्या के पीत आलोक में हाथ बाँध आँखें रोले लेटी है —

“With open eyes and folded hands shelay,  
Pale in the light of the declining day”



स्नान करके आयी हुई "विजयिनी" पर मध्याह्न का आलोक पड़ता है—

“वारि शिखरे शिखरे  
पडिल मध्याह्न रौद्र—ललाटे अघरे  
उर परे ऋटितटे स्तनाग्रचूडाय  
बाहुजुगे,—सित देहे रेखाय रेखाय  
मलके मलये ।”

नम्र सौन्दर्य की उपासना पर ऊपर भी कहा जा चुका है । पूर्णिमा रजनी ज्योत्स्ना-मग्न अपनी नम्रता में कितनी सुन्दर है—

“विमल गगना, विभार नगना,  
पूरनिमा निशि, जाछुना मगना,”

शैली नम्रा नव विवाहिता को अपने सौन्दर्य पर विह्वल देखता है—

“A naked bride

Glowing at once with love and loveliness  
Blushes and trembles at her own excess”

रङ्गा की समानता देखिये । रवीन्द्रनाथ का निम्न

“रामधनू आँसु पासा उड़ाइया,  
गरि किरणो हासि छड़ाइया,”—बहता है ।

शैली की निर्मलिंगिणी Arethusa भी अपने इन्द्र धनुष के केश उड़ाती रहती है—

“She leapt down the rocks,  
With her rainbow locks,

Streaming among the streams,—”

दानां रजिया की दृष्टि अत्यन्त पैनी है । जो सब देख सकते हैं उसका तो वे चित्र रींचते ही हैं, जहाँ केवल कवि दृष्टि पहुँच सकती है, उस अदृश्य को भी वे अपने शब्दांश साकार कर दिखाते हैं ।

शेली समुद्र-तल के नीचे उसकी शक्तियों की रत्न-भाण्डियों के सिंहासनों पर बैठा देखता है।

रवीन्द्रनाथ समुद्र जल में उर्वशी के मणि-दीप्त रत्न में उसके प्रवाल-पालङ्क तथा उसके मानिक-मुक्ताभ्यां के साथ खेलने की कितनी सुन्दर कल्पना करते हैं—

“आंधार पाधारतले कार धरे रमिया एऐला  
मानिक मुकुता ल'ये करे छिले शैशवेर खेला ।  
मनिदीप-दीप्तकचे समुद्रेर कल्लोल-सङ्गीते  
श्रवलङ्क हास्यमुखे प्रवाल-पालङ्के घुमाइते  
कार अङ्कटिते ?”

कविता, सभ्या, यर्षा, वेदना, रात्रि, मृत्यु आदि के भी उन्होंने सुन्दर चित्र बनाये हैं। शेली के पास जब वेदना आती है तो एक सुगठित आकार में, कवि उसे पास निठाता है, उससे बातचीत करता है, उससे चुम्बन माँगता है—

“Kiss me,—oh ! thy lips are cold :  
Round my neck thine arms enfold—  
They are soft, but chill and dead ,  
And thy tears upon my head  
Burn like points of frozen lead ”

रवीन्द्रनाथ की कविता-कामिनी के चुम्बन अधिक मधुर है—

“उज्ज्वल रत्निम वण मुधापूर्ण मुख  
रेखा श्रोष्ठाधरपुटे, भक्त भ्रङ्ग तरे  
सम्पूर्ण चुम्बन एक, हासि स्तरे स्तरे  
सरस सुन्दर ,”

इन कवियों की कल्पना की समानता उनके चित्रों की समानता

‘चरित्रहीन’ म दिवाकर, ‘पथरे गीची’ में अपूर्व इत्यादि । कहा जाता है कि श्रीकांत का भ्रमण कहानी म शरत् नाथ ने आत्म कथा लिखा है—गारह आने उसमें वास्तविक घटनाएँ हैं और चार आने कल्पना उन घटनाओं को उपन्यास के रूप में सजाने के लिये है । श्रीकांत का यह महत्त्व देने का कोई विशेष कारण नहीं है, सिवाय इसके कि वह अकले उनके साधारण चार उपन्यासों के परापर है । श्रीकांत की कहानी अथ उपन्यासों में भा मिलेगी, नहीं कम कहीं ज्यादा और श्रीकांत के चार पत्रों में वह कहाना पूरा पूरा आ गइ है, इसमें संदेह है ।

पहले श्रीकांत की ही कहानी लेंते हैं । इसम नायक की लक्ष्यहीनता, उसकी भ्रमणप्रियता, प्रेम का उसे रचिना और टेलना आदि क्रियाएँ विशेष उभरकर आइ हैं । श्रीकांत अपने साथी इन्द्र के कारण बचपन में ही सिगरेट भाग आदि का प्रेम आ जाता है । एक रात साहब के यहाँ प्यारी बाइ से उसकी भेंट हाती है । ‘यारी का वास्तविक नाम राजलक्ष्मी है और वह श्रीकांत के ही गीच की रहने वाली है । उसने बचपन में ही श्रीकांत का प्यार किया था और बचपन से ही श्रीकांत ने उसे निराश करना आरम्भ कर दिया था । जब उसने मकोइयों की जयमाला पहनाई तो श्रीकांत ने प्रेम से सन मकोइयों का डाला, माला टूट गइ । राजलक्ष्मी अपना प्रेम प्रदर्शित

गइ और मैंने आँसू सोलकर देखा कि राजलक्ष्मी गुपचुप कमरे में आइ और उसने टबल के ऊपर का लैम्प उठाकर उसे दरवाजे के कोने की आड़ में रख दिया। एकदम मैं आने वाला नारा न इस गुप्त कर स्पर्श में पहले तो मैं झुठित और लज्जित हो उठा। लज्जा और झुटा का अंत राजलक्ष्मी के यहाँ से चल देने के निश्चय में हुआ। 'आँसू और मुँह जल रहे थे, सिर इतना भारी था कि शय्या त्याग करते क्लेश मालूम हुआ। फिर भी जाना ही होगा।' क्या जाना होगा ? इसलिये कि राजलक्ष्मी की चरित्र प्रवृत्ति पर धन्या न लग जाय, मन नहीं धोखा न दे जाय। श्रीकांत का चलने का निश्चय अपने लिए किसी भय के कारण नहीं था, भय था राजलक्ष्मी के लिए, उसे तपस्या कराके योगिनी बनाना ही होगा। पाठक धोखे में न पड़े इसलिए श्रीकांत ने स्पष्ट कर दिया है—'फिर भी यह दर मुझे अपने लिए उतना नहीं था। परंतु, राजलक्ष्मी के लिये ही मुझे राजलक्ष्मी को छोड़ जाना होगा, इसमें अब जरा सी भी आनामानी करने से काम न चलगा।' यही प्रेम का वह सूक्ष्म विज्ञान है जो पुरुष को नागी के निम्न लाता है और फिर नारीत्व का निगमने के लिए उसे दूर टबल देता है।

द्वितीय पर्व में श्रीकांत और राजलक्ष्मी फिर मिलते हैं और फिर श्रीकांत उसे छोड़कर चल देता है। यहाँ उसकी बग्यात्रा का वर्णन है जिसकी मुख्य बातें अन्य उपयात्रा में मिलती हैं। जहाज की विशेष घटना स श्रीकांत के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। सब यात्रियों की डाक्टरों की होती है। श्रीकांत को यह अत्यन्त अपमानजनक प्रतीत होता है। 'आगे लड़े हुए साथियों के प्रति किया गया पगदा-पद्धति का जितना प्रयाग दृष्टिगोचर हुआ, उससे मेरी चिन्ता की सीमा न रही। ऐसा कायर बगालियों को छोड़कर वहाँ और कोई नहीं था जो देह के निम्न भाग के उधाड़े जाने पर भयभीत हो यथा समय आँसू

‘चरित्रहीन’ म दिवाकर, ‘पथरे दाबी’ में अपूर्व इत्यादि । कहा जाता है कि श्रीकांत की भ्रमण कहानी में शरत् वायू ने आत्म कथा लिखा है—शरत् आने उसम वास्तविक घटनाएँ हैं और चार आने कल्पना उन घटनाओं को उपयास के रूप में सजाने क लिये है । श्रीकांत को यह महत्त्व देने का कोई विशेष कारण नहीं है, सिवाय इसके कि वह ग्रन्थे उनके साधारण चार उपयासों के परावर है । श्रीकांत की कहानी अथ उपन्यासा म भा मिलेगा, नहीं कम कहीं ज्यादा और श्रीकांत के चार पत्रों में वह कहानी पूरी पूरा आ गइ है, इसम सन्देह है ।

पहले श्रीकांत की हा कहानी लेते हैं । इसम नायक की लक्ष्य-हीनता, उसकी भ्रमणप्रियता, प्रेम का उसे रींचना और ठेलना आदि क्रियाएँ विशेष उभरकर आइ हैं । श्रीकांत अपने साथी इन्द्र के कारण बचपन म ही सिगरेट भोंग आदि का प्रेमा हो जाता है । एक रात साहब के यहाँ प्यारी बाइ से उसकी भेंट होती है । प्यारी का वास्तविक नाम राजलक्ष्मी है और वह श्रीकांत के ही गाँव की रहने वाला है । उसने बचपन में ही श्रीकांत को प्यार किया था और बचपन से ही श्रीकांत ने उसे निराश करना आरम्भ कर दिया था । जब उसने मनोहियों की जयमाला पहनाइ तो श्रीकांत ने प्रेम में सत्र मकाश्याँ का डाला, माला टूट गई । राजलक्ष्मी अपना प्रेम प्रदर्शित करती है परन्तु प्रेम श्रीकांत का दूर ठेल ले जाता है । पहला पत्र के ११वें अध्याय म श्रीकांत को बुखार आ जाता है और राजलक्ष्मी उसका सेवा के लिये उपस्थित हो जाती है, अपने साथ उसे पटना भी ले जाती है । पटना में राजलक्ष्मी क ‘पवित्र शयन मंदिर’ में श्रीकांत को अपने उच्चत शरण पर गुप्त कर स्पर्श का मुक्त मिलता है । मुक्त के साथ लज्जा और भय का उदय हाता है, मनोभावों का सुद्ध निरूपण देखते ही बनता है । ‘बहुत रात बीते एकाएक सत्रा टूट

गड और मैंने आँसू लोलकर देखा कि राजलक्ष्मी गुपचुप कमरे में आइ और उसने टेबल के ऊपर काँलेम्प जुम्कार उसे दरवाज के काने में आड़ में रख दिया। एकान्त में आन वाला नारा क इस गुप्त कर स्पश से पहले ता म कुटित और लज्जित हा उठा।' लना और कुटा का अत राजलक्ष्मा के यहाँ से चल देने के निश्चय म हुआ। 'आसँ और मुँह जल रहे थ, सिर इतना भारा था कि शय्या त्याग करते क्लेश मालूम हुआ। फिर भी जाना ही हागा।' क्या जाना हागा ? इसलिये कि राजलक्ष्मा की चरित्र-शक्ति पर धर्या न लग जाय, मन वहाँ धोखा न दे जाय। श्रीमंत का चलने का निश्चय अपने लिए किसी भय के कारण नहीं था, भय था राजलक्ष्मी के लिए उसे तपस्या कराने योगिनी बनाना ही होगा। पाठक धोखे में न पड़े इसलिये श्रीमंत ने स्पष्ट कर दिया है—'फिर भी वह टर मुझे अपने लिए उतना नहा था। परंतु, राजलक्ष्मा के लिये हा मुझे राजलक्ष्मी को छोड़ जाना हागा, इसमें अत्र चारा सी मा आनामानी करने से काम न चलेगा।' यही प्रेम का वह सूक्ष्म विज्ञान है जो पुरुष को नारी के निम्न लाता है और फिर नारीत्व का निगारने के लिए उस दूर दकेल देता है।

द्वितीय पर्व में श्रीमंत और राजलक्ष्मी फिर मिलते हैं और फिर श्रीमंत उसे छोड़कर चल देता है। यहाँ उसकी बर्मायात्रा का वर्णन है जिसकी मुख्य बातें अन्य उपन्यासों में मिलती हैं। जहाज की निशप घटना में श्रीमंत के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। सब यात्रियों की डाकटरा हाती है। श्रीमंत को यह अत्यन्त अपमानजनक प्रतीत हाता है। 'आगे रखे हुए साथियों के प्रति किया गया पराक्षा-वदति का नितना प्रयोग दृष्टिगोचर हुआ, उससे मेरा चिन्ता का सामा न रही। ऐसा कायर बगालियाँ को छोड़कर वहाँ और कोई नहीं था जो देह के निम्न भाग के उधाड़े जाने पर भयभीत हा यथा समय आँसू

‘चरित्रहीन’ म दिवाकर, ‘पथरे दावी’ में अपूर्व इत्यादि । कहा जाता है कि श्रीकांत का भ्रमण कहानी में शरत् वायू ने आत्म कथा लिखी है—गारह आने उसम वास्तविक घटनाएँ हैं और चार आगे कल्पना उन घटनाओं को उपन्यास के रूप में सजाने के लिये है । भाकांत को यह महत्त्व देने का कोई विशेष कारण नहीं है, सिवाय इसके कि वह अपने उनके साधारण चार उपन्यासों के परापर है । भाकांत की कहानी अथ उपन्यासों म भी मिलेगी, नहीं कम कहाँ ज्यादा और भाकांत के चार पत्रों म वह कहानी पूरा पूरा आ गइ है, इसम सन्देह है ।

पहले श्रीकांत की ही कहानी लेते हैं । इसम नायक की लक्ष्यहीनता, उसकी भ्रमणप्रियता, प्रेम का उसे राचिना और टेलना आदि क्रियाएँ विशेष उभरकर आइ हैं । श्रीकांत अपने साथी इन्द्र के कारण बचपन म ही सिगरेट भोग आदि का प्रेमा हा जाता है । एक रात साहय के यहाँ प्याग गई से उसकी भेंट होती है । प्यारी का वास्तविक नाम राजलक्ष्मी है और वह श्रीकांत के ही गाव की रहने वाला है । उसने बचपन में ही श्रीकांत का प्यार किया था और बचपन से ही श्रीकांत ने उसे निराश करना आरम्भ कर दिया था । जब उसने मकौड़्या की जयमाला पहनाइ तो श्रीकांत ने प्रेम स समय मकौड़्या का डाला, माला टूट गइ । राजलक्ष्मी अपना प्रेम प्रदर्शित करती है परन्तु प्रेम श्रीकांत का दूर ठेल ले जाता है । पहरो पत्र के ११वें अध्याय में श्रीकांत का बुखार आ जाता है और राजलक्ष्मी उसकी सेवा के लिये उपस्थित हो जाती है, अपने साथ उसे पटना भी ले जाती है । पटना में राजलक्ष्मी के ‘पवित्र शयन मंदिर’ में भाकांत का अपने उत्तम शरीर पर गुप्त कर स्पर्श का मुग्ध मिलता है । मुग्ध के साथ लजा और भय का उदय होता है, मनोमाया का सुद्ध प्रिलक्षण देखते ही बनता है । ‘बहुत रात बीते एकाएक तद्रा टूट

गइ और मैंने आँसू खोलकर देखा कि राजलक्ष्मी गुपचुप कमरे में आइ और उसने टेबल के ऊपर का लेम्प जुलाकर उसे दरवाजे के मोने का आइ म रत दिया । एकत म आने वाली नारी के इस गुप्त कर स्पश से पहले तो म कुठित और लज्जित हो उठा ।' लज्जा और कुटा का शत राजलक्ष्मी के यहाँ से चल देने के निश्चय में हुआ । 'आरों और मुँह जल रहे थे, सिर इतना भारी था कि शय्या त्याग करते क्लेश मालूम हुआ । फिर भी जाना हा हागा ।' क्या जाना हागा ! इसलिये कि राजलक्ष्मी की चरित्र-प्रतिमा पर धन्या न लग जाय, मन कहाँ धारा न द जाय । श्रीमंत का चलने का निश्चय अपने लिए किसी मय के कागग नहाँ था, मय भा राजलक्ष्मी के लिए, उसे तपस्या कराके योगिना बनाना ही हागा । पाठक धोव्ने म न पडेँ इसलिये श्रीमंत ने स्पष्ट कर दिया है—'किर भा यह उर मुझे अपने लिए उतना नहाँ था । परंतु, राजलक्ष्मी के लिये हा मुझे राजलक्ष्मी को छाड़ जाना हागा, इनम अर जरा सी भा आनामना करने से काम न चलेगा । यही प्रेम का यह सूक्ष्म विज्ञान है जा पुरुष का नारा के निरुद्ध लाता है और फिर नारीत्व का निगारने क लिए उमे दूर टकेल देता है ।

द्वितीय पय में श्रीमंत और राजलक्ष्मी फिर मिलते हैं और फिर श्रीमंत उसे छाँटकर चल देता है । यहाँ उसकी समायात्रा का वर्णन है जिसकी मुख्य बातें अन्य उप-कासों में मिलती हैं । जहाज़ की विशप घटना से श्रीमंत के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है । मन यात्रियाँ की डाक्टरा हाती है, श्रीमंत को यह अत्यन्त अपमानजनक प्रतीत हाता है । 'आगे सड़े हुए साथियों के प्रति किया गया परीक्षा-पद्धति का कितना प्रयाग दृष्टिगोचर हुआ, उससे मेरा चिन्ता का सामा न रही । ऐसा कायर जगलियाँ की छाड़कर वहाँ और कोई नहीं था जो देह क निम्न भाग क उपाड़े जाने पर मयभीत हा यथा समय आँसू



मीचकर, मारा अग सकुचितकर एउ तरह से हताश हो हाकर, डाक्टर क हाथ आत्म-ममपण कर दिया ।'

जगत पर ही श्रीकांत की अभया से भेंट हो जाती है । यमा में प्लेग फैलने पर जब श्रीकांत बीमार पड़ जाता है तब यह अभया उचक परिचया करती है । अभया के यहाँ से श्रीकांत फिर राजलक्ष्मी के पास आता है । स्टेशन पर राजलक्ष्मी के चाट लगने पर वह कहती है— 'हाँ बहुत चाट लगी है,—परतु लगी है ऐसी जगह कि तुम जैसे पत्थर न उसे देख सकते हैं और न समझ सकते हैं ।' परन्तु श्रीकांत साचता है—'नाग की चर्म साथरता मातृत्व म है, यह बात शायद खूब गला पाड़ करके प्रचारित की जा सकता है ।' और राजलक्ष्मी के लिए कहता है—'उसरी कामना वासना आन उसी के मध्य म इस तरह गाता लगा गइ है कि बाहर से एकाएक सदेह होता है कि वह है भी या नहा ।' राजलक्ष्मी उसे पत्थर कह ता आश्चर्य क्या । श्रीकांत के चौथ पर्व म यग्नानन्द राजलक्ष्मी से पूछते हैं, क्या वह श्रीकान्त को निरा निरुम्मा ('अपेचो') बनाकर हो छाडेगी; और राजलक्ष्मी उत्तर देती है, ईश्वर ने ही उसे ऐसा बना दिया है, नही भा कोर नसग नहा छोड़ा । नदाचित् इमा कारण राजलक्ष्मी से श्रीकांत पर पूर्ण विश्वास है, उसके गाने जाने का उसे तनिन भी डर नही है । श्रीकांत के शब्दां में,—'केवल डर ही नही, राजलक्ष्मी जानती है कि मैं खाया जा ही नहीं सकता । इसरी सम्भावना ही नहीं है । पाने और भाने की सीमा से बाहर जो एक गम्भध है, मुझ विश्वास है कि उसने उसे ही प्राप्त कर लिया है और इत्यानण भेरी भी इस समय उसे जरूरत नहीं है ।' राजलक्ष्मी की दु मइ वदना का देखते हुए यह विश्वास करना कठिना है कि उसे श्रीकांत का आवश्यकता नहीं है, परन्तु इतना ता स्पष्ट है कि दूर यमा में अभया एउ विस्तर पर साथ खाने तक की सभी परिस्थितियां म श्रीकांत तथा राजलक्ष्मी का

खोने और पाने से परे का सम्बन्ध स्थिर और अद्विग रहता है । श्रीकान्त फिर भी राजलक्ष्मी के नारीत्व का महत्तर करने के लिये, उसमें क्षति की सम्भावना को दूर करने के लिए, उसे छोड़कर चला गया था । यह सदा एक न एक बहाने से उसे छोड़कर चला जाता है— परन्तु वे सब बहाने ही हैं । नारीत्व की रक्षा भी एक बहाना है । सत्य यह है कि श्रीकान्त का नारा मे सम्बन्ध गाने और पाने मे परे का है । अभया और कमललता से भी उसका सम्बन्ध क्या इमी कोटि का नहीं है ? 'चरित्रहीन' की 'चरित्रहीनता' भी क्या सच्चरित्रता और दुश्चरित्रता दोनों मे परे नहीं है ? परन्तु इस विडम्बना का कहीं अन्त नहीं है ।

इस बहाने कि राजलक्ष्मी अब भी गाने जाता है, श्रीकान्त उसे छोड़कर काशी से कलकत्ता चला जाता है । अपने गाँव आकर भातरी अबसाद उसे फिर सताता है और उसे ज्वर हो आता है । यह राजलक्ष्मी से रुपये मँगाता है और राजलक्ष्मी लक्ष्मी की ही मानि न्यय आकर उपस्थित हो जाता है । श्रीकान्त का गाँव राजलक्ष्मी का भी गाँव है और यहाँ सभी दाना के परिचित हैं । श्रीकान्त अपनी पत्नी कहकर राजलक्ष्मी का परिचय देता है । ऐसी परिस्थिति जिसमें पुरुष एक बिना न्यायी स्त्री ही अपनी पत्नी घोषित करता है, शरत् चानू के उपन्यासा में अनेक बार आता है । गन्दाह में मुरेश अबला का, चरित्रहीन में दिवानर विरग को इसी तरह अपना पत्नी घोषित करने हैं । पति कहलाने का साध इतने से ही पूरा हो जाता है ।

राजलक्ष्मी श्रीकान्त का उसके गाँव से पटना ले जाती है । वहाँ उसे फिर ज्वर आता है । ठीक पहले जैसा परिस्थिति फिर उत्पन्न होती है, इतने विचार के बाद प्रेम फिर उसे ठलना शुरू करता है, यहाँ तक कि यह प्रेम भा है कि नहीं, उसे सदह बहाने लगता है । उसे भान जाना है कि उसने अभी राजलक्ष्मी से प्रेम किया ही नहीं ।

रलिपशु का भाति शरत् का पुरुष अपने को नि सहाय पाता है। वह कातर हाकर दधर-उरर भागने का रास्ता खानता है। श्रीकांत ने अपना दशा का मार्मिक बणन किया है। 'मुँह उठाकर देखा, तो राजलक्ष्मी चुपचाप बैठी रिढ़नी के बाहर देख रही है। महमा मालूम हुआ कि मैंने कभी किसी दिन इससे प्रेम नहीं किया। फिर भी इस ही मुझे प्रेम करना पड़ेगा,—कहीं किसी तरफ से भी निकल भागने का रास्ता नहा। ससार म इतनी बडो रिडमना क्या कभी किसी के भाग्य म घटित हुइ है? और मजा यह कि एउ ही दिन पहले इस दुविधा की चक्की से अपनी रक्षा करने के लिये अपने का सपूर्ण रूप से उमी के हाथों सौंप दिया था। तब मन ही-मन ज़ार के साथ कहा था कि तुम्हारी सभी भलाइ बुराइयाँ क साथ ही तुम्हें अगाकार करता हूँ लक्ष्मी! और आज, मेरा मन ऐसा रिद्धिस्त और ऐमा विद्रोही हा उठा इसा से साचता हूँ मसार में 'फूँगा' रहो म और सचमुच करने में नितना बड़ा अतर है।" एउ एउ शब्द सार्थक है, श्रीकांत की समस्या का इससे अच्छे शब्दों में व्यक्त करना कठिन है। इस मयुर नितता की सृष्टि के लिये एउ विशय परिस्थिति की पुनरावृत्ति हाती है। प्रेम निया है, नहीं भी निया है—इसलिए वि वह बड़ा प्रेम है, स्यागे पाने के परे है। इसलिये प्रेम करना न करने क बराबर है। निकल भागने का रास्ता नहीं है—इस कातरता का अनुभव करना ही पड़ेगा। यद्यपि भागने का रास्ता सदा मिल जाता है, फिर भी इस कातरता के अनुभव में भी सुख है। इतना बड़ा रिडमना क्या मसार म श्रीकांत के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष का भी हुइ है? कम से कम शरत् बाबू के पाना के लिये यह प्रेमी का विडमना नइ नहीं है। प्रेम की प्रवचना, उठना भुजाना हा उनक लिए प्रम है। शरत् बाबू क उपयासा म ऐमे नायक भी हैं जो ऐमी ही परिस्थितियाँ म पढ़कर उपयास लेखक भी बन गाने हैं।

‘शुद्ध’ का नरेन्द्र, तिरक उग्रवास पर विमला श्रांस बहाता है, ऐसा ही यह है। श्राफत उग्रवास लेखक नहा जनता—आत्मस्था में एकी दा एफ राता का कमा र्ण है।

श्राफत का मन विद्वित और विद्रोह हा उठता है। इन्द्रायनि का उदता का उसे अनुभव हाता है। मनम कुद करने का इन्द्रा हाता है—प्रेम उमे गांच लाता है, परन्तु इन्द्रा का माय रूप में परिणत करने का अग्रसर आने पर प्रेक शक्ति हृदय के रसातल में कहीं छिप जाता है,—प्रेम उमे दूर ठेल देता है। परन्तु इस गार उल्दा प्रेम ने पीड़ा न छाडा। पटना से चलने पर राजलक्ष्मी भी साथ चला और उसे एक गाँव गगामाटा ले गई। परन्तु राजलक्ष्मी इश्वर के विधान का नहा मट सफना। एफ गार चाहे ईश्वर मिल जाय, श्राफान्त का मिलना अगम्भर है। राजलक्ष्मी व्यथित होकर कहता है—‘तुम्हें पाने के लिए मने विना धम विना है, उमसे आधा भा अग मगवान् के लिए करती ता अर तक शायद वे भी मिल जाते। मगर म तुम्हें न पा सती।’ श्राफान्त अमुठित स्वर से उत्तर देता है—‘न सक्ता है कि आदमा का पाना और भी कठिन हा।’ आदमा का पाना सचनुच हा और कठिन है। चरित्रहीन की किरण पुण्य का गात्र म विना मटक्ती है—यहाँ तक कि अन्त में पागल हा जाता है—निर भा उसे पुरुष नहा मिनता। मगवान् उसे मिल जाते हैं—पागलपन श्रास्तिकना म परिणत हा जाता है।

राजलक्ष्मी से दूर भागने के लिए श्राफान्त का हृदय व्याकुल हा उठता है। तर प्रेम का विचार था, तर राजलक्ष्मी का पैर महलाना मुगद लगना था, ‘मालूम हाता था कि उसकी दसा उँगलियाँ माना दसा इन्द्रियाँ की सम्पूर्ण व्याकुलता से नारा हृदय का तो कुद है सर का सब मरे इन पैरा पर ही उँडेल दे रही है।’ परन्तु अर,—‘मालूम हाने लगा कि बर स्नेह-स्पर्श अब नही रहा।’

नारी के भाग्य के साथ वैसा परिहास है, भीकान्त यह अनुभव नहीं करता कि उसके पैरों का ताप ही पहले की अपक्षा कम हो गया है, वह उँगलियों की वेदना को दोष देता है। वास्तव में नारी की वेदना उसकी उँगलियों से फूट निकलना चाहती है, व्यथा ही ज्वाला उसे भरम कर देती है परन्तु भीकान्त नारी के ही माथे दोष मत्कर अपने को निर्दोष सिद्ध कर लेता है। मनमा बैरागी 'छि छि' करने लगता है। "मेरे मन का जा बैरागी तत्राच्छत्र पड़ा था, सहमा वह चींकर उठ खड़ा हुआ वाला, 'छि छि छि'!"

अतः में राजलक्ष्मी ही तीर्थयात्रा के लिए चल पड़ती है। भीकान्त सोचता है कि राजलक्ष्मी का ऐसा भागूंगा कि फिर पन्द्रह हा में न आऊँ। छुटकारा ही प्रसन्नता में दृष्ट निश्चय होकर रहता है—'म उसे छुटी दूंगा, उस बार का तरह नहीं,—अबनी बार, एकाग्रचित्त से, अन्त करण व संपूर्ण आशीर्वाद के साथ, हमेशा के लिए उसे मुक्ति दूंगा।' वह देश छोड़कर चला जायगा। पहले उसके अदृष्ट ने उसे अपने सकल्य पर दृष्ट न रहने दिया था, इस बार वह अपनी पराजय स्वीकार न करेगा। परन्तु अदृष्ट तो अदृष्ट। स्वीकार न करने से पराजय विजय थोड़े ही हा जायगा। भीकान्त छुटकारा पाकर चल देता है। परन्तु राजलक्ष्मी ऐसा रास्ता भूलती है कि वह भटकना हुआ फिर उभी गोन म आ जाता है और राजलक्ष्मी फिर उसका मिर के वाला म उँगलियाँ करने लगता है। एक बार पुनः प्रमा-यात्रा की तैयारी हानी है। धाकात फलरुत्ते चलता है, परन्तु समा जाने के पहले फिर एक बार काशी आता है।

एक मन्ट हा ता टल। निपत्ति ता राह चलते मिल जाती है। काशा स चलना पर रल में पेंट ने मॅट हा जाता है और उममे न्याह की रात भी चल पड़ती है। पेंट से छुटकारा पाया ता धाना त के ही शब्दा में वह दूसरी पेंट के नाम म पड़ गया। वैष्णवी कमललता

में भेंट हुई। ब्रजानन्द ने उसने कितनी सत्य बात कही थी। 'अनाब देश है यह बगाल। इसमें राह चलते माँ-बढ़िने मिल जाती हैं, किसमें सामर्थ्य है कि इनमें बचकर निकल जाय ?' परन्तु ब्रजानन्द की रक्षा तो गैरए उग्र कर लेने हैं, आशान्त की रक्षा के लिए वह कवच भी नहा हैं।

कमललता की यह दशा है कि श्रीकान्त का नाम सुनकर ही उसे प्रेम हा गया है। जब हाड मास के श्रीकान्त आये, तब उसके मनोमाया का अनुमान किया जा सकता है। कमललता सप्तदश की अवस्था में विधवा हा गई थी। विधवावस्था में उसके गम रह गया था परन्तु उसका प्रेमी उसका नया हुआ। शरत् रावू की नायिकायें बहुधा बेश्याएँ, निरवाएँ, युवावस्था की दुश्चरित्राएँ होती हैं, इसलिए कि तब उनका चरित्र सुधारने का अवसर मिलना है और नायक उनके पास आकर विपत्ति का आशान्त होने पर फिर भाग सकता है। उनका चरित्र उतरल हा, उनका नागीत्व फिर उलुखित न हा,—यह बहाना सदा उसके पास रहता है। पुण्य का उदारमीनता से वे निरश हा है। मास्तर में निरशता पुरुष का है, उसको पुरुषत्व-हीनता नारी का निलङ्घन प्रमा देती है। इस निलङ्घनता का अति विजित रूप 'चरित्रहान' की स्त्रियाँ में देखने का मिलता है—जब वह उपन्द्र से खुलकर अपना प्रेम निवेदन करती है और दिवाकर को—जब हावभाव परिणाम मिलास क एक अनन्त प्रेम के राह पहलू पर बरसस एक ही पलंग पर मुलाना चाहती है और वह विनिपाता हुआ मागत हा है और फिर भी भाग नहा पाता।

जिसी तरह कमललता से छुटकारा पाकर श्रीकान्त बलकल आता है परन्तु वहाँ रावलदमा पहले स ही उसकी गट जोह रही है। रावलदमी क साथ फिर एक बार कमललता के दर्शन होने हैं। वहाँ स कमललता को छाड़कर रावलदमा क साथ गगामाटी का

यात्रा हाती है और अन्त में राजलक्ष्मी का छाड़कर एक बार फिर कमललता के यहाँ आना होता है। कमललता का वह वृन्दानन का टिफ्ट नटा देता है और आप उसी रेल में बैठ कर कुछ दूर साथ यात्रा करने के बाद सैंधिया स्टेशन पर उतर जाता है। कमललता को श्रीकृष्ण भगवान् के चरणों में आश्रय मिलता है, आश्रांत उसे अपनी कहकर अपमानित नहीं करना चाहता। और यहाँ श्रीकान्त की भ्रमण कहानी समाप्त हो जाती है। कथा का इस क्रम से सहस्र रजनी चरित्र की सीमा तक—और उससे भी आगे पहुँचाया जा सकता है। श्रमया-कमललता-राजलक्ष्मी—ऐसी नारियाँ की कमी नहीं है और प्रेम का स्वाँचने ठेलनेवाला व्यापार भी अनन्त है।

( २ )

नारी से मातृत्व की ग्योज रचपन से आरम्भ होता है और आजीवन यह जारी रहती है, प्राण रहते उसका अत नहा हाता। 'मँमली बहन' के मिशन में जैसे हम श्रीकान्त के राजलक्ष्मी का एक दृश्य देखते हैं। माँ का मृत्यु के पश्चात् मिशन का सौतेली बहन का यहाँ आश्रय मिलता है। वहाँ उसे अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं। माता का गवाया हुआ स्नेह उसे मँमली बहन हेमागिनी में मिलता है। हेमागिनी स्वयं रागिनी है, हिस्टीरिया के से लक्षण भी उसमें हैं। वह सभी मिशन का अत्यधिक प्यार करता है, कमी उसे पीटती है। मिशन का आश्रय छिनने का होता है परन्तु अन्त में हेमागिनी पति को भी छाड़कर उसके साथ चलने का प्रस्तुत हो जाती है। पतिदेव को मिशन का आश्रय देना ही पड़ता है और मिशन को मँमली बहन का मातृ स्नेह से वचित नहीं हाता पड़ता। 'मुमत्रि' में रामलाल का एना ही आश्रय

भाभा नागयना के यहाँ मिलता है। 'गम ने फिर भाभी की छाता म मुँद त्रिभा निशा। यहा मुँद ग्यकर उसने लम्बे तेरह वष रिताये हैं—इतना उडा हुआ है।' तब भना यह प्रवृत्ति कैसे छूट सक्ता है ? विनित्त ना भाँति यही भाभी रामलाल का बेता से पीटता है और अन्त में फिर उसे अपने अश्वन म आश्रय दती है। मार और प्यार—दा विराधी राता का कारण स्रष्ट है। पनि से असन्नुष्ट नारायना मातृत्व ना विकास चाहती है, रामलाल उम विकास म सहायक हाता दिसाइ दता है, परन्तु वह उसकी सदन आसक्ति का पूण नहीं कर सक्ता। दूसरे का लडका अरना कारण से लडका बनने का सुग उसे नहा दे सक्ता। इसी कारण रामलाल और निशान ना मार भा मिलता है और फिर माता जैसा प्यार भी मिलता है।

जब 'श्रीमान्त' और उडा हुआ, तब का एक क्राँती 'बडा रहन' म देखिये। सुरेन्द्र श्रीमान्त जैसा हो परमुग्यापहो है। गाने, मिलाने, मुलानि आदि क लिए भा उने एक अभिभावक चाहिये। घर पर उसका अभिभावक उसका पिमाता है, परन्तु अरय पारा की भाँति वह भा पर डाइकर कलकत्ते भागता है। यहाँ उसे चौदह वष की अरमथा म निशा हाने वाली माधरी अभिभावक क रूप में मिल जाता है। माधरी ना छागी रहन का पलने के लिए वह अथ्यापक रणा गया है परन्तु न पलने पर डाट टपट हाता है और आत्मसम्मान का रक्षा के लिए उसे घर छाड़ देना पड़ता है। रास्ते में गाड़ी ने नाचे आगो से उसे चोट आ जाती है। पिता आकर ले जाते हैं। यहाँ उसका रिवाह हा जाता है, परन्तु शायद रिवाह का दुग दूर करने के लिए वह मिशा के साथ शरच्चन्द्रनगर म पड़ जाता है। शरर उमका अरमस्थ रहता है और अन्त में घटना चक्र उसका अरमस्थता का रणापर उम माधवा नी गाद में ला पटकता है। उसी



गोद में शक्ति से सिर रखाकर वह अपने प्राण त्याग देता है। 'मानो सारे विश्व का मुँह इसी गोद में छिपा हुआ था। इतने दिनों के बाद सुरेन्द्रनाथ ने आज यह मुँह खोज निकाला है।'

देवदास की रूपा से, गोलपट के कारण, सभी परिचित हैं। जमींदार का लड़का है, तम्बाकू पीने का अभ्यास भी बचपन से है। पार्वती देवदाम से प्रेम करता है, परन्तु देवदास अनिश्चित है। पार्वती का ब्याह एक दूसरे लड़के से होने वाला है परन्तु वह स्वयं साहस करके रात की एकांत में देवदास के पास जाती है। देवदास चिंतित हो उठता है—वह न जाने किसलिए आइ है। पावती की लज्जा की कल्पना करके देवदास स्वयं टाँत हो उठता है। परन्तु प्रेम निवेदन का कार्य तो पुरुष के बाटे ही नहीं आता, शरत् बाबू के उपन्यासों में विवश होकर उसे स्त्रियों को करना पड़ता है। पार्वती उसके चरणों में आश्रय चाहता है, परन्तु देवदास रातर होकर पूछता है—'क्या मेरे सिवा तुम्हारे लिए और कोई उपाय रहा है?' माता पिता का आशुकारी पुत्र देवदास कलहसे चला जाता है। वहाँ से वह पार्वती का पत्र लिखता है कि उसने पावती को कभी अधिक प्यार नहीं किया। पावती ने ही क्या, और जिना का भी उसका कभी अधिक प्यार किया है? वही आकांत वाली परिस्थिति है—प्रेम है ही और नहीं भी। पावती का विवाह हो जाता है और देवदास चंद्रमुनी के यहाँ दारु पीना करता है। आधा सम्पत्ति वह दाँदा उड़ा देता है। राजलक्ष्मी की भक्ति चंद्रमुनी भी धर्यावृत्ति त्यागकर वैराग्य-मा ले लेती है। देवदास अपने ही पावती और चंद्रमुखी दोनों से दूर रहता है, परन्तु चंद्रमुखी एक दिन सड़क पर ग्रीध पड़े देवदास को अपने यहाँ ले आती है। उलेच में दर्द और ज्वर हो आता है और चंद्रमुनी उसका परिचय करती है। चंद्रमुनी का छोड़कर देवदास देश के अनेक नगरों में घूमता है

और अन्त में अत्यन्त अस्वस्थ टाकर वह पार्वती के गाँव का तरफ चलता है। गाँव पहुँचने के पहले ही उसकी मृत्यु हो जाती है।

‘काशीनाथ’ का जैसे विवाह होता है, वह सूत्रने लगता है। काशिका उसे पहचाने, यह कितना कठिन है—वह जानता है। उसका स्त्री उसे छोड़कर चली जाती है और तब काशीनाथ के अस्वस्थ होने पर ‘वदना’ विन्दुदामिनी उसका परिचया को आ उपस्थित होता है। ‘अनुपमा का प्रेम’ देवदाम की कथा की भाँति है। अनुपमा का विवाह एक बूढ़े के साथ होता है। वह विधवा हो जाती है और अन्त में शराबी ललित उसे आत्महत्या करने से रोकता है। ‘दपचूर्ण’ में काशीनाथ वाली समस्या है। धनी घर की शूद्र से विधवा नरेन्द्र का विवाह हो जाता है। पति-पत्नी में अनुरक्ति नहीं है। नरेन्द्र की छाती में दर्द होता है और पत्नी विमला सेवा के लिए आ जाता है। नरेन्द्र उपवासकार भी है। ‘तन्वीर’ बंगाल देश की उस समय की स्त्री है, जब वहाँ अंग्रेज नहीं आये थे परन्तु घटनाएँ और पात्र नयी तरह के हैं। राधिका चित्रकार और धनी युवती काशीनाथ में प्रेम है। प्रेम की अतृप्ति में काशीनाथ उसे गुणा करने लगती है और उस पर रुपया की नालिश कर देता है। वह सबकुछ बेचकर घर से पादित रुपय लेकर उसके सामने आता है। काशीनाथ उसे अपने घर में मुला देता है और उसका परिचया करने लगता है।

‘शुद्धाह’ के मर्दम का अचला अपना अँगूठी पत्नी देती है, परन्तु मर्दम का वह उसका बाप के सामने पहुँचते हैं, ‘क्या तुम अपनी अँगूठी वापिस चाहती हो?’ अचला मुरख कसाइ में उस रचाने का प्रार्थना करता है, मर्दम रचाने लेना है परन्तु अचला का फिर उस कसाइ का शरण में जाना पड़ता है और मुरख के पास फिर मर्दम के पास। स्थायी आश्रय दानों में से एक भाँति उस नहीं दे सकता। मर्दम जब बीमार पड़ता है तब उसके गाँव का एक

वहन मृणाल, जो अब विधवा हो गई है, उसकी देखभाल करती है। सुरेश धोरे से अचला का महिम में अलग करके अपने साथ एक दूसरे स्थान पर ले जाता है। यहाँ सुरेश का जुगार आता है और अचला उसकी सेवा करती है। मृणाल का महिम में लिए है वही अचला सुरेश के लिए। दोनों ही नारियाँ/पति से इतर प्राणियों का अपनी सेवा अर्पित करती हैं। कर्णचित् पति से निराश होने वाला ऐसी नारियाँ हैं। इन इतर पुरुषों में कुछ आशा रहती है—सेवा उस आशा का दीपक जलाये रखता है, परन्तु एक दिन वह भी बुझ जाता है। राजलक्ष्मी की भाँति वह अपने श्रीमान्त का नाम पा सकती है। सुरेश की भी छाती में दद होता है, फलैनल गरम करके अचला उसकी छाती सँभूता है और सुरेश फलैनल सन्ति उसका हाथ अपना छाती पर दबा लेता है। फिर वहाँ में चककर उसका मुँह भी चूमता है। परन्तु अचला कभी नहीं करती, योना वातचात के उपरांत वह अपने कमरे में चला जाता है। शायद वह समझती है कि शिशु की भाँति सुरेश का चुम्बन भी निष्पत्त है। सुरेश जिन भगाकर लाया था, अब उसी से छुटकारा पाने की सोचना है। कतर हाकर अचला पूछती है—“अब क्या तुम मुझे प्यार नहीं करते?” एक दिन प्रसन्नात् महिम में भेंट हो जाती है और अचला का मूच्छा आता है। सुरेश की प्लेग में मृत्यु होती है, मृत्यु के समय अचला उसके साथ जाती है। अचला अब महिम में आसरे है, परन्तु वह उसे प्रहय नहीं करता और अन्त में एक छात्रा उसे आश्रय देती है। मृणाल उसे अपने भाग्य ले जाती है।

आज्ञात की कहानी के कुछ महत्वपूर्ण अर्थों का उभरा हुआ चित्रण 'चरित्रदीन' में है। जमींदार का आचारा और आलमा लड़क का नाम इस गार गताश है। वह अपने मित्रों में शरान आदि का सेवन भी प्रयास करती है। उसका अभिभाविता का नाम सावित्री

है। वह विधवा होने के बाद अपने प्रेमा द्वारा परिवर्त्ता है। अत्र उसका सेवामरानुष्ठा सतीश म केन्द्रित है। सावित्रा का सके भवानरूप में मिर्गी का तीरा ग्राया करता है। पागम्परिक इष्या और मन्देह के कारण सावित्रा और सतीश विरुद्ध जाते हैं। एक बाग ने साथ सतीश का गाँवा शरण का सेवन प्रकृत प्रद जाता है। और जब वह अत्यन्त अन्वस्थ हो उठता है तब उसका नौकर सावित्रा को खान ले आता है। मुशील लडक का तरह सतीश सावित्रा का कहना करता है और ज्वर में वही उसका मरा करता है।

सावित्रा और सतीश के चरित्र चित्रण का पीका करनेवाला एक दूसरा चरित्र इसमें किरण का है। नाग का विरयता, खिन्नता, व्याकुलता, उसकी विविधता, प्रवृत्त रासना की पीडा—दम मारा नारसीन यातना को उसके विद्वततम रूप म शरत् गावू ने किरण में चित्रित किया है। उसके स्वामी जम नारस थे। उने दशन शास्त्र पढाते थे। ( पति-पत्नी न न्यान पर गुन शिष्या का सम्बन्ध अन्व उपन्यासां में भा मिलेगा। ) पति की बीमारी में हा वह डा० अनग से अपनी प्रेम की प्यास उम्लाती है। उपन्द्र का देवरर उसका मारी वासना उसा आर खिच जाता है। उपेद्र का दशा भ्रामन्त जैमी है। किरण उसे प्रलपूरर राकना चाहती है, कहता है, 'पुरुष को इतना लाना नहीं मोदती।' परन्तु शरत् गावू ने उपन्यासों में लाना पुरुषों का भूषण है। उपन्द्र उमने किग्य प्रनार पाया धुटा लेता है। बैरागा सतीश का यह भाइ मानता है, उमने कमा उसन का आशा नहीं रगी। उसका वासना का दूसरा केन्द्र दिवाकर बनता है। दिवाकर जब उसने अक्षान्ति परिहास स सिहर उठता है, तब न कहती है कि लगाने का काइ बात नहा, यह ता देवर-भामा का स्वामाविक सम्बन्ध है। अन्त म किरण दिवाकर का कमा ल चलती है। नारी पुरुष का घर से निकाल लाता है ( भीकान्त में अभवा

भी रोहिणी सिंह का इसी भाँति निकाल कर उमा ले जाता है।) जहाँ पर जब वह दिवाकर से पूछती है, क्या मुझे प्यार करते हो तो दिवाकर राने लगता है। इसके पश्चात् तिम दृश्य का वर्णन है, उसका उल्लेख अनावश्यक है। अपनी वीभत्सता और भड़पन में वह अद्वितीय है।

दिवाकर का ब्रह्मचर्य नष्ट करने पर किरण का खेद होता है,— उस खेद की ऐसी प्रतिक्रिया होती है कि उमा म एन साथ छ महीने रहने पर भी, दिवाकर से मांग खान पर भी, उसके बार-बार प्रेम-निवेदन करने पर भी, किरण उसे पास नहीं पकड़ने देती। सतीश किरण और दिवाकर का ले जाता है, किरण पागत हो जाती है और अंत में उसकी निरलता उसकी अतृप्ति का नष्ट कर देती है। पुष्य का न पाकर वह भगवान् को पा जाती है। किरण की कहानी पुष्य का पुष्पाथनीनता का कहानी है, श्रीमान्त की कहानी की अपक्षा उसमें अति कडवापन है।

( ३ )

‘पथ क दावेदार’ शब्द मात्र का राजनीतिक उपयोग माना जाता है उसमें राजनीतिक समस्याया पर बहुत-सा वाद विवाद भी है। परन्तु उसके मुख्य पात्र अपूर्व और मय्यसाची वही पुराने भ्रान्त और वज्रानन्द, सतार और उपद्रु आदि हैं। अपूर्व में भ्रान्त की अनिश्चितता है और मय्यसाची म वज्रानन्द का दृढ़ता और कतव्यपरायणता है। मय्यसाची और वज्रानन्द भ्रान्त से भिन्न नहीं हैं। जो कुछ भ्रान्त हाता चाहता है और है नहीं, उसी का चित्रण इन विरागियों सपासियों में किया गया है।

अपूर्व तथा उसके साथिया म विदेशी शासन क प्रति तिस प्रकार पूर्ण उत्पन्न हानी है, उसका उमा वचनानापन और उनके

स्तिष्क की अपरिपक्वता स्पष्ट क्लृप्त होती है। अपूर्ण को भी दिवाकर प्रादि की भाँति याना करनी पड़ती है। उसके कमरे के ऊपर लकड़ी की छत से एक देसी इसाइ साइब पानी डालता है और यहीं से अपूर्ण के विद्रोह का सूत्रपात होता है। इसाइयों का वह शासकवर्ग के साथ सम्मिलित करके शासकों के प्रति घृणा से जल उठता है। अपूर्ण एक पाक में गोरों का पेंचपर बैठ जाता है, कुछ मारे आकर उसे ठोकर मारकर निजाल देने हैं। वह उन्हें मारना बहुत—वह कश्मीरी जवान है—परन्तु लोगों ने परह लिया। वह स्टेशन मास्टर से अपना दुःख कहता है और पाठ पर बूट का दाग दिखाता है। स्टेशन मास्टर चपरासी को उसे निजाल देने की आज्ञा देता है। इस बार स्टेशन मास्टर के सामने उसे पकड़ने-वाला काइ नहीं था, परन्तु सौभाग्य से उसे बच आया ही नहीं।

क्रांतिकारी सत्यसाची मल्लिन का देखिये। “वह खाँसते-खाँसते सामने आया। उम्र तास-बत्तीस से ज्यादा न होगी, टुल्ला-पतला कमज़ार आदमी था। तला-सा नाँसी के परिधम से ही वह हाँपने लगा। देगन में यह नहा मालूम होता था कि उमकी सभार की मियाद बयादा दिन बानी है,—मातर के किसा एक दुर्निवार राग से जैसे उसका सारा शरीर तेज़ा से चय की तरफ दौड़ रहा है।” देवदास पर भी ये शब्द लागू होते हैं। केवल देवदास में मित इस व्यक्ति में असाधारण मानसिक दृढ़ता ही नहीं, उसकी सूची इच्छियों में दानव का-सा अकार रत्न भी है। देवदास यदि अपना एक आदर्श चित्र खींचे तो वह सत्यसाची का ही। सत्यसाची के आँगूठे में गाँजा बनाने का दाग भी है। आदर्श चित्र होने के कारण उसे एक स्थान पर ‘अतिमानव’ कहा गया है।

सत्यसाची के क्रांतिकारी बनने का इतिहास मनोरञ्जक है। उसके चचेरे भाई का डाकूझाँ ने मार डाला था, माइ बड़क

चाहता था, परन्तु मजिस्ट्रेट ने नहीं दी, इसलिए भाई अंग्रेजों से बदला लेने का उसे सदेश दे गया। यही उसके क्रांतिकारी जीवन का रहस्य है। सब्यसाची की अति मानवता उभारने के लिए शरत् बाबू ने एक उपाय से काम लिया है। उसके साथी उस पर अगाध श्रद्धा रखते हैं और भारती की श्रद्धा कविता में फूट कर उड़ा करती है। देश विदेश में वह घुमाया गया है, सनयातसेन जैसे व्यक्तियों से मिला है, उसके व्यक्तित्व को रोमांटिक बनाने में काइ बसर नहीं रखी गई। उसे देखकर एक मनुष्य की जिज्ञासा सहज ही सन्न हो उठती है। चारा और भय और निपट का यातावरण उसे और आकषक बना देता है। समाज से भी उसे सहानुभूति नहीं मिलती, आत्माहुनि के लिये उसे धृष्टा मिलती है। एक ओर वह है, दूसरी ओर ससार है। बायरनिश हीरो के अनेक गुण उसमें विद्यमान हैं। वह समिति का नेता है और उसके शब्द ही नियम हैं। बहुमत अपूर्व को दब देने के पक्ष में है, परन्तु वह उसे क्षमा करता है और विराधी बहुमत उसका कुछ रिगाड़ नहीं सकता। उसके साथी समझते हैं कि वह सब जानता है, सब कर सकता है। उसकी विद्या, पांडित्य, बल, बुद्धि सब अगाध है।

एक व्यक्ति को अतिमानव के रूप में चित्रित करने का कारण शरत्चन्द्र का मध्यवर्गीय व्यक्तिवाद ही है। सब्यसाची किसानों और मजूरों के आन्दोलन में विश्वास नहीं करता, उसका विश्वास मध्यवर्ग की क्रान्ति में है। वह शराबी शशि से मध्यवर्ग की क्रान्ति के गीत गाने को कहता है। (जैसा कवि है, वैसी ही क्रान्ति भी होगी।) वह समझता है कि शिक्षित मद्र जाति सर्वाधिक लाञ्छित है। वह वर्गसघप से भय खाता है। वह मजूरों में जाता है तो क्रान्ति का निष वैलाने के लिए—मध्यवर्ग की क्रान्ति का निष वैलाने के लिए। शायद वह समझता है कि मध्यवर्ग की क्रान्ति में

मनूरो में महत्वपूर्ण सहायता मिल सकती है। और अन्त में बढ़कती प्रिन्ली और उससे पानी में सव्यसाची सिंगापुर के लिए पैदल चल देता है। पास ही वहाँ प्रिन्ली गिरती है और प्रिन्ली का आभास उसके साथियों को उसका अन्तिम दशन कराया जाता है।

शरत् बाबू ने प्रमा के कुलियाँ की माँ की 'चरित्रदान' में दी है। थोड़ी-सी प्रेक्षा को कल्पना के सहार प्रदानर उन्होंने 'पथ के दावेदार' में कुलियों का चित्रण किया है। कुलियों में जिस वीमत्स अनाचार और व्यभिचार प्रियता के दर्शन होते हैं, उससे सव्यसाची का मध्यवर्ग की भ्रान्ति में विश्वास उचित जँचने लगता है। प्रमा के कुली यदि अगोरे नहीं हैं, और उनमें देश के अकुलियों की वर्गगत प्रियताओं का प्रभाव नहीं है तो कहना पड़ेगा कि उनका चित्रण एकांगी है। फिर मध्यवर्ग के जो नमूने शरत् बाबू ने अपने उपन्यासों में रखे हैं, उनसे कौन-सी भ्रान्ति की सम्भावना पैदा होती है? वे सारा भार स्त्रियों का देकर वैराग्य ले लें, तो एक भ्रान्ति मल हो जाय। 'पथ के दावेदार' में अपूर्व का चरित्र ही लीनिये। प्रम का वही पुराना व्यापार यहाँ भी है। अपूर्व की निष्ठापरता पर भारती मुग्ध होती है, एकदम कमरे में भारती के साथ अपूर्व की कपट निद्रा का अभिनय भी होता है। अपूर्व सन्यासी हो जाता, परन्तु माँ के कारण नहीं होता। जब माँ नहीं रहती, तो शायद भारती के कारण सन्यास नहीं लता। अपूर्व जब देश लौटता है तब भारती की मनवेदना के वही पुराने चित्र देखने का मिलते हैं। सव्यसाची भी भारती की ओर रूचिता है, उसे बहन, जानी, माँ कहता है। भारती ने जीवन में जो सन्तोष पाया—जीनी, माँ, बहन बनकर—वह उसके एक वाक्य में ध्वनित है—'यदि भ्रमर में मधुसूच्य करने की शक्ति नहीं, इसके लिए लड़ा किससे जाय!' वह और आगे बढ़कर सव्यसाची से कहती है—'अच्छा मद्रया, मैं अगर तुम्हारी



सुमित्रा होती, तो क्या तुम मुझे भी इसी तरह छोड़कर चले जाते ?' परन्तु सब्यसाची का हृदय पत्थर का है, वह सुमित्रा, भारती सभी का छोड़कर जा सकता है, नारी जाति का शरत् के पुरुषों के प्रति यह वही पुराना अभियोग है। सब्यसाची भारती को सावधान कर देता है। 'भारती, अब मुझे तुम अपनी ओर मत लौंचो।' और भारती रोती हुई साँस छोड़ स्तब्ध पैंटी रहती है। भारती न अपूर्व को पा सकती है, न सब्यसाची को, जैसे राजलक्ष्मी न श्रीकान्त को रोक सकती है, न वज्रानन्द को। केवल गंगा ही भारती के हाथ आता है। राने का व्यापार शरत् गङ्गा के उपन्यासों में चिरन्तन है। नितने आँसू उनकी नारियाँ गिराती हैं, एकर होने पर उनसे एक ताल भर पानी। रोना, राना और फिर राना,—मिले तो राना, निछुड़े तो राना। राजलक्ष्मी ने झूठ कहा था—'तुमने मेरी आँसों में जितना पानी रानाया है, सौभाग्य से सूर्यदेव ने उसे मुला दिया है' नहीं तो आँसुओं के जल से एक तालाब भर जाता। शरत् गङ्गा के नायकों की पुरुषार्थ-हीनता इस अभ्युप्यापार से यत्किञ्चित् तृप्ति लाम करती है।

शरच्चन्द्र के पात्रों की जो विशेषताएँ हैं, उनके बार-बार दोहराये जाने से उनके उपन्यासों में एकरमता या जाना स्वभावित है। उनके उपन्यास घटना प्रधान नहीं हैं, कुछ विशेष परिस्थितियाँ प्रस्तुत की जाती हैं जिनसे पात्रों में एक विशेष काटि के मनाभावों की सृष्टि होती है। इन मनाभावों का चित्रित करना ही शरत् गङ्गा का ध्येय है। पात्रों की समानता के साथ उनके मनाभावों में समानता है, समान परिस्थितियों में जा उबिता पूटती है, यह भी समान है। उनके पात्रों की पुरुषार्थ-हीनता से नारी के नयन अभ्रुनिकर बन जाते हैं, इस अभ्युप्यापार को उपन्यासों से निकाल दाखिये, तो उनकी जान निकल जायगी। घटनाओं का उचित संगठन शरत्

बाबू के उपन्यासों में नहीं है, जैसे उनके नायक लक्ष्यहीन हैं, वैसे ही घटनायें भी एक लक्ष्यहीनता के साथ, बिना क्रम के घटती सी जान पड़ती हैं। धीमात की तो भ्रमण-कहानी है ही, 'चरित्रहीन' में भी अलग-अलग अनेक कथानक हैं और कथा का विकास अच्छा नहीं हो पाया। 'चरित्रहीन' की एक महत्वपूर्ण कथा किरण की है, परन्तु उसका उपन्यास के नायक सतीश से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। उनके छोटे उपन्यास अधिक सुगठित हैं, परन्तु इनकी चित्र भूमि इतनी सकुचित है कि ये न कहानियाँ रह जाते हैं और न उपन्यास।

शरद्व बाबू के उपन्यासों को रस लेकर वही पढ़ सकता है जिसे प्रेम के अधुन्यापार में विशेष आनन्द आता है। समाज के आवारों, निकम्मों, अतृप्त आकांक्षावाला व्यक्तियों को शरद्व बाबू से क्या सहानुभूति मिलती है, उपन्यास के नायकों में अपनी छाप देखकर वे गद्गद् हो उठते हैं, परन्तु समाज की प्राणशक्ति, उसके विकास की प्रेरक शक्ति इस व्यापार की विरोधिनी है, शरद्व बाबू उससे दूर हैं। उनके पास अपने आपको नष्ट करनेवाली शक्ति है परन्तु सृजन की, विकास की शक्ति नहीं है। उनके नायक अपनी प्राणघातक वृत्तियों से त्रस्त होकर नारी के आँचल की छाया ढूँढते हैं, सत्यवादी भी अपवाद नहीं है। 'अब भी ऐसे लड़ने इस देश में पैदा होते हैं भारती, नहीं तो पाकी जिन्दगी तुम्हारे आँचल के नाचे छिपे छिपे मिता देने को राजी हो जाता!' आँचल की छाया या सभार में सेवा काम,—जीवन-साधन के ये दो मार्ग हैं। आँचल की छाया में प्राणघातक वृत्तियों से रक्षा नहीं होती, आँचलवाली स्वयं रक्षित नहीं है, वह स्वयं आश्रय चाहती है, वह स्वयं मूर्खों के राग से पीड़ित है। सेवा मार्ग बहुधा आँचल में आश्रय न मिलने की प्रतिनिधा होता है। गद्गद् में सुरेश को देखिये,

जब भी अचला से प्रेम नहीं पाता, अथवा निकट रहकर भागना चाहता है, वह एक विदित की भाँति प्लेग हैजे में जाकर लोगों की सेवा करने लगता है। सतीश न श्रीपहालय का भी यही रहस्य है। सन्यसाची, सुमित्रा और ब्रजेन्द्र न रूहानी भी कुछ इसी प्रकार की है। शरत् बाबू के नायकों की लोफ सेवा में एक प्रकार की विद्विषता है, अपने से बच निकलने की आकांक्षा है। लोफसेवा अथवा आचारापन दानों का ही उद्गम पुण्य की नारी के समीप असमर्थता है। इसी कारण उस सेवा के पीछे देशभक्ति और सामाजिक आदर्श नहीं है। वह अपनी प्राणघातक वृत्तियों से बचने की, एक आशय का, चाह है।

शरत् बाबू के पात्रों को बहुधा ईश्वर पर विश्वास नहीं होता,— श्रीकान्त की प्रभया का, चरित्रहीन की किरण को, यदाह के, सुरेश का, परन्तु वे समाज के पुरातन आदर्शों पर भक्ति रखते हैं। किरण किसी संसार मानती है ता महाभारत में अथ विश्वास रखनेवाला सुराला से। इसका कारण यह है कि उनका नायक-नायिकाओं का समाज वे प्रति विद्रोह एक प्रकार को उद्धूलता है, उसमें रचानात्मक कुछ भी नहीं है। इसलिये तिन सामाजिक आदर्शों का आचलापन दिखाया गया है, उन्हीं में अथ भक्ति भी प्रदर्शित की गई है।

शरत् बाबू की व्यक्तिगत चारित्रिक विशेषताएँ एक धस्त हाती हुई भद्रलोक की, "परमॉनेट सेटलमेंट" की सभ्यता से मेल खा गई था, दाना म ही सांपातिक कीटाणु अन्ना व्यवकारी कार्य पूरा कर रहे थे। यही उनकी लाकप्रियता का कारण हुआ। परन्तु युग का आदर्शकलाओं की पूर्ति करने वाले प्रकारकामा भारतीय साहित्य का देने के लिये उनके पास रचनात्मक कुछ भी नहीं है। धग-सपर्य

का गति देने किंवा समाज के पुनर्निर्माण में सहायता देने को उनके पास कोई सन्देश नहीं है उनका साहित्य एक व्यक्ति को केन्द्र बनाकर उसके चारों ओर घूमता है और वह केन्द्र असमर्थता का, पुरुषार्थहीनता का केन्द्र है। इस अक्षमता का एक मनोवैज्ञानिक मूल्य हो सकता है, परन्तु सामाजिक दृष्टि से उसका मूल्य नहीं के बराबर है।

दिसम्बर '४०

## नजरूल इस्लाम

ख़ादिरनाथ ठाकुर के नाम के बाद हिंदीभाषा बँगला कवियाँ में नजरूल इस्लाम के नाम से ही अधिक परिचित हैं। उनके 'विद्राही' की आरंभ की पत्तियाँ,

'बल वीर,

बल उन्नत मम शिर !

शिर नेहारि आमारि, नतशिर आइ शिखर हिमाद्रि !'

पूरी कविता पढ़ने के पहले ही कई बार सुनने को मिली थी और बंगाल में शायद ही कोई शिक्षित व्यक्ति हा जो उनसे अपरिचित हो। इस गीत की लोकप्रियता का कारण यही था कि उसमें बंगाल के आतंकवादी चरित्र का एक अभीष्ट व्यंजना मिली थी। इस भावुकता का संबन्ध उस रहस्यवाद से न था जिसकी अन्त साधना ख़ादिरनाथ की गीताजलि में स्फुरति हुई है, उस प्रेम की भावुकता से भी नहीं जो बँगला रेकाडों में सुनने का मिलती है, यद्यपि नजरूल इस्लाम का इन दोनों से भी यथष्ट संबन्ध रहा है, वरन् यह वह भावुकता है जो बंगाल के निम्नवर्गियों के त्याग-निष्ठा और सेवापरायणता में प्रकट हुई थी। बँगला साहित्य में, जहाँ एक ओर प्रेमियों का करुण रुदन और गरम उर्साएँ हैं, वहाँ दूसरी ओर त्याग की उनकी उदात्त भावना भी है जो प्राण देने से भी तृप्त नहीं होती। भद्रलाक के चरित्र की ये दागा विशेषताएँ कवि नजरूल में हैं, इसके साथ ही उनका मुसलमान होना भी उनकी कविता में पूर्ण रूप से प्रकट है। उनका मुसलमानपन उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का एक अनिवार्य अंग है और उसके बिना

उनकी कविता रचना में भी नहीं आ सकती। यद्यपि उन्होंने हिन्दू, मुसलमान, इसाइ, सभी की धार्मिक गाथाओं से अपने प्रतीक चुने हैं, और हिन्दू गाथाओं से सब से अधिक फिर भी इनका उपयोग में लाने वाला उनका एक अहिन्दू मुसलमानपन है, जो उन्हें बंगाल के अन्य कवियों से अलग रखता है। प्रतीकों में ही नहीं, अपनी भाषा भी कवि ने बहुत कुछ आप गयी है, जो बंगाल के साधारण जनता की, वहाँ के मुसलमानों की माँ, माया से भिन्न है। उर्दू के नए वृत्तों का बंगाल में उन्होंने प्रयोग किया है जैसे माइकेल मधुसूदन-दत्त ने अंग्रेजों के रूपों को अपनाया था। नजरुल इस्लाम की श्रेष्ठ कविता में हिन्दू और मुसलमान सृष्टियों का विचित्र सम्मिश्रण है और इसलिए बंगाल के कवियों में उनका अपना एक स्थान अलग और निराला है।

अपनी इस एक विचित्रता के होते हुए भी नजरुल जनसमुदाय के कवि हैं जिस प्रकार बंगाल का काइ और सामयिक कवि नहीं है और जनसमुदाय में भाव्य युवकों के और युवकों में छात्रवर्ग के काव्य हैं। भावुक युवकों में जो असहिष्णु उद्वेग और प्राणदान करके शांति से शांति काय गमाव करने की आकांक्षा रहती है, उसे कवि ने भली भाँति अपनी कविता में व्यक्त किया है। 'छात्रदलेर गान' में स्वभावतः उसी भावुकता को स्थान मिला है, जिसके लिए 'विद्रोही' प्रसिद्ध है। भूल करने के लिए, प्राणदान करने के लिए, यहाँ तीव्र पिपासा है, आँखों से बुद्धिमान लोग अपनी राननीति बगारते आ रहे हैं, कब तक उनका आचरण देखा जाय। 'छात्रदलेर गान' में यही असहिष्णुता है, किसी भी प्रकार लक्ष्यविद्धि की कामना, जीवन की सार्थकता, जीवन की संपूर्णता इसमें है कि अपना रक्त बहाकर लक्ष्य को दूसरों के लिए सुनिश्चित कर दिया जाय।

‘समाह जलन बुद्धि जोगाय  
 आमरा करि भुल ।  
 सावधानीरा बंध पाँचे सब  
 आमरा भाँछि कूल ।  
 दाहन राते आमरा तरुन  
 रत्ते करि पथ पिछल ।  
 आमरा द्वावदल ॥’

रक्त से पथ पिच्छल करने की भावना नज़रूल में सर्वत्र विद्यमान है और इसीलिए उनके विद्रोह में भूल करना, विचार के आगे भावना को श्रेय देना अनिवार्य है। ‘विद्रोही’ में अनेक उपमानों द्वारा उन्होंने यही उच्छृंखल विद्रोह व्यजित किया है। युवक के लिए कर्म नशा है, किसके लिए हम जूझ रहे हैं, जूझने पर उसका क्या परिणाम होगा, इन सब बातों की उतनी चिंता नहीं है। इसीलिए यह विद्रोहा ‘दुर्निनीत’ ‘वृथास’ ‘उच्छृंखल’ ‘महामारी’ आदि भी है, उसे ध्वंस से अधिक माह है, सूतन से कम। शांति का परिचय जा नशा में मिलता है वह सृष्टि में नहीं, और सृष्टि के लिए जा धैर्य चाहिए उसके लिए कुर्बत जिसे है? इसीलिए नज़रूल की कविता की तरह में जो जीवन दर्शन मिलता है वह अराजकता की आर से जागेराला है, और ऐसी अराजकता, जैसा कि नेता लोग बार-बार समझा चुके हैं, जो जिंसा जाति के राजनातिक जीवन के रचपन का सूचित करती है। नज़रूल की कविता युवकों की ही कविता नहीं, यह उगाल के राजनीतिक जीवन के जीवन को कविता है। फिर भी वह विकासपथ की एक मज्जिल है और इसके राह वह कविता आनी चाहिए जा विचारों से अधिक पूरा, भावुकता की मात्रा कम करती हुई युग की प्रमुख आविष्कारों वृत्तियों का व्यजित कर सक।

‘भाम्यनादो’ ‘इशरर’ ‘मानुष’ ‘नारा’ ‘कुलि मजुर’ आदि नज़रूल

की अन्य कविताएँ हैं जहाँ साम्यवाद के आधुनिक विचारों का प्रतिपादन किया गया है, परंतु इनमें कवि की प्रतिभा का स्फुरण नहीं हो पाया। विचार की गरिमा भी इनमें नहीं है जो इन्हें साधारणता की सतह से ऊपर उठाकर कविता का रूप देती। इसका कारण यह है कि नज़रुल के कवि को अराजकता से सहज सहानुभूति है, लिखने का वह साम्यवाद पर भी कविताएँ लिखता है, परंतु यहाँ उद्भ्रांति, उद्वेग, रक्तपात की गुनाहश शून्य है। उसकी भावुकता ठट्ठी ही पढ़ी रहती है, सिद्धांत उसमें लौ नहीं उठा सकते।

नज़रुल की प्रेम संबंधी कविताओं में एक निराश प्रेमी का चित्र हमें मिलता है जो पहले-पहल उद्वेग विद्रोही के चित्र से मिलकुल उलटा जान पड़ता है, जब तक हम यह नहीं समझते कि इस निराश प्रेम के कारण ही वह विद्रोह इतना उद्वेग दिखाई देता था।

‘विद्रोही’ के कुछ उपमान चित्र पहले विचित्र मालूम होते हैं। वह कुमारी को बधन-शान बेणी है, पाइशी के हृदयकमल का उद्दाम प्रेम है, कुमारी का प्रथम घर-घर स्पर्श है आदि। साथ ही वह उदासी से उमन मन है, पथिक की वचिंत व्यथा है, अभिमानी हृदय की कातरता भी है। और कविता के इसी उद के अंत में वह कहता है,

‘आमि तुरीयानन्दे छुटे चलि ए कि उन्माद, आमि उमाद !

आमि सहसा आमारे चिनेट्टि, आमार खुलिया गियाछे सत्र बाँध !’

वचिंत की व्यथा और कातरता इस तुरीयानन्द और उमाद का प्रेरणा देती है, इसलिए मर मिटने का साध सबसे आगे है। बिना मिटे अभिमानी हृदय की यह व्यथा मिट नहीं सकती। ‘अभिशाप में कवि अशा प्रिया मे कहता है कि वह उसका मूल्य उसकी मृत्यु के बाद ही पहचान सकेगा और तब व्यथ ही उसका पार करने चाँहूँ रहाएगी। मरु, कानन, गिरि र” गोनेी परनु



अपने प्रेमी को वह तन न पा सकेगी। 'व्यथा निशीथ' में वह अपनी वेदना छिपा न सकने के कारण अकेले विस्तर पर पड़ा आसू बहाता है।

'मम व्यर्थं जीवन-वेदना  
एह निशीथे लुप्तते नारि ।  
ताह गोपने एकाशी शयने  
शुधु नयने उयले वारि ।'

हिंदी की कुछ कहानियों में जहाँ क्रांतिकारियों का जीवन अकित किया गया है, बहुधा निराश प्रेम का भी उल्लेख किया गया है। नज़रुल इस्लाम की कविताओं में यह निराश प्रेम पदले एक बाहरी वस्तु सा मालूम होता है, वास्तव में अराजक विद्रोही और निराश प्रेमी दोनों एक ही व्यक्तित्व के अंग हैं।

बँगला का आधुनिक काव्ययुग रवीन्द्रनाथ का युग है। शायद ही किसी कवि पर उनका प्रभाव न पड़ा हो, यह प्रभाव नज़रुल इस्लाम पर भी पड़ा है। रहस्यवाद को नज़रुल ने कहीं-कहीं अपनी प्रतिभा से अराजक बना दिया है जैसे 'आज सृष्टि सुखे उल्लासे' में हँसी, रोना, मुक्ति और बंधन सब साथ ही साथ आते हैं। अन्यत्र, दूर के बंधु का स्वर सुनने में कवि का आवेग मद पड़ जाता है और कविता निर्भीक सी रह जाती है। 'दूरेर बंधु' में जब कवि पूछता है,

'बंधु आमार ! येके येके कोन मुदुरेर गिजन पुरे  
डाक दिये जाआ ब्ययार सुरे ?'

तब वह अपने विद्रोही व्यक्तित्व की वास्तविकता से दूर रुढ़ि का अनुक्रमण करता ही रह जाता है।

वृत्तो में, छंदों के गठन में, कविता की विभिन्न व्यंजनाप्रणालियों में नज़रुल इस्लाम ने नए नए प्रयोग किए हैं। यह प्रसिद्ध है कि बँगला में उदोने उदू की शक्तों का प्रचार किया है। उनके

गात रिकाइों में भी लोकप्रिय हुए हैं। गीतों में थोड़ा-सा विदेशीयन का मल आकषण हा, परतु अन्य बगाली गातों से उनमें कोई विशेष मौलिकता नहीं है। इनका प्रिय अधिकतर निराश प्रेम है, कवल गुल और बुनबुल का यत्र तत्र अधिक समावेश हुआ है। पहले का करिताआ में उपमान-चित्रों का जा निरालापन है, वह उर्दू के रुद्रिचित्रों के बुनबुलेपन में खा गया है। 'सिन्धु शोषक करिता उन्हाने आड के रूप में लिगी है, इसका रूप कुछ कुछ ग्वादनाय के 'बैशाग' 'शाहजहाँ' आदि से मिलता है। अपना भावुकता जो समेटकर कवि ने उसे एक सयमित सँचे में ढालने की काशश का है परतु उस सँचे का दर्शन करते ही वह भावुकता न जाने कहाँ काफूर हा जाती है। न छोटे छोटे गीतों में, न लंबी कविताओं में, प्रत्युत् कोरखा में, लिरिक करिताआ में नज़रुल इस्लाम को सवायिक सफनता मिली है। 'विद्रोह' लगी कविता है और कुछ अशों का छोड़कर पूरा सफल नहीं कहा जा सकती। कवि क लिए अधिक विस्तार हाने से उसकी भावुकता का दम भग जाता है, सकोच हान पर उमर पर भी नहीं फँन पाते। करिता इतनी लगी हा कि उठान के साथ आवेग का फनन हुए रिना वह अत तक निम जाय, जैसे 'छानदतेर गान' अथवा 'विदाय बेलाय'। नज़रुल की करिताओं का प्रारम बहुधा बटा हा प्रामावोत्पादक हाता है, इतना कि अत तत्र उस प्रभाव को निमाना कठिन होता है। इनके प्रारम में किसी चित्र या भाव का अचानक काव का बचल कर देना खूब व्यजित रहता है। 'सध्यातारा' का आरम्भ इसी प्रकार है —

'धाम्पापरा सादेर घरर बड तुमि भाई सध्यातारा ?  
तामार चोखेर दृष्टि आग हराना कान मुगेर पारा ॥'

इसी तरह 'आज सृष्टि-मुखेर उल्लासे' में,

'आज सृष्टि-मुखेर उल्लासे

मोर मुख हासे मोर चार हासे मोर टंग्रगिये पुन् हासे  
आज सृष्टि मुखेर उभासे ।'

नज़दल व अनेक गीतों का विशेषता यह है कि वे एन से अधिक व्यक्तियों द्वारा गाये जाने के लिये हैं, उनका सगंध प्रिय और प्रिया के ही काना से नहीं है। मैगला में ऐसे गीनों की कमी नहीं है जिनमें प्रेमी प्रेमिका ही प्रधान हैं और नज़दल इस्लाम ने स्वयं उनकी छरया वृद्धि की है। अतः इन कोरस गीतों की अपनी एक अलग महत्ता है। 'छानदलेर गान' 'चल चल् चल्' आदि इसके उदाहरण हैं। कमालपाशा वाली कविता म सैनिका का लेफ्ट राइट, लेफ्ट राइट, दुरें बोलना, उनका विनयकृता प्रादि भी अंकित किया गया है। सबत्र समान सफलता कवि को नहीं मिली, रौद्र और वीर से सहसा हास्य की आर फिसल जाना उसके लिये असाधारण नहीं है। नीचे के एक उदाहरण से ज। कमाल वाली कविता से लिया गया है, यह स्पष्ट हो जायगा।

'साब्बास भाइ' साब्बास दिइ, साब्बास तोर शमशेरे !  
पाठिये दाल दुश्मने सच जमघर एम्दम-से रे !  
बल् देगि भाइ बल् हौं रे !  
दुनिया के डर करे न तुर्गेर तेज तलोपारे ?  
( लेफ्ट राइट लेफ्ट )

खुन किया भाइ खुन किया !  
बुज्दिल ओद दुश्मन सच निल्युल साफ हो गया !  
खुन किया भाइ खुन किया !  
दुर् रो हा !  
दुर् रो हो !

दस्तुगुलोय साम्लाते जे एगनि दामाल कामाल चाइ !  
कामाल दूे कामाल किया भाई !

होही कामाल तूने कामाल किया माइ ।

(हवलदाग मेजर—सावास् सिर्पाद लेफ्ट राइट लेफ्ट !) इत्यादि ।

समूह के हुमुलशब्द को व्यक्त करते हुये कवि यथार्थ के इतना निकट पहुँच जाता है कि कविता अपनी भव्यता खोकर टिछला और हान्मूलक हो जाता है ।

नज़रूल इस्लाम की कविता का रहस्य अतिशयोक्ति है, उनकी सबसे मुदर पक्तियों में भाव अतिरन्ध्र होकर आते हैं । विद्रोही का उन्नत शीश, हिमालय के शिखर के समान, एक उदाहरण है । दूसरा 'चल चल चल' में देखिये ।

उधार दुआरे हानि आनात  
आमरा आनिन राहा प्रमात,  
आमरा दुटाव तिमिर रात,

साधार पिप्याचल ।

उषा का द्वार तोड़कर रगीन प्रमात लाना और साधा के पिप्याचल को तोड़ना उसी अतिरन्ध्र शैली के अंतर्गत है । इसी प्रकार 'छानदत्तर गान में

'दाहन राते आमरा तरुन  
रक्ते करि पय पिछल !'

अतिरन्ध्र भाव धारा के साथ ये चित्र ऐसे मिल जाते हैं कि उनकी असाधारणता प्राय छिपा रहती है । केवल जब उनकी भर-मार हो जाती जैसे 'विद्रोही' में, या जब वे भावना सात के किनारे शिलाग्रह-से अलग पड़े हुये दिखाई देते हैं, तब वे अनुपयुक्त-स सटकते लगते हैं । सफल कविताओं में वे स्पष्ट और भाव को उभारने वाले होते हैं । फिर भी नज़रूल की सभी कविताएँ इन अतिरन्ध्र चित्रों पर निर्भर नहीं हैं । उनकी जड़ में वह अराजकता और उधृ-खलता है जो सहज ही ऐसे चित्रों से मैत्रा रमती है । उनकी कविता

का दाप यह है कि बहुधा पैलती चली जाती है। 'निद्रोही' का अतः तन हाता है जब पाठक पन्ते पन्ते तग आ जाता है और चित्रों की असाधारणता उनके बाहुल्य के ही कारण प्रभावहीन हो जाती है। जहाँ आवेग थोड़ा सममित रहता है और चित्र भाव के अनुकूल ही आते जाते हैं, वहाँ 'काँडारी हुशियार' की भाँति कविता सधी और सफल निकलती है। नज़रुल इस्लाम का ध्येय विचारकों को अपनी मेधा से चमत्कृत करना तहाँ रहा है, कविता की सूक्ष्म परत करने वाला का प्रसन्न करना भी शायद तहाँ, उनका ध्येय साधारण जना के हृदयों का आदोलित करना रहा है और इसमें उन्हें यथेष्ट सफलता भी मिली है। आज का जनसमुदाय दस वर्ष पहले के समुदाय से भिन्न है, इसलिये नज़रुल की कविता आज की कविता कहकर आदर्श रूप में सामने नहीं रानी जा सकती। फिर भी इस दिशा में आगे बढ़ने के इच्छुक कवि यदि उनकी कृतियों का अध्ययन करेंगे तो उन्हें अपने कार्य में सहायता ही मिलेगी और ये लोग भारतीय कविता के क्रम की भी रक्षा कर सकेंगे।

( दिगम्बर '३८ ) -

## ब्रह्मानन्द सहोदर

( १ )

समाप्त म एने लागी ना कमा नहीं रहा ना विषय चिन्तन द्वारा ब्रह्मानन्द प्राप्त म विश्राम रगते हा। भारतवर्ष क अनेक विद्वान् अरनी आध्यात्मिकता पर मन करने पुर्न आर पश्चिम का दो सम्प्रतियों का उल्लेख करते हैं। रास्तर में यह आध्यात्मिकता पश्चिम क लिए अनहाना नहा है। प्लेटो ने सौन्दर्यवाद का सिद्धान्त चलाया था कि सुन्दर रस्तु का चिन्तन करने मे हम एक अर्थात् सौन्दर्य का आर जाते हैं आर इस प्रकार हम सत्य, शिव, सुन्दर का एक साथ ही दशन हा जाता ह। यहाँ के साहित्यशास्त्र-निमाताआ ने कहा कि यद्यपि साहित्य में प्रथम रहता है परन्तु जब उसका रस में परिष्कार हाता है ना उसका आम्वाद अनीकित हाता है। इसलिए रस ब्रह्मानन्द महादर है। ब्रह्मानन्द से चाहे केवल मात्र मिले परन्तु ब्रह्मानन्द सहोदर ने धम अथ, राम, मात, चारा सिद्ध ना चाहे हैं। जैसा कि आचार्य भामि ने र्ना है —

धमाथकाममाक्षु वैचक्षण्यं रत्नासु च।

प्राप्तिं करानि कार्ति च साधुकाव्यनिर्घनम् ॥

पश्चिम में तो धम आर राम का मगडा भा चला थ, इस रान पर विवाद हुआ था कि साहित्य केवल आनन्द के लिए है अथवा सिद्धा क लिए भा, परन्तु भारताय आचार्यों ने भक्त मुनि म लगाकर

‘धर्मो धमप्रवृत्तनां राम कामान्तरानाम्

य अनुमार, धम आर काम मे ऐसा साइ विशेष मगडा नहीं दगा।

संस्कृत में आचार्यों ने काव्य का प्रधानतया यथावत् रूप अर्थ और यश का उभा नहीं भुलाया, परन्तु उहाँ सामने ही रखा है। यदि ब्रह्मानन्द महादर ने अथ और यश भा मिलता हा ता लौकिक और अलौकिक का यह आदर्श अथाग जिसे न भाथगा ? आचार्य दंडी के अनुसार साहित्य नामधेनु है जिसकी उचित सेवा से सभी मनोभिलाष पूर्ण होते हैं और वाग्णा के प्रमाद से ही 'लाभ याथा' सम्भव होता है ( वाचामेप्रमादन लाभयात्रा प्रवर्तते )। कवियों ने अपनी वाणी द्वारा पुराने राजाओं का अमर रर दिया है, नहा तो नाइ उनका नाम भी न जानता। दंडा का इन उक्ति से जो धनि निकली वह इक्ष शास्त्र के जाननेवाले के अनुसार इस प्रकार है —

'According to him, the main purpose of a poem is to narrate and praise the life and deeds of the king, the Kavi being thus, generally, a court poet' ( J Nobel—The Foundations of Indian Poetry )

आचार्य दंडी के अनुसार कविता का प्रधान लक्ष्य राजा के जीवन और उसके कृत्या का उगणन है और इसलिए, माटे रूप में, कवि से एक स्वामी कवि का ही उाध होता है। रम अलंकार आदि का विधचन करत समय इस राज का ध्यान न रगना आवश्यक है। अठ्ठिकाश आचार्या का सम्बन्ध राजाओं से ना इसीनिण उनके सिद्धान्ता पर दरगाग संस्कृति की व्याप है।

आचार्य विल्हम ने इसी प्रकार कहा है कि जिस राजा के पास कवि ना होते, उसका क्या यश हा सकता है, ससार में कितने राजा नहा हा गय, परन्तु उनका कौन नाम भा ना जानता।

इस प्रकार की कवियों हिन्दी के राति काल का समग्र करती

है, जिस वातावरण में इन साहित्य शास्त्र की रचना हुई, वह बहुत कुछ रीति-काल जैसा ही था। इसी लिए काव्य से धन और यश प्राप्त होने की इतनी ख्वाहिश है। इस वास्तविक लक्ष्य का ऊँचा करके दिखाने के लिए ब्रह्मानन्द का सारा लिया गया। आचार्य मम्मट ने कहा है कि काव्य से यश और धन मिलता है, अमंगल दूर होता है, यशस्वर का शान होता है, आनन्द मिलता है और मुर शिखा, जैसी कला के शब्दों में होता है, प्राप्त होती है। कान्ता क समान मधुर उपदेश देने में काव्य बड़ और पुराणों का भी पाछे छोड़ आता है। वेद-वाक्य प्रभु-सम्मित राजा क समान है, पुराण वाक्य मुहूर्त्त सम्मित मित्र क अनुरोध के समान है। ये दोनों प्रकार के वाक्य अररते हैं परन्तु कान्ता-सम्मित वाक्य, रसपूर्ण काव्य में यह दाव करती है।

रसवाद के साथ विभावनुभाव आदि की एक मेना है जो रस परिपाक में सहायक होता है। इसमें पहले स्थायी भाव आते हैं। जैसे नायक नायिका का परस्पर अनुराग एक स्थायी भाव है। प्रत्येक रस क साथ उसका स्थायी भाव होता है, रसमें शृंगार प्रधान है और शृंगार का स्थायी भाव रति है। रति का जगाने क लिए नायक नायिका का हाना आवश्यक है। वे आलस्य विभाव हैं। पुष्यगटिका, पद्मान्त स्थल, शानलमन्द उषार आदि उदासन विभाव हैं। स्थायी भाव जैसे रति का जगाने के लिए फटाक, हस्त संचालन आदि अनुभाव होते हैं। नायक-नायिका में मिलन का उत्कठा आदि के भाव स्थायी भाव क सहायक होते हैं और व्यभिचारी या स्याग कहलाते हैं। इन सब विभावनुभावों आदि का विभिन्न प्राचार्यों ने मन्थारों त्रियत की है, फिर भी इन गोग्गर्धर के बाद रस निष्पत्ति के समय स्थायी भाव की ही प्रधानता होता है। भरतमुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में कहा है —



‘तथा विभावनुभाय व्यभिचारि परिवृत्ति स्थाया भावा रसनाम लभत ।’

स्थाया भाव ही रसनाम प्राप्त करता है अर्थात् स्थायी भाव, जैसे रति, या ही नाम रस है। इसी रस अर्थात् रति या नाम ब्रह्मानन्द महादर है। यद्यपि साहित्य में शृंगार के साथ और रसों की गणना है तो भी जेमा वि भावराज ने लिखा था, यह गणना अधपरम्परा के कारण है, रस वास्तव में शृंगार ही है। मसूत काव्य में जिस रस का प्रधानता है, यह शृंगार है शास्त्रकार रस की आध्यात्मिक व्याख्या के साथ जिस रस के आलम्बन आँसों के सामने दरत थे, वे शृंगार रस के नायक नायिका ही थे।

यह रस किस प्रकार अलौकिक हो जाता है, इसकी व्याख्या भट्टनायक ने की है। दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रेम-व्यापार का भावना एक साधारण व्यापार बना देता है, अर्थात् वह उनका व्यापकत प्रेम न रहकर साधारण दाम्पत्य प्रेम हो जाता है। भावना के बाद ‘भाग’ की क्रिया आरम्भ होता है, जिसे विविध प्रकार से मत्वगुण का उद्रेक होता है और इस प्रकार प्रकाश रूप आनन्द का अनुभव होता है—‘सत्वाद्रेक प्रकाशानन्द सगिद्भाति’। इसी भाग में वह आनन्द प्राप्त होता है जो अलौकिक होता है। यह समग्र तक एक मिथ्या धारणा पर निर्भर है। जिसे प्रकार के आनन्द का भी मत्वगुणों मान लिया गया है। इसलिये विषयचिन्तन से भी जो आनन्द होगा वह मत्वगुणों की अलौकिक भागा। वास्तव में तमागुण से उत्पन्न आनन्द मनुष्य का तमागुण की आर हो ले जायगा न कि मत्वगुण की आर। यह बात ठीक है कि दशरथ या पाठक के भाव एक साधारणकरण नाम का किया दर्शा है, उसके लिए दुष्यन्त और शकुन्तला ऐतिहासिक या पौराणिक पात्र नहीं रहते। अपने अनुभव के अनुसार वह उन्हें पहचानता है और उनके प्रति अपने भाव निश्चित करता है। रसिक पाठकों का शकुन्तला में अपनी

प्रेयसा के ही स्थान होते हैं अथवा वे शकुन्तला का अपनी पर-  
कालनिक प्रेयसा बना लेते हैं। इस प्रकार साहित्य में विभिन्न प्रकृति  
के चरित्र, विभिन्न प्रकार के भाव और विभिन्न क्रांति का आनन्द पाते  
हैं। उन सब का रमानुभव—ब्रह्मानन्द महादर—अलग-अलग तरह  
का होता है। अभिनवगुप्त के अनुसार साधारणीकरण चरित्रों  
द्वारा होता है, न कि भावना द्वारा, परन्तु महत्त्व का बात यह है कि  
साधारणीकरण के बाद भावनाओं और पाठकों का अपना अपना  
भाव ग्रहण अध्याधारण रहता है।

साधारण रूप से हम दम्बते हैं कि जो मनुष्य तीन बातों का  
बहुत माना जाता है, उहा जैसा उसकी मनावाच और उसका  
चरित्र भी बनता है। गाना के अनुसार—

‘आयतो विषयान् पम सग तेष्टृपनायत्रे।’

विषयों के चिन्तन में उनमें प्राप्त उत्पन्न होता है। यह जीवन  
का एक बड़ा सत्य है। साहित्य में भी विषय चिन्तन से विषयावृत्ति उत्पन्न  
जाती, हम सब का चिन्तनावाद में द्विधाया नहा जा सकता। साहित्य  
शास्त्र की समस्या प्रधानतः यह है, किस प्रकार का साहित्य हमारे  
चित्त पर किस प्रकार के संस्कार बनाता है, ये संस्कार समाज के  
लिए शुभ हैं या अशुभ। कालिदास का पत्ने के बाद इत्य पर  
बुद्ध संस्कार झूट जाते हैं जो धारे धारे जैसे ही चिन्तन द्वारा हटा  
दाते हैं। अशुभ संस्कारों जैसे संस्कार बना सकती हैं जो समाज के  
लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हो। भारतीय इतिहास इस बात का साक्ष्य  
है। कालिदास हमारे पास कुलगुरु हैं। महाभारत और रामायण का  
साक्षात् सिद्ध चरित्र के लिए बड़ा ध्वनि, बड़ा अलंकार दिया  
जाते हैं। साहित्य से ब्रह्मानन्द महादर का प्राप्त हुआ परन्तु अद्वार  
का उदाहरण निम्न रम ग ब्रह्मानन्द महादर का अलग संस्कार में

दिखाइ दिया। शृंगार का ही रसराज की उपाधि का मिलना साहित्य शास्त्र की यह दूसरी समस्या है—एक साहित्यिक या कलाकार जिस अनुभव का दर्शक या पाठक तक पहुँचाता है, उसका चयन किन नियमों से अनुमान होता है? अनुभव करने का बहुत सा मत है, परन्तु उनमें से कुछ का ही हम क्या अनुभव कर पाते हैं? और किन्हीं अनुभव कर पाते हैं, उनमें से कुछ विशेष का ही क्या अपने साहित्य में अपना सकते हैं? इस प्रश्न का कोई समुचित उत्तर संस्कृत साहित्य-शास्त्र में नहीं मिलता।

जैसी युग और समाज की मनोरंजिता है, उमा में प्रभावित होकर या उसके विरोध में खड़े होकर कलाकार अपना कृतियाँ का जन्म देता है। वह साहित्य शास्त्र और कालिदास जैसे कृतियों का युग था जब शताब्दियों के लिए भारतवर्ष का नामता का जन्म हुआ था। उस समय उन महान् आचार्यों तथा कृतियों ने जो मस्का भाग्य जीवन में जमा दिये, वे अफन में निमूल नष्ट हुए। कि भावना धारा के रूप में नायिका-भक्त का विशाल भवन निर्मित हुआ उसके ऊपर ब्रह्मानन्द महादेव का आचरण आलोक जनता का धारण न गया गया। साहित्य शास्त्रियों ने कहा, भाव्य कुछ गुणात्मनों के लिए है, उनके लिए अलङ्कार, ध्वनि रस आदि का ज्ञान आवश्यक है। यह सब का समझ में नष्ट हो सकता। जब क्या गया कि अलङ्कार, ध्वनि रस आदि का अलङ्कार रस से ही क्या विशाल सम्बन्ध है, क्या इससे कुछ उत्पन्न नहीं होता? तो उत्तर दिया गया कि साहित्य में, भावना अधरा व्यञ्जना द्वारा एक अलौकिक आनन्द उत्पन्न होता है जो चित्त पर का संस्कार नहीं छाड़ता। परन्तु गीता में क्या गया था, विषयों के चिन्तन से उनमें आगति उत्पन्न होता है, इस महान् मनोवैज्ञानिक तथ्य का साहित्य शास्त्रियों ने उलट दिया। कहा, साहित्य में विषय चिन्तन

मे ब्रह्मानन्द सहीदर प्राप्त होता है। यह प्रयत्नना आन भा चली जाता है और अनक आलाचन इस प्रश्न का सामना हा नहा करना चाहते, कीन मा साहित्य केने सुन्कार बताता है और व समाज क लिए अच्छ हैं या बुरे। एना ब्रह्मानन्द-परम्परा म आगे चलकर एक शास्त्र ने कहा कि जा धर्म का उल्लंघन करन परकाया मे प्रेम करता है, वहा गद्दार क परमान्कय का जानता है ( अत्रैव परमाकय शृगारस्य प्राप्त्युचित )। इस मयकी परगाथा ब्रत भाषा के नायिका मे म हुइ चिक्क रस म टपकर कवि रमानल पहुँच गय और अपने साथ देश का भी ले गे।

( २ )

साहित्य मा कला मे व आनन्द प्राप्त होता है, उमे ब्रह्मानन्द सहीदर न मानकर भा, रतुन से लाग यह न्याहार करना चाहगे कि वह लाफालर होता है और जगन में प्राप्त आनन्द का अन्य श्रेणिया स नह भिन्न है। भिन्न ता नह है हा क्योंकि यहाँ माध्यम रूमग है, जगन म जैम मदिरा पाने म किमा का आनन्द मिलता है, साहित्य मे उमर वर्णन म आनन्द मिलता है, और ताना प्रकार क आनन्दा में भिन्नता ह। मदिरा पान म गाला जगन से लेकर नाला में गिग्ने तक का आनन्द जागा रा सुनम होता है, उमर खय्याम का रुक-रुक पाने मे लाग लाफ-यगलाक दाना मुगार लन है कम स कम मुगारने का धेन ता करत हा है। परन्तु है ताना आनन्द हा मदिरा पान म तथा मदिरा-पान क जगन दाना म हा आनन्द प्राप्त होता है। मदिरा पान के जगन स जा आनन्द प्राप्त होता है, उन हम लाघात्तर आनन्द इसलिए कह मरते हैं कि लाक मे इस प्रकार का आनन्द हम मिलता नहा है। नहा ता एक प्रकार का आनन्द वह भा है यहाँ किगी ने मदिरा-पान किया है, ता उम उमका

स्मरण होता है, नहीं किया है, तो मुनी बातों से उसकी कल्पना करना है। इस प्रकार मदिरा-स्मरणी कल्पना, जो अलौकिक नहीं है, उसके वर्णन से प्राप्त आनन्द का आधार होता है। इस मूल कल्पना की 'स्थूलता' का प्रभाव उस "सूक्ष्म" आनन्द पर भी पड़ता है।

साहित्य और कला से हम आनन्द प्राप्त होता है परन्तु सभा प्रकार के साहित्य या कला से हम एक ही प्रकार का आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता। मदिरा पान के वर्णन में जो आनन्द आता है, क्या वह उसा भेणी का है, जिस श्रेणी का भगवद्गीता में गाय हुए एक गीत का आनन्द है? सम्भवतः जो मदिरा पान के वर्णन में हम लेता रहा है, उस भाव का भवन विरजुल नीरम लगता। यह एक मात्र सा उदाहरण है। तब भी मचाइ का शायद ही कोई श्रमवीभार कर। परन्तु साहित्य और कला सम्बन्धी बाद विवाद में लागू इसी बात की भूल जाते हैं। तब सैकड़ों भूठों धारणायें पैदा हो जाती हैं।

पहली बात तो यह माननी होगी कि एक व्यक्ति जो एक प्रकार की साहित्यिक रचना में आनन्द पाता है, एक अन्य प्रकार का रचना के प्रति नतान्त उदात्त भी हो सकता है। यन्त्रम समाज में और अपना जीवन में नित्यप्रति देव सकते हैं। कीट्स ने अपने एक पत्र में लिखा था कि वह अपनी नव-युवास्था में इङ्ग्लैंड के कुछ छात्रों को माटे करियाँ का बहुत पसन्द करता था, आगे चलकर उस शेरक पियर बहुत पसन्द आनन्द लगा, फिर वह पृथ्वी है, क्या एक दिन एसा भी आ सकता है, जब उसे शेरकपियर भी अच्छा न लगे? चिन लोगों का कालिदास के मरुत में लास्य आनन्द प्राप्त होता है, क्या उह रामायण या महाभारत में भी वैसा ही आनन्द प्राप्त होता है? शास्त्रकारों ने 'आनन्द की परत के नियम सहृदय काय समझा का नियत किया है। चिने महत्त्व यह, रही साहित्य काय

है, उसी से प्राप्त आनन्द वास्तविक आनन्द है। मैथ्यू आर्नल्ड न मा कावता की परख क लिये मुझारा था कि लागा सो चाहिये कि कुछ करियां ना प्रसिद्ध पत्तियां लेकर पठें और देखें कि उन्हें उनमें आनन्द आता है या न। न आनन्द याव ता समझना चाहिये कि उनका मद्द्यता म अभी कमी है। उस द्वाग्या म शास्त्रकार मान लते है कि मद्द्यता और ममज्ञता अचल और मनातन है। काल प्रवाह मा व अस्थिर नहीं जाता।

इतिहास की भाषा हमसे उटती है। या ता अमा वास्तविक ना उन्मर्मज्ञ पैग ही नहीं हुआ और नाद हुआ है, ता उनही ममज्ञता अक्षय युग-युग में चलती ग्या है। आगे के करियां सो छोड़ द्वितीय श्रेणा क करियां क सम्बन्ध म यह ममज्ञता युग-युग में रूप ग बदलती दिग्वाइ दता है। जमन काय गटे ने लाड रायगन ना ना प्रशया की था, क्या राउरा मदी क आलाचका का उसका एक शब्द भा मान्य है ? टनासन क समय उसका प्रतिभा किस काटि का समझा गई थी, और रोगवा म्ना में उसका धान मा मूल्य निधागित किया गया है ? शर्ली और रीन्स के जमन काल में इजलिज, डिजिडी आद का ममज्ञता न उन्हें कैसा पग्ला था, रीगवा म्ना में उनकी प्रतिभा इज काटि का माना गई ? किसी करि ना मूल्य एक युग क्छ अरिना इ, दूसरा युग कुछ, इमे आर उदाहरण दकर मममाने की आनश्यरता नहा। य ममला मा गारण करियां तर हा ना है, गक्सवियर, तुलमादास जैने करियां क मावय में भी धागगाएँ ग्ला करता है। यी ना कि गल्सगर जैने ममज्ञ गक्सवियर को सगा करि हा न मानें, जानसन आर ब्रंजल गी आलाचक एक हा काय क विभिन्न धागगा स प्रयुमक हा मरत है। दाना ममज्ञ कावता क दा ममों तर पटुच जात है।

पेश और काल क अनुमार सामाजिक मरुति ग निमाण दता

है। एक भारतवर्ष, जिसका दूर-दूर तक व्यापार फैला हुआ है, दूर-दूर तक जिसका उपनिवेश है, व्यापार से जिसका मध्यम सन्तुष्ट है, दान का जहाँ महात्म्य है, मंदिरों में घण्टा ध्वनि का गाय ईश्वर में आस्था घापित हो जाती है, उस भारतवर्ष का संस्कृति क्या उस दूसरे भारतवर्ष का गाय हार्गी जा स्वयं दूर का व्यापारिया का एक उपनिवेश है, जहाँ का मध्यम दफ्तरों में नौकरी खाजता है और जहाँ किसानों के रूप में एक विशाल जन समुदाय चुबुध और पीडित है? शास्त्रकारों ने जिस ममज्ञता का विवचन किया है, वह उस समृद्धि सामता युग का प्रतीक है, समृद्धि का ज्यो होते होते लोगों ने उस और भी दृष्टता से चकड़ लिया जिससे मरते मरते भी वह लाञ्छित आनन्द हाथ से न जाने पाये। उस समृद्धि की परछाई में पला हुआ जन समाज का एक सैरड़ा भाग आज भी उसे अपनी प्रिय संस्कृति कहकर कठोर बनाये हुए है। गायित्व-समालोचना में उम्मीद मर्मज्ञता की हम अरुणा आश्चर्य मानते चले जाते हैं।

गायित्व का शास्त्रीय विवेचन पर से यदि हम ब्रह्मानन्द सहाय का आनन्द हटा दे, तो उसका नाच हम बहुत कुछ सचाँसल सकता है। गायित्व से हम रस या आनन्द प्राप्त होता है, यहाँ ठाक है, मनुष्य के हृदय में जा स्थायी भाव होता है वह रस नाम प्रहण करता है, यह और भाव ठाक है। मारी बात मनुष्य का भाव का है, 'जाती रहा भावना जैसा, प्रभु मूर्ति देखा तिन तीसा', एक ही मूर्ति विभिन्न प्रकार का भावना आनन्द लागा का विभिन्न प्रकार की दिग्गद देता है। यदि भाव प्रहण और आनन्द अनेक प्रकार का है तब उसमें अतीव सत्ता की एकता, अविच्छिन्नता नहीं है, लौकिक चक्रवर्ती की भाँति न बदलेगा विभाजन से पर नहा है। इसलिये यह शीकाव करना चाहिये कि महदय माध्यम-ममत्त कहकर या ऐसा प्रणाली हम नहीं मिल सकता जो ममा युगाँ से लिये आदेश हा, न

इस ममज्ञ की परंपरा में आनेवाला साइ ऐसा साहित्य है जिसका रस सभा युगों में समान लाभात्तर ही अविच्छिन्न था। विकास का नियम ममज्ञ पर ही लागू नहीं होता, उसका अधिकार साहित्य, साहित्य-ममज्ञता, लाभात्तर आनन्द सभा पर है।

यदि साहित्य और साहित्यिक रुचि में युग के साथ परिवर्तन हुआ करता है तो एक युग का अति हम दूसरे युग में क्या अच्छी लगता है? किमो किमा युग में जो साहित्यिक पुनरुत्थान (Literary Revivals) हुआ करते हैं, उनका क्या रहस्य है? कालरिच के युग में ग्रेकमपियर का नवीन साहित्यिक जन्म और टा. एस. इनियट के युग में मेटाफिजिकल रिया की चर्चा का क्या कारण है? पहली बात तो यह कि इस प्रकार के पुनरुत्थानों में ऐतिहासिक सत्यता की रक्षा बहुत कम की जाती है, जब हम बाने युग की पुनर्जीवित करते हैं, तब हम बहुधा उसमें अपने युग का जावन ही अधिक डालते हैं। उन्नीसवा शताब्दी के दो अंग्रेज़ साहित्यिक मैथ्यू आनल्ट तथा म्विनसन ग्रॉस सभ्यता और साहित्य के पनपाता थे परन्तु दोनों की ग्रॉस सभ्यता अलग अलग थी। तुलसीदास भारतभय के सवमान्य रचि रहे हैं परन्तु रामचंद्र शुक्ल के तुलसीदास पुराना साहित्यिक परम्परा के तुलसीदास से भिन्न हैं। इसलिये प्रत्येक साहित्यिक रियाजल की टीक ठाक पदचानने के लिये उस युग की प्रवृत्तियों का जानना आवश्यक होता है तिनमें वह रियाजल घटित हानी है।

दूसरी बात यह है कि युग युग में जो सामाजिक परिवर्तन होते हैं, उनमें साथ एक सामाजिक विकास कम भी चला करता है। एक बीता हुआ युग हम सामाजिक विकास कम के कारण रात जाने पर भी हम में जुड़ा हुआ ही मरता है, चतमान का सम्बन्ध भूत और भविष्यत् ज्ञाना कालों में है इसलिये हम उस विकास शरणा



का भूल नहीं करते। एक मनुष्य और मनुष्य वर्तमान के लिये आवश्यक है कि वह भविष्य की ओर अनुसृत होते हुए भी अपनी विद्युत् ऐतिहासिकता से अनभिज्ञ न हो। ऐतिहासिकता का ज्ञान बिना काल्पना के एक ही ओर पर चक्कर लगाकर अपने को अत्यन्त परगतिशाली समझ सकता है। एक साहित्यिक गिरावट का रूप में नहीं, ऐतिहासिक विवेचन के आधार पर अपनी साहित्यिक एवं सामाजिक परम्परा का ज्ञान आवश्यक है। सामाजिक विकास का माग ऐसा माया माग नहीं है कि समाज की लक्ष्मी उस पर चलती चली जाय और जो रात एक ओर ही चुकी है, उसे फिर गिराया न जाय। विकास का प्रक्रम ऐसा पहाड़ी गस्ते जैसा ऊँचा नाचा है। जिन दृश्यों का हम पहले छाड़ आते हैं, घूम घूमकर वहाँ उड़ी तरफ, वहाँ उड़ा जैसा दूसरे दृश्यों तरफ फिर पहुँच जाते हैं। इस प्रकार सामाजिक विकास में अगढ़ निछड़ लगी जाती है, क्रिया के साथ प्रतिक्रिया है, प्राक्कर्म का साथ गिरावट और उड़ान भी है। इसलिए तीसरी सदी के विकास प्रक्रम में ढलता हुआ युग मनुष्य की सदी का विकास प्रक्रम में उन तत्वों की गतिशीलता है जो दाना में मिलते जुलते हैं। हमें तीसरे युग की रचना इसलिए अच्छी लगती है कि उसने निमाण्य में उड़ी तत्वों का मयाग है जो हमारे युग के अत्यधिक निकट है। रामचन्द्र गुप्त का तुलसीदास में लाल दित की भावना पिछले युगों से अतिक्रम इसलिए दिलाई दी कि वह हमारे युग की एक चेष्टा है, मनुष्य वह तुलसीदास के युग की भी चेष्टा थी जिससे 'दान मुग्धा' और 'नाद दिताय' में काठ विशेष अंतर नहीं रह गया था। इसलिए तीसरे युग की रचना के अच्छे लगन में दो कारण हो सकते हैं, एक तो उसमें हम वह अर्थ देख लेते हैं जो हमें अपना वादते हैं परन्तु जो उमर है नहीं दूसरे हम उसमें वही अर्थ पाते हैं जो उस युग का भी अभीष्ट था। ऐतिहासिक परम्परा

म नैव हाने क कारण हम पुराना रचनाएँ तभी अच्छा लगता है जब वे हमारे युग क अनुकूल हाता ह ।

कुछ रचनाएँ एसा हाता है जो थोड़े हा युगों का अनुकूलता पाती है, कुछ एसा हाता है जो अनेक युगों म लोक-प्रिय हाता है । इन रचनाओं की लोक प्रियता अधिक व्यापक हाती है, उनम हम अनन्त मीदव, जावन का श्रमर सत्य आदि साध निकालना चाहते हैं । उनका व्यापक युगानुकूलता का उदाहरण हम उसे एक चिरन्तन सत्य का रूप दे देने है अर्थात् यह मान लेते हैं कि सदा क लिए विकास क्रम मे यहा तत्व लौट-पीटकर आया करेगा । हमारा इतिहास अभा निर्मित हा रहा है, विकास का अन्त नहा हा गया, इसलए एका एसा मस्तिष्क का कल्पना करना जाचिगन्नन हा, भ्रम है । जब अतक एका स्थिर, अपरिवर्तनशाल, और मया क लिए सुन्दर सामाजिक व्यवस्था किमा भी युग म स्थापित गहा हु, तब सादिय, जा सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम है किम चिरन्तन सत्य और श्रमर हो सकत है ? वास्तव म सामाजिक विकास क्रम म जैसे हा गति का अभाव हाता है, वैन हा एक चक्र चकर लगाकर हम रूठियों म चिरन्तन सत्य और श्रमर सत्य क स्वरूप दर्शन मा हाते लगते हैं ।

विकास-शक्ति का विरोध कुछ विचार धाराएँ इन अमर मान्य और चिरन्तन सत्य का कल्पनाओं का पाठ्य करता है । ये मस्तिष्क बहुत क चित्त पर जम हुए हैं कि मानव जाति का इतिहास प्रगति नही दुर्गति का इतिहास है । वा कुछ समय शिव सुन्दर था, यह ता मतयुग म हा गया अतः त घोर कलियुग म जा कुछ है, यह पतन क पतन ह । कल्पि अतार हा ता भल नस्तार हा सक । प्रायः लोग में भी मुरगयुग और अन्त म लौहयुग आदि का कल्पनाएँ प्रचलित थी । आत्म और हया परमात्मा में विभिन्न मुग से होते घ, मन्त्र होते हैं, हजरत सा मर्माह कि दया करें तथा म पराडाइ

लाम्ब पैराडाइज़ रिगेंट हा सजता है। इन संस्कारों के कारण लगभग साहित्य में भाषा और सोन्दर्य आदि का पिछला युग में ही देगना अधिपत पसंद करते हैं, नई साहित्यिक या कलाकार तब तक पूर्णरूप में मानन नहीं हा पाता जब तक वह एक हीते युग की कक्षाना नहा हा जाता। इसीलिए विकास सिद्धान्त को मानते हुए भा, साहित्य और समाज में इस विकास के नियम का लागू करते हुए भी, हम ऐसे मापदंड खान निभालते हैं जो अमर हा, उन मापदंडों से हम वह साहित्य भी नाप-जोख लते हैं जिस हम सदा के लिए मत्य शिर और सुंदर मान लते हैं। यह सारी नाप-जोख उस विकास सिद्धान्त की ऐतिहासिकता व कतना प्रतिकूल, असत्य और अवैज्ञानिक है, इस पर हम अभी ध्यान नहा देते।

यदि हम विकास सिद्धान्त का मानते हैं तो यह मानना होगा कि मनुष्य के संस्कार अमर नहा होते परन्तु व रना निगड़ा करते हैं। विकास क्रम में परिस्थितियाँ जैसे जैसे बदलती हैं, वैसे ही मनुष्य की इच्छाएँ, भावनाएँ, संस्कार आदि भी बदलते हैं। साहित्य शास्त्र की समझे गड़ा भ्रान्ति यह है कि मनुष्य की कुछ भावनाएँ अमर तथा उमक कुछ संस्कार चिरन्तन हाते हैं, जैसे विना पुत्र वा प्रेम, वा पुरुष वा स्त्रा के प्रति आकर्षण। इस प्रकार के संस्कार चिरन्तन मानकर साहित्य शास्त्रा रहते हैं कि ना इन संस्कारों के अनुकूल साहित्य रचना है, उनी का साहित्य अमर हा करता है। सामाजिक विकास की एक श्रृंखला वह भी रही थी जब पिता-पुत्र के सम्बन्ध की कल्पना भी नहीं रह था। जिस प्रकार समाज वा ढाँचा सदा एक गहा रना और उमक विकास का सम्भावना रहा है वैसे ही मनुष्य के (समाज से प्राप्त) संस्कार भी अमर नहीं हैं और उनमें परिवर्तन की सम्भावना है। स्त्रा पुरुष के सम्बन्ध में भी हतो परिवर्तन हुए हैं कि उन समक एक 'प्रेम' का नाम देने से भ्रम हा करता है।

परन्तु ऐसा कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि कुछ मस्कार औरों में अधिक स्थायी नहीं होते अथवा उनका न्यायित्व समाज में अमरत्व जैसा नही लगन लगता। साहित्यिक के लिए यह स्वाभाविक है कि वह उन मस्कारों तथा इच्छाओं का अपनायता अधिक स्थायी तथा लोकप्रिय है। परन्तु ऐसा भी ही मकता है कि समाज में वे मस्कार लोकप्रिय हो गये हैं या उनका विकास में बाधक है। उदाहरण के लिए हिन्दी साहित्य में एक अंग में उन मस्कारों का प्राधान्य है जिनका आधार व्यक्तिगत सम्पत्ति पर स्थिर परिवार है। भाग्य का भाई में प्रेम, पति का पत्नी से, पुत्र का पिता से प्रेम आदि मराहनीय है। परन्तु यदि हम अपनी गति अचरुद्ध नही करना चाहते तो कभी यह आवश्यक हो सकता है कि हम अपने मस्कारों का परिवार की भूमि से उठकर समाज की भूमि पर स्थिर करें। ऐसे मस्कारों की आवश्यकता है जो हम समाज-हित का परिवार हित से उठकर समझन का प्रेरित करें। जैसे भक्ति काव्य में इष्ट देवता समाज और परिवार से ऊपर होता है, वैसे ही साहित्यिक के लिए हम मस्कारों के निर्माण में महायत्न होना, जो स्थायी दिग्दर्शनवाले परिवारिक मस्कारों के ऊपर या उनके विरोध में, नितान्त अस्वाभाविक नहीं है। इसलिए साहित्यिक का मकतय है कि वह उन विंगत मस्कारों का पोषण अथवा निर्माण करे जो सामाजिक दृष्टि से उपयोगी हैं।

कुछ लोगों का मत है कि साहित्य का अमर सौंदर्य विषय, भाव-विचार आदि पर निर्भर नहीं है बरन् उनका आधार यत्नना अथवा कला है। भक्त का हान हुए भी भक्ति-रस ही एक गूना पर हम मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते, क्योंकि शब्दचयन इतना सुन्दर है, करने का दृग ऐसा प्रभासपूर्ण है। "सा ममा" पर जो कविता लिखी गई है, उनका आनन्द लन के लिए "माई" हान की

आवश्यकता नहीं है। साहित्य में व्यञ्जना एक ऐसा वस्तु है जो विषय का शक्तिता से ऊपर उठ जाती है। जिना लखन का रचना विचारों में प्रगतिशाल चाहे न हो, हम उसका कला, 'यचना' आदि का आनन्द ले सकते हैं। और इस प्रकार उसका पतित मनोवृत्ति का प्रभाव हम पर न पड़ेगा। १० एच० लार्सेंस, जम्म ज्वॉयस आदि क्लेरु प्रतिप्रियावादी हो सकते हैं परन्तु उनकी कला अमूर्त है, उसका रस लेना ही चाहिये। इस प्रकार के मत का उतर यह है कि साहित्य में विषय और व्यञ्जना दोनों एक दूसरे के आकर हैं, एक मूल साहित्यिक रचना में विषय और व्यञ्जना का सामन्तस्य होता है, एक प्रतिप्रियात्मक और दूसरी प्रगतिशाल नहीं हो सकती। 'यचना' साहित्य का श्रेणियाँ के अनुसार अनेक प्रकार का होता है। दरवाग कवियों की उक्ति चातुर्गी, सत कवियों का सरलवाणी, रामाणक काव्यों का दूरुद शब्द विन्यास आदि कुछ छोटे उदाहरण यहाँ निद कर रहे हैं कि भाव के साथ शैली में भी परिचित होना है। इसलिए विषय-वस्तु के निरूपण के साथ व्यञ्जना और कला के सम्बन्ध में भी यह यह रचना चाहिये कि वह चिरतन नहीं है बल्कि लेखक की प्रतिभा अथवा युग का प्रवृत्ति के अनुसार प्रतिप्रियावादी अथवा प्रगतिशाल हो सकता है। परन्तु सबका ही विषय वस्तु तथा कला में सामन्तस्य नहीं स्थापित हो पाता। घण्टा सामन्तस्य की आर हानी चाहिए और वह तथा समझ है जब हम 'यचना' की शक्ति का भी समझें और उसका साधना करें।

महान् लेखक में विषय तथा व्यञ्जना का सामन्तस्य बहुत कम होता है, इसलिए ऐसे काल में 'महान्' लखन के विचार यदि प्रतिप्रियावादी हो, तो उसका कला का रस लेना केवल पाठकों के अपने हृदय का एक बार फिर जाँच कर लेनी चाहिये।

अन्तु, भाव चयन तथा उनकी व्यञ्जना पर समाप्त कृतियाँ प्रविश्य,

होना ही चाहिये। साहित्य में रस और रस में ब्रह्मानन्द सहोदर की कल्पना न करके यह समझना चाहिये कि जिस विषय का हम चिन्तन करेंगे, उसी में हमारी आसक्ति होगी। साहित्य धर्म और काम, दोनों में सहायक है, भरतमुनि के अनुसार—धर्मो धर्म प्रवृत्तानां, काम कामोपमेविनाम्। इसलिए धर्म, काम अथवा पितृ संस्कारों से भी समाज हित हो, उन्हीं का साहित्य में चिन्तन होना चाहिये। जो इन सत्य को अस्वीकार करके समाज का अहित करनेवाले विचारों को अपने साहित्य में स्थान देता है, और कहता है कि इनमें अमर सौन्दर्य है, वह एक प्रवचना को जन्म देता है और जाने या गिना जाने समाज का अहित करता है। आलोचक का कर्तव्य है कि ऐसे साहित्य और साहित्यिकों से समाजहित की चौकसी करता रहे।

जनवरी-फरवरी '४२

## आई० ए० रिचार्ड्स के आलोचना-सिद्धान्त

आई० ए० रिचार्ड्स की प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रिमिपिल्स ऑफ लिटररी क्रिटिसिज्म' (साहित्यसमीक्षा क सिद्धान्त) का हिन्दी में जहाँ तहाँ उल्लेख हो चुका है। इंग्लैण्ड के साहित्यिका और भारतीय विश्वविद्यालयों के शिक्षकों में उसकी विशेष चर्चा होती रही है। इस चर्चा का कारण यह है कि रिचार्ड्स ने मनोविज्ञान की छानबीन करते हुए पुराने सिद्धान्तों को कुछ ऐसा गम्भीर रूप दिया है कि उन्नासवीं शताब्दी के गिरते हुए मापदण्ड फिर संभलते हुए दिखाई देने लगे। उन मापदण्डों से उस वर्ग का घनिष्ठ सम्बन्ध है जो पूँजावाद सस्कृति का विधायक है और उस पर कोई भी आघात होने से चीज उठता है।

रिचार्ड्स का मूल सिद्धान्त यह है कि साहित्य का ध्येय मनुष्य की वृत्तियाँ (impulses) का स्याधिक सन्तुष्ट करके उनमें सन्तुलन स्थापित करना है। इससे मनुष्य अच्छा मनुष्य बनता है। किन् प्रवृत्तियाँ ना साहित्य सन्तुष्ट करे, उनमें किस प्रकार का सन्तुलन हो, अच्छे मनुष्य का क्या अर्थ है, इत्यादि सगढ़ा प्रश्न इस सिद्धान्त के साथ जुड़े हुए हैं, जिनका रिचार्ड्स ने निराकरण कराने का प्रयत्न किया है।

रिचार्ड्स के मनोविज्ञान और सिद्धान्त के विवेक-मूल में पूँजीवाद विनास के आरम्भकाल का व्याक्तवाद है। मातृवै अघ्याय में रिचार्ड्स ने वैयम को धारणाओं का उल्लेख किया है। इन उपर्योगितावादों विचारक के अनुसार मनुष्य के कार्यों का ध्येय उसका चरम सुख (happiness) होता है। रिचार्ड्स का 'सुख' शब्द

पुराना मालूम होता है, वह उसकी जगह 'वृत्तियों का सन्तोष' (Satisfaction of impulses) कहना पसन्द करते हैं। वास्तव में सुख या आनन्द (Pleasure) कहकर काइ वस्तु है, यह वह मानते ही नहीं। उनका कहना है कि कोई भी अनुभव सुखदायक या दुःखदायक हो सकता है, परन्तु अनुभव से अलग सुख या दुःख की सत्ता नहीं होता। परन्तु यह भेद केवल शाब्दिक है, वास्तव में रिचार्ड्स और बथम के सिद्धान्तों में काइ मौलिक अन्तर नहीं है।

साहित्य का ध्येय सुख या वृत्तियों का सन्तोष मान लेने पर यह समस्या खड़ा होती है कि साहित्यकार अपने जिस अनुभव का वर्णन करता है, उसे समाज के लोग किस तरह ग्रहण करते हैं और उनका वास्तविकता का सन्तोष कैसे होता है। जैसे मूल लेखन का या उससे भिन्न होता है। रिचार्ड्स के लिए कितने पाठक होते हैं, उनके लिए एक ही कविता में उतना ही तरह का अनुभव मिल जाता है। इस लिए कवि ने जो महत्लन प्राप्त किया था, वह अपने मूल रूप में कविता का सुलभ नहीं होता। फिर भी थोड़े बहुत महत्लन का लाभ तो लोगों का होता है और इससे कवि के अनुभव का मूल्य ग्रहीत जाता है।

वृत्तियों का सन्तुष्ट करते समय हम कैसे जानें कौन कितनी महत्त्वपूर्ण है, इसका उत्तर रिचार्ड्स ने यह कहकर दिया है कि किसी वृत्ति का महत्त्व हम बात से मालूम होता है कि उसके सन्तुष्ट होने से उस मनुष्य की दूसरी वृत्तियाँ कहीं तक क्षोभ (disturbance) उदित होती हैं (पृ० ५१)। अर्थात् सन्तोष का समस्या तब ही माना जा सकता है कि यह क्षोभ की नया समस्या उठ खड़ी हुई। रिचार्ड्स स्वयं इसे एक अस्पष्ट व्याख्या मानते हैं, परन्तु उसकी अपूर्णता एक दुर्गम बात में भी है। इस व्याख्या के अनुसार वृत्तियों का महत्त्व



संस्था पर निर्भर हो गया, 'क' वृत्ति के सन्तुष्ट न होने से पाँच वृत्तियों में क्षाम उत्पन्न हुआ तो वह 'ख' वृत्ति से अधिक महत्त्वपूर्ण हुई, जिसके सन्तुष्ट न होने में चार ही वृत्तियों में क्षाम उत्पन्न होता।

इसके बाद वह इस दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हैं कि वृत्तियों का कैसा सन्तुलन श्रेष्ठ होता है। वृत्तियों का सन्तुष्ट करने में कुछ को सतोष तो कुछ का तोष होगा ही, इसलिए यह सन्तुलन (Organisation) श्रेष्ठ है जिसमें मानवीय सम्भावनाएँ (Human possibilities) कम से कम नष्ट हों। पुनः रिचार्ड्स ने प्रश्न का उत्तर देने के लिए एक दूसरा प्रश्न चिह्न लगा दिया है। ये 'मानवीय सम्भावनाएँ' क्या हैं ?

आदर्श सन्तुलन तो गिने-बुने लोगों को सुलभ होता है, परन्तु समाज इनमें और विकृत सन्तुलन के लोगों में भेद नहीं करता। इसलिये आदर्श सन्तुलन का सामाजिक रूप देना प्रायः असंभव है। व्यक्ति और समाज अपने अपने सन्तुलन के लिए झगड़ते हैं, इस संघर्ष में रिचार्ड्स के लिए जन-समूह विशिष्ट जनों के प्रति खद्दहस्त दिखाई पड़ता है।

यह मानते हैं कि समाज का यह कर्तव्य है कि वह विकृत सन्तुलन के लोगों से अपनी रक्षा करे। जिन लोगों की वृत्तियाँ भ्रष्ट हो गई हैं, उन्हें नज़रबन्द करने या कालापानी देने से उतनी हानि न होगी, जितनी उनके स्वच्छन्द रहने से। परन्तु रिचार्ड्स का ध्यान उन वर्गों की ओर नहीं जाता जो अपने शोषण-क्रम से सारे समाज का अहित करते हैं। व्यक्तियों में सामाजिक असन्तोष के कारण यथाशक्त इस प्रकार की विवेचना वर्ग-स्वार्थों पर पना डालती है। रिचार्ड्स के अनुसार यह सन्तुलन 'ज्ञान भूक्षेत्र योजना बनाने' या व्यवस्था करने से नहीं सुलभ हो सकती। योजना और व्यवस्था से तो समाज घाती वर्गों का ध्वंस हो जायगा। तब यह वृत्तियों का सन्तुलन कैसे

समय होता है ! "We pass as a rule from a chaos to a better organised state by ways which we know nothing about" अर्थात् एक अव्यवस्थित दशा से हम एक सुव्यवस्थित दशा में उन उपायों से पहुँच जाते हैं, जिनके बारे में हम कुछ नहीं जानते । इति शुभम् । इस रहस्यवाद के आग सभावाद विवाद व्यय हो जाता है । व्यवस्थित दशा तक पहुँचने के लिए यदि कोई निश्चित उपाय नहीं है तो यह समीक्षा का पुराण पढ़ने से लाभ ही क्या । माना कि साहित्य और कला द्वारा यह व्यवस्थित दशा समय होता है, परन्तु यहाँ साहित्य फिर एक रहस्य बन जाता है । यदि "Conscious planning" से मुख्यतः दूर रहना है, तो जा मन में आये लिखते चला, मनुष्य एक रहस्यात्मक ढंग से प्रभावित होकर सतुलन की दशा का प्राप्त होते जायेंगे ।

परन्तु इस निष्पत्ति से भी सन्ताप न होगा, क्योंकि देशकाल के अनुसार साहित्य-बोध बदलता रहता है । दान्ते ने बड़े यत्न से महाकाव्य लिखा, परन्तु आज उसकी विचारधारा हम से बहुत दूर पड़ गई है । महाकाव्य के कलात्मक ( formal ) सौन्दर्य से हम सन्तुष्ट नहीं होते, इसलिए विद्वान् भी आजकल दान्ते को कम पढ़ते हैं ( १० २२२५ ) । दान्ते जैसे लेखक ने जो सतुलन स्थापित किया था, वह आगे चलकर हमारे लिए दुलभ हो गया । इससे मालूम होता है कि इस अव्यवस्था का कहीं अन्त न होगा । वृत्तियों की यह शाश्वत अव्यवस्था पैसागरी अव्यवस्था का प्रतिबिम्ब है, जिसे बेंधम का शिष्य रिचार्ड्स पूँजीवाद के प्रति अपने माह के कारण छोड़ नहीं सकता ।

पूँजीवाद की अव्यवस्था को चरम सीमा तक ले जाने पर जिस प्रकार चारा और उच्छ्वलता फैल जायगा, उसी प्रकार वृत्तियों की अव्यवस्था का शाश्वत मान लेने पर कविता में अर्थ अनावश्यक हो जाता है । अर्थ द्वारा तो हम शब्द रूप से किसी का प्रभावित करने

की चेष्टा कर सकते हैं। साहित्य जिस रहस्यात्मक ढंग से प्रभावित करता है, उसके लिए ज्ञात अर्थ की आवश्यकता नहीं है। रिचार्ड्स का कहना है कि कविता में अर्थ का प्रायः अभाव हो सकता है, उसमें गोनर रूप के गठन का प्रायः अभाव हो सकता है, फिर भी वह कविता उस विद्वत् तक पहुँच सकती है जिसके आगे किसी कविता की गति नहीं है (पृ० १३०)। इस प्रकार "Conscious planning" से भय खारर, संगठित सामाजिक क्रिया द्वारा व्यवस्था में परिवर्तन करने से मुँह चुराकर, रिचार्ड्स का सिद्धांत उन्हें अर्थ हीनता के खदक में ला पटकता है।

भविष्य की कविता और भी दुरूह हो जायगी, यह निष्पत्ति स्वाभाविक है। रिचार्ड्स का कहना है कि कुछ सीमाओं में मनुष्य की वृत्तियाँ समान होती हैं। ऐसा मध्य युग में अधिक होता था; अन्तर्भेद अधिक बढ़ गया है और यह अन्धता ही हुआ। आज के सम्य मनुष्य का अनुभव कुछ ऐसी व्यक्तिगत विशेषताएँ लिये होता है जो साधारण जना के लिए गमन नहीं होता। जिन लोगों के जीवन का सबसे अधिक मूल्य है (अर्थात् जिन्होंने उत्कृष्ट संतुलन प्राप्त कर लिया है), उनके लिए कवि निगमता है, उनका मस्तिष्क पूर्व युगों की अपेक्षा भिन्न और बहुल तरंगों से बना है (पृ० २१०-१९)। वहीं दशा कवि की भी है। अधिकांश पाठक उसकी वृत्तियों से सम्पर्क नहीं कर पाते, इस कारण उसे व्यक्त करने के आवश्यक उपकरणों में वंचित करना अनुचित है। पिछले विचारों को देखते हुए रिचार्ड्स का विचार है कि कविता और भी दुरूह होगी क्योंकि उसका आधार वह विप्राप्त अनुभव होगा जो जन-साधारण को गुलाम नहीं है।

रिचार्ड्स ने अनुभव का मूल्य (Value) को आनन्द और शिक्षा के ऊपर रखा है। पश्चिमी साहित्य समीक्षा में यह पुराना विवाद का विषय है कि साहित्य से मनुष्य को शिक्षा मिलती है या

आनन्द मिलता है। रिचार्ड्स इस समस्या को श्रवैज्ञानिक मान लेते हैं, साहित्य में वह मूल्यवान् अनुभव चाहते हैं जिससे वृत्तियों को स्यापित मन्ताय हो। परन्तु वास्तव में मूल्य-सम्बन्धी यह सिद्धान्त बेधम व सुगम कामना सिद्धान्त से भिन्न नहीं है। रिचार्ड्स ने सामने कुछ आदर्श व्यक्ति हैं, जिनका वृत्तियाँ में श्रेष्ठ सन्तुलन है और साहित्य उनका वृत्तियों के सत्ताय का मूल साधन है। उसने साहित्य से दूसरे लाग भी प्रभावित हागे परन्तु उसी हद तक नहा। उनकी गभार विवेचना का परिणाम यह निरुलता है कि सामाजिक परिस्थितियाँ में परिवर्तन करने से, साहित्य का उगा से सम्बन्ध नहा है, धरन् वग से पर व्यक्तियों का वृत्तियों को सन्तुष्ट करना उसका लक्ष्य है। विहेनियरिस्ट और माइने अनेलिस्ट विचारको के कुछ सिद्धान्त लेकर रिचार्ड्स ने मनोविज्ञान का एक ढाँचा गढ़ा करने की कोशिश की है (११ वाँ अध्याय)। एक और वह जिसका भा विचार को एक "मनासिक घटना" मानते हैं तो दूसरी और प्रायः के "अज्ञात" का मूल्य मानकर यह रहस्य का गति भा करते हैं। परम स्यापिता और रहस्यवाद का विचित्र सघटन उनके सिद्धान्तों में मिलता है।

रिचार्ड्स का मूल सिद्धान्त यह है कि कविता मनुष्य का स्यापित वृत्तियों का सन्तुष्ट करती है। उनकी विवेचना की उगा कम उगा यह है कि वह वृत्तियों के मूल सामाजिक शरणा की और ध्यान नहीं देते। वृत्ति उनका लिए काइ रहस्यात्मक इकाइ बन जाता है, शिगके आदि अन्त का पना लगाना अस्ममन है।

कवि मनुष्य की वृत्तियों का सन्तुष्ट करता है, परन्तु सन्तोष के बाद क्या हाता है, इस प्रश्न को रिचार्ड्स ने नहा उठाया। ब्रह्मानन्द सहोदर की भाँति वृत्तियों के सन्तोष में साहित्य की कार्यवाही

समाप्त हो जाती है। परन्तु साहित्य का प्रभाव ऐसा हवाइ नहीं होता। यह प्रभाव मनुष्य के कार्यों में लक्षित होता है। साहित्य मनुष्य में किन्हीं कार्यों के लिए न्यूनाधिक प्रेरणा उत्पन्न करता है। इसलिए साहित्य के नियम, विचार आदि का भुलाकर उनके बिना भी बहुत कुछ काम चल-सकता है, इस धरणा के बल पर हम साहित्य के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निवाह नहीं कर सकते।

रिचार्ड्स के लिये साहित्य बाध (Communication) की समस्या समाधान से परे है। साहित्य दुरूह होता जायगा और जन-साधारण को उससे अधिकाधिक निराश होते जाना पड़ेगा। यह ठीक है कि कवि का अनुभव पाठक तक अपने मूलरूप में नहीं पहुँचता। परन्तु कवि के अनुभव की जिन बातों को साधारण व्यक्ति नहीं ग्रहण कर पाता, वे कुछ अज्ञात होती हैं, अनुभव का साररूप नहीं। साधारण व्यवहार में जैसा हम एक दूसरे की बातें जानते बुझते हैं, यद्यपि कभी-कभी भ्रम हा जाता है, उसी प्रकार कवि के अनुभव का जन-समूह ग्रहण करता है और कवि की दुरूह व्यक्तिगत बातों को छोड़ देता है। पूँजीवादी व्यवस्था में शिक्षित किंवा दुःशिक्षित कवि में और जन साधारण में भारा अंतर हाता है। कवि अपने सजुचित अभिजातवर्ग में और भी सजुचित होता हुआ व्यजना के लिये नये और अपने तक सीमित प्रतीक ढूँढ लाता है। वह समझता है कि उसका अनुभव और व्यजना उघकाटि नहीं है। जन साधारण के लिये जितना ही वह दुरूह हागा, उतना ही वह भेद्य होगा। दूसरी ओर जन साधारण की अशिक्षा और कुसंस्कृति के कारण कवि के लिये व्यजना का प्रश्न सचमुच उलझा हुआ रहता है। उसे मुलझाने का एक ही उपाय है कि कवि अपने सजुचित सत्तार से निरूले और जनता का शिक्षित और सुसंस्कृत करने के प्रयत्नों में योग दे। कवि और जन-साधारण में एक रहस्यात्मक भ्रम है,

तिससे एर दूसरे के लिये पहली बना रहेगा,—यह एक पूँजीवादी कुसस्कार है।

कविता में हमें मूल्यवान् अनुभव चाहिये, उसका मूल हम इस तरह निधारित करेंगे कि वह व्यक्तित्व सामान्य जीवन-यापन में कहीं तक सहायक होता है और कहीं तक बाधक होता है। रिचार्ड्स के रहस्यवाद से उसकी व्याख्या नहीं हो सकती।

( १६४४ )

## साहित्य में जनता का चित्रण

साहित्य और जनता, इन दो शब्दों का एक साथ देखने ही कुछ क्लेशप्रेमिया के कान खड़े हो जाते हैं। वे समझते हैं कि जनता रूपी व्याघ्र क्लेशरूपा शाबक का खा जायेगा और तब साहित्य के क्षेत्र में इस व्याघ्र का गजन मात्र मुनाह पड़गा।

जनता और कला में काँच बँध नहीं है। पैर भाव उन लोगों के मन में उठता है जिनके लिये जनता एक कल्पना है, यथात् जिनके निरुद्ध विभिन्न सामाजिक स्तरों में पैटी हड, जीवन की बहुविध क्रियाओं में सलगन, विक्रम पर उन्नी या पिछड़ती हुई एक हाड-मांस की जनता का अस्तित्व नहीं है बल्कि तो उसे अशिवा, कुमस्वृति, अराजकता, क्लेशानता आदि का पयायनाची समझते हैं। जो लोग साहित्य में जनता का चित्रण करना चाहते हैं और जो नहीं भा करना चाहते, दोनों ही तरह के लोगों के लिये यह आश्चर्य है कि वे जनता के मूल रूप का ध्यान न करें। जनता का मस्ता नुमस्ता नहीं है जिसमें कि राजनीति, अथशास्त्र या साहित्य की ममा ममभ्यायें पलक मारते हल कर दी जायें। इसके विपरीत तब हम साहित्य में जनता का चित्रण करने चलते हैं तो हमारे सामने तरह तरह की नई ममभ्यायें उठ खड़ी जाती हैं।

कुछ लोग साहित्य की धाराओं का रदिर्मुखी और अतमुता इन दो रूपा में पाँट देते हैं। वे या तो इनम से निमी एक का प्रधानता दूसरी का उल्टा विगधी मानलत हैं या उदारता पूरक दोनों का अपनी अपनी दिशाओं में "हने की अनुमति दे देते हैं। उनका अनुसार साहित्य की रदिर्मुखी धारा में घन, पवत,

नदी, नाले, दृश्यमान गाबर प्रकृति और उसके साथ राष्ट्रीय आन्दोलन, किसान-जमादारों का सपना मजदूरों की हड़तालें, दंगे आदि-आदि का चित्रण किया जाता है। दूसरी अंतर्मुखी धारा में मनुष्य के अतद्बद्ध, आत्म-चिन्तन मनावैज्ञानिक ऊहापोह अन्तस्सल को निगूतम भावनाओं का वातप्रतिघात आदि आदि होता है। १। दिशाओं में रहनेवाला ये दो धारायें उभालिय दिखाइ देती हैं कि जनता का विकास का मार्ग और कलाकार का अन्तस्सल की आमन भावनाओं की शिखा अभी एक नहीं हो पाई। वास्तव में अंतर्मुखी और अन्तर्मुखी, इस तरह के भेद अन्तर्मुखी हैं। साहित्य में कल्पक का अन्तस्सल और दृश्यमान वास्तव-जगत् एक दूसरे में गुंथ हुए, अश्लिष्ट रूप में आते हैं। इनमें परस्पर विरोध है,— इसका कारण प्राकृतिक या मनावैज्ञानिक कारण नहीं है।

उदाहरण के लिये गानात्मक कविता का लीजिये। सत-कविता का पदा में उत्कृष्ट आत्म निवेदन मिलता है लेकिन उसका मरुत दृश्यमान वास्तव-जगत् में भी पृथक्-पृथक् है। गान्धारी बुनसादास के रूप में उनके जीवन-सङ्घर्ष, समाज के पादित रोग का और उनकी समर्पणा आदि आदि स्पष्ट क्लरता हैं। इस प्रकार हिन्दी के सबसे बड़े गायक सुरदास का पदा में भी कृष्ण का बालबाला गान्धारी का प्रेम, उदर का उपयेय और गान्धारी का प्रयुक्त—इस मरुत व्यापार साधारण मानवीय जगत् के अन्तर्गत से गुँथा हुआ है। सुरदास का आगे गुला रहा ही चाहे रचयन में गुँथा रहा ही, वे उस मरुत का बहुत अच्छा तरह जानने से विमने कि उस समय का साधारण मनुष्य परिचित था। इस प्रकार छायावादी कविता न अरने आत्म निवेदन के स्वर को निरन्तर-अधुन्य का भावना, समाज में समता की स्थापना, राजनीतिक पक्षीयता और आर्थिक उत्पीड़न का विरोध आदि-आदि में सरल किया है। दिनकर, मुमन आदि



कवियों में हम स्पष्ट देखते हैं कि कवि के भाव-जगत् में दिन प्रतिदिन बाह्य सामाजिक सत्कार की छायाएँ घनी होती जाती हैं। युद्ध काल में यूरुप के कवियों ने कुछ गहृत ही आत्मीयतापूर्ण और गीतात्मक काव्य की सृष्टि की है। इन 'लिरिक' कविताओं का निषय देशप्रेम और फ्रांसिज्म का विरोध है, इनमें फ्रांस के कवि लुई आरागा ने विशेष रचना पाई है। उसकी रचनाओं में मार्मिक पीड़ा है और हृदय का छूने की अद्भुत शक्ति है। इसका कारण जर्मन आक्रमण से अस्त फ्रांसीसी जनता के प्रति उसकी उत्कट सहानुभूति है। आरागा ने अहम् का निषेध नहीं किया, यह नाटकीय ढङ्ग से जनता का चित्रण भी नहीं करता। यह अपने ही मन में डूब जाता है लेकिन यह मन एक ऐसे व्यक्ति का है जिसकी आँखें और कान खुले हुए हैं और जो अपने आस पास का परिस्थितियों के प्रभाव को इन मन से दूर रखने की कोशिश नहीं करता। दो महायुद्धों के बीच में भारत के जिन महाकवियों ने राष्ट्रीय जागरण से प्रभावित होकर गीत गाये हैं, उनकी आत्मीयता अथवा गेयता कम होने का बदला और बढ़ गई है। भीरवी द्रनाथ ठाकुर, महाकवि भारती और यल्लतोल इस नवीन गातात्मकता के उदाहरण हैं।

यहाँ पर यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि स्वयं जनसाधारण में यह गीतात्मकता बहुत बड़ी मात्रामें विद्यमान है। हमारे जनपदों की हाली, पाग, कजरी आदि में गेयता और आत्मीयता दोनों हैं। कभी कभी इनका अभिनव सादय देख कर उच्चकोटि के कलाकार भी ऐसे चमत्कृत रह जाते हैं कि वे समझते हैं कि खुद उनका अरना प्रयास व्यर्थ ही रहा। जनगीता की लोकप्रियता का कारण भाषा का अनगढ़ सादय, अलंकारों की गभीरता और शैली में हृदय प्राई सरलता ही नहीं है। लोकप्रियता का सबसे

बड़ा कारण यह है कि जन कवि हमारे कलाकारों की अपेक्षा वाह्य-जगत् से निरन्तर सम्पर्क में आते हैं। इस वाह्यजगत् में स्वयं उनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। उनके सामाजिक जीवन की विभिन्न क्रियाएँ ही उनके गाथा में उस वेदना और आत्मायता की सृष्टि करती हैं जो पाठक को इतनी आकर्षक जान पड़ती हैं।

इसलिये यह समझना कि जनता के जीवन का निकट से देखने से कवि का भावजगत् छुंधला हो जायेगा या उसके अन्तस्तल की कोमल वृत्तियाँ का सवनाश हो जायेगा, एक प्रवक्षणा छोड़ कर और कुछ नहीं है।

पिछले दो महायुद्धों के ज्ञान में जो नया साहित्य रचा गया है, चाहे वह हिन्दुस्तान में हो, चाहे पश्चिम के देशों में, उमे देखने से यह धारणा पुष्ट होती है कि जनता का चित्रण करके अपनी कला का अधिक विकसित करना और उसके विभिन्न रूपों का अधिक आकर्षक बनाना संभव है। हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द ने सामाजिक जीवन का आधार मानकर अपने लोकप्रिय उपन्यासों की सृष्टि की थी। जनता एक कल्पना नहीं, बल्कि एक ऐसा जीवित समुदाय है जिसमें यथेष्ट वैचित्र्य और विभिन्नता है, यह प्रेमचन्द के उपन्यासों में साफ़ क्लृप्तता है। उन्होंने 'जायजल' के सामंत-बर्ग से लेकर 'रङ्ग भूमि' के किसानों और 'इफ्त' के चमारों तक समाज के भिन्न-भिन्न स्तरों और भिन्न प्रकृति के लोगों का चित्रण किया है। समाज का जीवन एक उठते उठे सारखाने की तरह है जिसमें तरह-तरह की मयानें हैं और लाग्ना छूटे-बड़े क्लृप्तुजें हैं। एक तरफ़ तो हम यह जानना चाहते हैं कि इस कारखाने में कौन सा माल तैयार हो रहा है और उसमें किस आवश्यकता की पूर्ति होगी, दूसरी तरफ़ उसकी अलग-अलग मयानों और लाग्ना क्लृप्तुजों

की हरकत को भी हम देखना और समझना चाहते हैं। इसी तरह उपन्यासकार समाज की गति को पहचानता है, अपने पाठकों को बतलाता है कि समाज कहाँ दिशा में आगे बढ़ रहा है या नहीं। लेकिन इसके साथ-साथ सामाजिक क्रम में जो हजारों लाखों मनुष्य लगे हुए हैं, उनके मानस का, संस्कारों का, परिस्थितियों का बीच उनकी प्रत्येक गति और स्पंदन का वह देखता और परखता है। तभी उसके साहित्य में मांसलता आती है और वह सजीव रूप से पाठक का आकृष्ट करता है। जो साहित्यकार इन विभिन्न रूपों में ही उलझ कर रह जाता है और उनके फोटोचित्र देकर ही संतुष्ट रह जाता है, वह कला के उत्कर्ष तक नहीं पहुँचता। दूसरी तरफ जो सामाजिक मनुष्य को मोटी-मोटी बातों का ही सूत्र रूप में लिए देता है, वह अपनी कला का सजीव नहीं बना पाता। प्रेमचन्द में एक आर प्रगतिशील देशभक्त का दृष्टिकोण है जो विदेशी साम्राज्यवाद से अपना देश का मुक्त करके नये समाज का निर्माण चाहता है, दूसरी आर समाज के विभिन्न वर्गों और हजारों व्यक्तियों के मानस और उनकी परिस्थितियों का ज्ञान भी उह है। अपनी राष्ट्रवादी धारणा की सहायता से वे जो कुछ देखते हैं, उनमें परस्पर सम्बद्धता और कलात्मक सामञ्जस्य पैदा कर सकते हैं। उनकी कला उस फोटोग्राफर के लन्स की तरह नहीं है जिसमें बाह्य जगत् के चित्र इधर उधर गिरे हुए एक असम्बद्ध रूप में सामने आते हैं। उनकी कला बाह्य जगत् के चित्र वाचता है किंतु उनमें परस्पर सम्बन्ध भी स्थापित करती चलता है और इसके कारण उनका वह दृष्टिकोण है जिसमें सामाजिक सर्वपक्ष का मूल दिशा को वे पहचानते हैं। इसके प्रतिमूल विना सम्बद्धता का विचार किये हुए जो साहित्यकार यथाथवाद के नाम पर सामाजिक क्रियाओं या व्यक्तियों का असम्बद्ध चित्रण करेगा उसका चित्रण ऊपर से देखने में

सच्चा लगते हुए भी अवास्तविक होगा। उससे कला में अराजकता उत्पन्न होगी। पश्चिम के कुछ कलाकारों ने इस तरह के प्रयोग किये हैं और कुछ लोग समझते हैं कि उनकी अराजकता का कारण कला के बाह्य रूपों में उनकी आसक्ति है, टेक्नीक पर जरूरत से ज्यादा जोर देकर उन्होंने ऐसे प्रयोग कर डाले हैं जिनमें विषय मौखिक बन गया है और कला का बाह्य रूप भी दुरुद्ध हो गया है। वास्तव में सामाजिक जीवन के प्रति इन कलाकारों का दृष्टिकोण हास्यपूर्ण हो गया है। वे सामाजिक विकास की सम्बद्धता का भूल गये हैं और उसे ग्रहण करने में इसलिये असमर्थ हैं कि विकासक्रम में उभरने वाली शक्तियाँ उनका निहित स्वार्थों का विरोधी हैं। उनकी कला में अराजकता इसलिये नष्ट पैदा हुई कि वे कला के बाह्य रूप पर ज्यादा जोर देते हैं वरन् इसलिये कि उनमें एक व्यापक दृष्टिकोण का अभाव है जिससे कला का बाह्य रूप भांगी बन जाता है।

इसके विपरीत जिन लोगों ने इस व्यापक दृष्टिकोण का अपनाया है, राजनीतिक और सामाजिक उथल-पुथल का हृदयकर्म किया है, सामाजिक संघर्ष में उभरने वाली शक्तियाँ का अपना विरोधी नहीं समझता है, उनका कला में एक नया प्रसार और विस्तार आया है। यह प्रसार विशेष रूप से नया साहित्य में दिखाई देता है। इस युग में सामाजिक जीवन का विविधता और बहुविध स्वरूपता सबसे अधिक उपन्यासों में प्रकट हुई है। जर्मनी में टॉमस मैन, फ्रांस में अराना, अंगरेजी में प्रीस्ले, रूस में शालोवोव कला के इस विस्तार के श्रेष्ठ निदर्शन हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में महाकाव्य (एपिक) के गुणों का जन्म लिया है। उद्देश्य-रहित उपन्यास लिखने में यह सतत रहता है कि जीवन का विविधता दिखाने हुए उसका सम्बद्धता का लोप न हो जाय। लेकिन इन

कलाकारों ने बिखरे हुए वर्गों, व्यक्तियों उनकी भिन्न भिन्न परिस्थितियाँ, भावों, विचारों और कल्पनाओं को एक ही सूत्र में बाँधकर एक ऐसा मर्मर कला का जन्म दिया है जो समुद्र के समान अस्तर-अस्तर नदियाँ या जल ममेटते हुए भी अपनी सीमाओं को यत्न पूरक बनाये रखती है। कला के इस प्रसार में व्यंग्य और हास्य, रौद्रता और आर्द्रता, वास्तव जगत् के यथार्थ चित्र और मनुष्य के अतन्त्र की कामल भावनाएँ—सभी के लिये स्थान रहता है। कुल मिलाकर जिस कलात्मक वस्तु का निर्माण होता है, वह जड़ न होकर सचेत और सम्बद्ध इकाई के रूप में हमारे सामने आती है।

सामाजिक विकास के नियमों को समझने से लेखक को क्या लाभ होगा? उसे समाज शास्त्र पर न भाषण देना है, न लेख लिखना है फिर समाज शास्त्र की पोथी पढ़कर वह समय का अपव्यय क्यों करे? सामाजिक विकास के नियमों को जानने से लेखक का वह पतवार मिल जाती है जिसके सहारे वह जनता के विशाल सागर में अपनी नाव खे सकता है। समाज शास्त्र की पोथी पढ़ने में थोड़ा समय लगाने से वह सामाजिक घटनाओं, व्यक्तियों और वर्गों का उनके उचित सन्दर्भ में देखने की योग्यता पा सकता है। लेखक चाहे किसी छोटी घटना का ही चित्रण करे, वह सफल कलात्मक चित्रण तभी कर सकता है, जब वह उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि को समझे और उस घटना के तत्कालीन तथा भावी प्रभाव और महत्व का आँक सके। समाज गतिशील है और जिन भिन्न भिन्न व्यक्तियों और घटनाओं के सामूहिक रूप में वह गतिशील है, उसे जड़ दृष्टि से देखा और समझा नहीं जा सकता। इसलिये छोटी से छोटी सामाजिक घटना भी एक अगम्यद आकरिम्ब या सीमित घटना नहीं है। उसका प्रभाव समाज के

शोष जीवन पर भी पड़ता है। इसी प्रकार जिन घटनाओं को हम केवल आर्थिक, सामाजिक या राजनीतिक कह कर उनकी ओर संकेत करते हैं, वे अपने सखिलष्ट रूप के कारण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करती हैं। बंगाल का अकाल मूलतः एक आर्थिक घटना थी। अन्न की कमी हुई और लोग भूखों मरने लगे। सभी लोग जानते हैं, इस आर्थिक घटना ने सामाजिक जीवन को भी बुरी तरह हिला दिया था। १९४७ का नर-संहार कभी धार्मिक और कभी राजनीतिक रूप ले लेता है लेकिन उसकी जड़ें हमारे नैतिक और पारिवारिक जीवन में भी दूर तक चली गई हैं। ये बाह्य घटनाएँ हमारी सामाजिक चेतना पर बहुत गहरा असर डाल रही हैं। इन सब बातों को सगत और सम्पन्न रूप से देखने-परखने में सामाजिक विकास का ज्ञान हमारी सहायता करता है। यह दृष्टि मिलने पर हम गतिशील समाज की विभिन्न घटनाओं को जड़ रूप में देख कर सतुष्ट नहीं रह सकते वरन् उनके गतिशील रूप को भी, शोष सामाजिक जीवन पर उनकी प्रतिक्रिया को भी भली भाँति पहचान सकते हैं।

ऐसे युग गीत गये हैं जब सामाजिक विकास की रागडोर सामंती और पूँजीवादी वर्गों के हाथ में थी। मध्यकालीन यूरोप और भारत में सामंती वर्ग ने चित्रकला, स्थापत्य, शिल्प और साहित्य की रचना में यथेष्ट योग दिया। फ्रांस की राज्य क्रांति के बाद यह नवतुल्य पूँजीवादी वर्ग के हाथ में आ गया। उन्नीसवीं सदी में विज्ञान का व्यापक प्रसार और साम्राज्य विस्तार इस वर्ग की देख-रेख में हुआ। उन्नीसवीं सदी के उत्तर काल और पहले महायुद्ध के बाद भारत में उच्च और मध्यवर्ग सस्कृति का नेतृत्व करने के लिये आये। जैसे-जैसे हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन ने प्रगति की, वैसे-वैसे इस बात की जाह्नव होने लगी कि उस पर पूँजीवादी विचार धारा की छाप

रहे या जनसाधारण की प्रगतिशील विचार धारा उस पर हावी हो जाय। यह होइ अभी समाप्त नहीं हुई और १५ अगस्त १९४७ के राजनीतिक परिवर्तन के बाद यह होइ एक संघर्ष का रूप लेने लगी है। पूँजीवादी ही नहीं, उससे भी पिछड़ी हुई सामंतशाही की प्रतिद्रियावादी शक्तियाँ साम्प्रदायिक विद्वेष की स्वाधीनता विरोधा धारा में इस आन्दोलन को डुरा देना चाहती हैं। उनका प्रयत्न है कि इस नरसंहार द्वारा समाज की प्रगतिशील शक्तियों का इतना दुबल और क्षीण बना दिया जाये कि वे देश का सांस्कृतिक और राजनीतिक नेतृत्व करने में बिल्कुल असमर्थ हो जायें। इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रगति के पथ से मोड़कर वे उसे उल्टी दिशा में बहा ले जायें और तब बाहर की साम्राज्यवादी ताकतों के साथ मिलकर हिन्दुस्तान में अपनी प्रतिद्रियावादी सत्ता स्थिर कर सकें। वर्तमान भारत की इस सामाजिक पृष्ठभूमि में आत की प्रत्येक घटना का परखना चाहिये।

यह साचना बिल्कुल गलत होगा कि ये साम्प्रदायिक शक्तियाँ वे राफ टाक प्रती चला जा रही हैं और वे बहुत जल्दी हमारे जीवन को आक्रान्त कर लेंगी। वास्तव में पग-पग पर इन शक्तियों की बढ़ी-बड़ी साधाआ का सामना करना पड़ता है। प्रतिद्रियावाद मनुष्य की जघन्य, पाशनि प्रवृत्तियों को बार-बार उभसाकर भा मनचाही सफलता नहीं पाता और साधाओं से तुरत न जीत कर और भी पागल होकर अपने बर्रर प्रचार में जुट जाता है। इसका पागलपन, अध प्रचार, गगनमेदी चीत्कार उसकी विनय का परिचायक नहीं है। साम, दाम के असफल होने पर ही मनुष्य दण्ड नीति का सहारा लेता है। प्रतिद्रियावादी शक्तियाँ ने भी जिम तरह मिथ्या प्रचार और उपद्रवों का सहारा लिया है, उससे उनकी उत्कट निराशा का निरापन हाता है। ये शक्तियाँ जानती हैं कि भारत का मनुष्य

यहाँ के किसानों और मज़दूरों की स्वाधीनता का भविष्य है। कोई भी सामतवाद या पूँजीवाद, बाहर के किसी भी साम्राज्यवाद की शक्ति की सहायता से अधिक दिन तक यहाँ की असह्य श्रमिक जनता का दगावर नहीं रख सकता। वह दिन शीघ्र आयेगा जब इस असह्य जनता के सगठित प्रयत्न से ये नरसहारी अराजक शक्तियाँ परास्त होंगी और भारत की जनता अपने नये स्वतंत्र जीवन का निमाण करेगी। उस उज्ज्वल भविष्य के साथ हमारी संस्कृति और साहित्य का महान् भविष्य भा जुड़ा हुआ है। इसलिये साहित्य में जनता का चित्रण करते हुए इन प्रतिन्यावादी शक्तियों के खोरलेपन और प्रगतिशील शक्तियों द्वारा उनके विरोध का हम आँसों से आत्मन न करना चाहिये। आज की उथल पुथल में अपनी जनता और साहित्य के उज्ज्वल भविष्य में निश्वास रखते हुए हमें मान्यता के उन सिद्धान्तों की पुन घोषणा करनी चाहिये जो हमारे नवयुग के जागरण का सम्बल रहे हैं। इस भूमि से आगे बढ़ते हुए अपने देश की जनता का चित्रण करने हम अपने साहित्य को भी उसी के सगान श्रमर और विनाशान्मुक्त बना सकेंगे।

( सितम्बर '४७ )



## भाषा सम्बन्धी अध्यात्मवाद

कहने में कितना अन्धा लगता है—साहित्य समाज का दर्पण है और कितने आलोचकों ने नहीं कहा, साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है परंतु कितने आलोचकों ने अपने कहने की सचाई का अनुभव किया है और अनुभव करके उसके अनुसार आचरण किया है ? समाज में मनुष्यों के पारस्परिक संबंध बदले हैं, उनके भावों और विचारों में परिवर्तन हुए हैं, परिस्थितियाँ बदली हैं, और उनके साथ "मनुष्यत्व" की परिभाषाएँ भी बदली हैं। साहित्य के भाव, विचार, उनको व्यक्त करने के ढंग गतिशील युग प्रवाहमें बदलते रहे हैं। उनके इस बदलने के क्रम को, इस बहाव का, स्थायी कक्षा जा सकता है। परन्तु साहित्य और समाज के संबंध की यह व्याख्या स्वीकार करनेवाले लोग कम हैं।

सामाजिक परिस्थितियों का जैसा प्रभाव भावों और विचारों पर पड़ता है, वैसा ही उनको व्यक्त करनेवाले शैली, व्यंजना के ढंग शब्द-चयन, वाक्य विन्यास आदि पर भी पड़ता है। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा था—

“गिरा अरथ जल बीच सम, वदियत भिन्न न भिन्न।”

शब्द और अर्थ के परस्पर अटूट संबंध का भूलकर ही लोग बहुधा भाव-पक्ष, कलापक्ष आदि अलग अलग पक्षों की आलोचना करने बैठ जाते हैं। आलोचकों की यह एक “चिरन्तन” प्रवृत्ति है कि वे साहित्य में “चिरन्तन” मिथ्याता को व्याख्या करते हैं और अपने सिद्धान्तों के अमर सत्य में साहित्य का अमरता का बाधने का प्रयास करते हैं। जिस प्रकार वे एक दूसरे के सिद्धान्तों का खण्डन

करते हैं, उससे यह सिद्ध हो जाता है कि सिद्धान्तों की अमरता अत्यन्त मरणशील है। फिर भी मनुष्य की सहज अमर होने की उाष से जैसे प्रेरित होकर वे अमर सिद्धान्तों की रोज में लगे ही रहते हैं। भाषा और विचारों में ऐसे सिद्धान्त निश्चित करने के साथ-साथ वे भाषा सम्बन्धी सिद्धान्तों की भी सृष्टि करते हैं और अपनी सृष्टि का ब्रह्मा की सृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं मानने। भाषा-सम्बन्धी यह अध्यात्मवाद युग के साहित्यिक और सामाजिक परिवर्तन-क्रम के साथ बदलता रहता है।

भाषा-सम्बन्धी अध्यात्मवाद के अनेक रूप हैं। मैं कहता है कि कविता की वही भाषा होनी चाहिये जो जनता की भाषा हो। दूसरे कहते हैं, कविता की भाषा साधारण गोलचाल का भाषा से सदा भिन्न रही है और रहेगी। भारतीय आचार्यों ने भाषा और विचारों के विमानन के लिये नौ रसों की व्याख्या का और उनकी सिद्धि के लिये शब्दा की पर्या, कामला आदि वृत्तियाँ निश्चित रीं। यह विमानन भाषा और विचारों की भिन्नता के साथ शब्द-चयन में भा आवश्यक परिवर्तन के सिद्धान्त को मानता है। रातिकालीन रसियों ने शृङ्गार रस का छोड़कर अथ रसों की सिद्धि के लिये कवल शब्द-चयन के एक विशय क्रम को अपनाया और समक लिया कि इससे उन्हें सफलता मिल जायगी। मतिराम, पद्मकर आदि ने भी वाररस के छन्द लिखे, परन्तु उनके वाग्नाल में वह रस न आ सका जो भूषण के छन्दों में है। भूषण की सापन्न सफलता का रहस्य उनकी जातीय भावना है जिसने पर्यावृत्ति का विशेष चिन्ता न करने अपने लिए शब्द-चयन की अनूठी शैली ढूँढ निकाली।

भाषा में अत्यधिक मिठास की खान सामाजिक हास का चिह्न है। जैसे हा वाक्पटुता, जवान का चटरपारा, अत्यधिक परिष्कार और बनाव-सिगार आदि ऐसे गुण (?) हैं जो पतनकालीन साहित्य

में मिलते हैं। विद्रोही कवि जो नये भाव विचार लेकर आया है उनके लिए शैली भी ढूँढ निकालता है। रूढ़िवादी अपने बुनियादी पुराण पर आत्ममग्न होते देखकर उसे भाषा और संस्कृति का शत्रु घोषित करते हैं। हिंदी के पुराने कवियों में भाषा को देव विहारी से अधिक किसने सँवारा है, परन्तु साहित्यिक और सामाजिक प्रगति में उनका कौन सा स्थान है ? अंग्रेजी साहित्य में पोप से अधिक भाषा को सम्य और परिष्कृत किसने बनाया है ? परन्तु पोप और उसके साथियों ने ही रोमांटिक कवियों के विद्रोह को अनिर्णय कर दिया और उस रोमांटिक विद्रोह के महत्व को कौन अस्वीकार कर सकता है ?

तुलसीदास ने चाहे स्वांत सुराय लिखा हो चाहे बहुजनहिताय, इसमें सदेह नह। कि उन्हें अपने आलोचकों से काफी शका थी और इस शका को प्रकट करने के लिये उन्होंने मानस में काफी छन्द लिखे हैं —

“हँमिहँ कूर कुटिल कुविचारी । जे पर दूपन भूपन धारी ॥  
निज कपित्त फेहि लाग न नीका । गरस होउ अयव अति पीका ॥  
जे परमनित मुनत हरपाहीं । ते वर पुरुष उहुत जग नाहीं ॥”

जगान ना चटखारा ढूँढनेवाले कहेंगे, चौपाई छंद में अपने “पर-दूपन भूपन धारी” इतना बड़ा समास रग्न दिया है। आप “भाषा” लिख रहे हैं लेकिन शायद विद्वत्ता दिग्गमने के लिए लम्बे लम्बे समस्त पद भी रखते जाते हैं। दूसरी पक्ति अच्छी है, लेकिन तीसरी में “परमनित” क्या यला है। भला कभी कोई परमनित भी कहता है ? वैसाही “वर पुरुष” का प्रयोग है। अगर कोई यह, है वर कविजी ! आपने रामचरितमानस नामक वर काव्य लिखकर एक वर कार्य किया है तो आपको कैसा लगेगा ! ऐसे ही आप का

“भाषा भन्ति” है। “म” के अनुप्रास पर आप लट्टू हो गये लेकिन यह न देखा कि भाषा-भन्ति कोइ कहत। भी है या नहा। आपने ठोकर लिखा है, “हँसिये जोग हँसे नहा ग्यारी।” आपके इस महाभाव्य में मुश्किल से डेढ़ सौ पक्तियाँ ऐसी निम्लेंगी जा राजचाल की भाषा में साधारण वाक्य-रचना के नियमों के अनुसार लिखी गई हों। देखिए राजचाल की भाषा में सफ़्त वाक्य रचना या हानी है—

“इच समेटि भुन कर उलटि, रारी शीस पट डारि।

काको मन रांधे न यह, चूरी रांधनिहारि ॥”

क्या दाहा लिखा है जैसे फमान से तीर निकल गया हो। जुड़ा बाधन और मन रांधने के “चमत्कृत” प्रयोग पर जरा गौर फरमाइए !

ऐसे आलोचकों को हम गास्वामीजी के शब्दों में “कुटिल कुचिचारा” ही कहेंगे।

तुलसीदास और विहारी दोनों ही अपना अपनी भाषा शैलियों के सफल कवि हैं। उन शैलियों में उनसे अधिक किसी दूसरे का रूपलता मिली ही नहीं। विहारी के दाहा की भाषा मानस की भाषा की अपत्ता रोलचाल की भाषा के अधिक निम्न है। दोनों का गिलाफ़ दरसने से स्पष्ट है। जायगा कि तुलसीदास ने अधिकतर अपना भाषा गढ़ा है और उनकी पद-रचना गद्य की भाषा के बहुत कुछ प्रतिकूल है, फिर भी भारतीय जनता को तितना उनके “अष्टपटे रीन” प्रिय है, उतना “चूरी रांधनिहारि” पर निंदा हो जानेवाले कवि के नहीं। इन दोनों कवियों के भाषासम्बन्धी भेद का कारण उनकी मसृष्टि और विचारधारा का भेद है। वही भेद जिसे हम Roman ticism और Neo-classicism के शब्दों द्वारा व्यक्त करते हैं।

विहारी ने अपनी सतसई इसलिये लिखी थी—

“हुकुम पाय जै साह को, हरि-राविका प्रसाद ।  
करी विहारी सतसई, मरी अनेक सवाद ॥”

जै साह का हुकुम पहले है, हरि-राविका का प्रसाद पीछे । सतसई की रचना एक दरबारी कवि ने अपने अन्नदाता को रिक्ताने के लिये की है । उसने इस गाल की पूरी चेष्टा की है कि उसकी रचना सरल हो, उसमें चमत्कार हो और अन्नदाता के हृदय में थोड़ी गुदगुदी हो जिससे दोहा कहते ही उसकी धेला से स्वर्णमुद्राएँ निकल पड़े ।

तुलसीदास किसी जै साह या अकबर शाह का मुँह देखने न गये थे । उन्होंने अकबर के साम्राज्य में जनता की निर्धनता को देखा था । वह स्वयं ऐसी श्रेणी के व्यक्तियों में थे जिनके लिए चार दाना अन्न ही चारा पल—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—क परापर हाता है ।

वह जानते थे कि “साधरी का मोइबा ओन्बो भूने गेस को” क्या हाता है । अन्न के लिए लोगों का आत्मसम्मान बेचते उन्होंने देखा था । इसीलिए लांछना के स्वर में उन्होंने कहा था—

“जनि डोलनि लालुप वृरर ज्यो,  
तुलसी भजु काशलराजहिं रे ।”

जनता के और अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए उन्होंने कोशलराज की शरण ली । अकबर का जैसे चुनौती देकर उन्होंने अपने आदर्श सम्राट् के लिए लिखा—

“भूमि सस सागर मेरलला ।  
एक भूप रघुपति कागला ॥”

फिर माना इससे भी सतुष्ट न होकर उन्होंने कहा—

“धुवन अनेक राम प्रति जासू ।  
यह प्रभुता बहु उदुत न तासू ॥”

तुलसीदास ने दुनिया की ठाकरें साइ थी। भक्ति की शिला पर वे इन सब आघातों को व्यर्थ कर देना चाहते थे। अवश्य ही राम का नाम लेने से समाज के आर्थिक कष्ट कम न हो सकते थे। कवि चाहे जितना कह कि नाम के भरोसे उसे परिणाम का चिन्ता नहीं है, परन्तु परिणाम तो सामने आयेगा ही। दरिद्रता से लुब्ध हाजर तुलसीदास ने राम राज्य की सृष्टि की, उनके मनोहर गीत गाये। परन्तु उनका रामभक्ति किसी रोमांटिक कवि के पलायन की भाँति निर्दोष क्यों नहीं है ! उनकी कविता का सजीवता का और उनके रामचरितमास के सामानिक महत्त्व का यही कारण है कि वह एक विद्रोही कवि थे। अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए उन्होंने निधन बने रहना स्वीकार किया। उनकी वाणी ने साधारण जनता में आत्म सम्मान का भावना पैदा की। क्षुद्र से क्षुद्र मनुष्य में भी यह भाव पैदा कर दिया कि वह अपनी भक्ति से समाज के गड़े से बड़े लोगों की बराबरी कर सकता है।

अन्य विद्रोही कवियों की भाँति तुलसीदास की भाषा भी सरस नहीं एक भी नहीं है। नहीं वह सस्कृत-बहुल है, कहा साधारण बोल-चाल की सी है, कहा फीफा भा है। विहारी मतिराम या देव का भी वाक्पटुता का उभमें प्रायः अभाव है। विनयपरिभा ने अनेक उत्कृष्ट पदों में एसा लगता है जैसे हृदय ने आवेग में शब्द प्रवाह अपनी सीमाएँ तोड़ रहा है।

“ज्यों-ज्यों निरुट भया चरों कृपालु, त्यों-त्यों दूरि-दूरि परधा हों।  
तुम चहुँ झुगरस एक राम हा हूँ रासरो, जदपि अत्र अवगुननि भरधा हा ॥  
बीच पाइ नाच बीच छरनि छरयो हों।

हों सुवरन किया वृपत भिगारी करि, सुमति तें तुमति करधा हों ॥”

इस तरह का पनियों में विहारी के दोहा जैसी स्वच्छता नहीं है। उनमें एक अनियमित सा स्वर प्रवाह है जो असाधारण अनुभूति

का परिचायक है और मनुष्य की उन भावनाओं के अधिक निरूपक है जो छिछली और उनाचटी नहीं हैं।

प्रत्येक समय कवि की भाँति तुलसीदास भाषासंबन्धी अध्यात्मवाद को छिन्नभिन्न कर देते हैं। व्यंग्य और हास्य की पक्तियों में उनकी भाषा साधारण बोलचाल की सी हो जाती है—

“टूट चाप गहि जुरिहि रिसाने । बैठिअ होइहि पाँव विराने ।”

दोहा और चौपाई जैसे छंदों में लंबे समस्त पद देते हुए उन्हें हिचक नहीं होती।

“रामचंद्र मुलचन्द्र चमोरा”, “सरद-सबरी नाथ मुल” “सरद परब निधु-बदन बर”, “तरुन-तमाल बरन” आदि

समस्त पद प्रति पृष्ठ में विररे हुए मिलेंगे। शब्द-चयन में उ होने इस बात की चिंता नहीं की कि गद्य में या बाल-बाल में इन शब्दों का इसी प्रकार प्रयोग होता है या नहीं। यदि देश में उन पर देवता के ही समान लोगों का श्रद्धाभाव न होता तो अवश्य कोई ड्राइडेन जैसा कवि यह चेष्टा करता कि उनकी भाषा को फिर गढ़नर उस आदर्श तक लाये जा सिधारी के दोहों में चमका है।

शेक्सपियर इंग्लैंड का एक प्रकार से राष्ट्रीय कवि है। अपने साहित्य पर अभिमान प्रकट करने के लिए अंग्रेज शेक्सपियर का नाम लेना काफी समझते हैं। इसलिये अंग्रेज आलोचकों द्वारा शेक्सपियर की छीछालेदर कम हुई है। फ्रांस और जर्मनी के रीतिकालीन आलोचकों ने उसकी भाषा और भावों की रूब रूबर ली थी। फिर भी १८ वीं शताब्दी के अंग्रेज आलोचकों ने भाषा और भाव की नफ़ासत खोजते हुए उसकी रचनाओं में कम नुस्खाचीनी नहीं की। जॉन्सन उस समय के सबसे बड़े आलोचक थे। शेक्सपियर के वह प्रशंसक

ये। लेकिन शेक्सपियर के शब्द-प्रयोग पर उन्हें हँसी आ जाती थी। मैकबेथ की सुप्रसिद्ध पत्तियाँ हैं—

“Come, thick night !

And pall thee in the dunnest smoke of hell,

That my keen knife

See not the wound it makes,

Nor heaven peep through the blanket of the dark,

To cry, Hold, hold !”

जॉनसन ने स्वीकार किया है कि इन पत्तियों में महान् कविता है परन्तु शब्द-चयन उन्हें पसंद नहीं आया। रात्रि का चित्र उन्हें पसंद आया है, परन्तु “dun” विशेषण ऐसा है जो अस्त-मौलों में अधिक मुना जाता है। इसलिए उसका प्रमाण कम हो गया है। ऐसे ही knife शब्द पर उन्हें आपत्ति है। यह शब्द सरल तो है परन्तु फूहड़ है। क्योंकि कसाइ और रसाइये इस शस्त्र का प्रयोग करते हैं। Heaven के दृढ़ से मैकबेथ उचना चाहता है, लेकिन “who, without some relaxation of his gravity, can hear of the avengers of guilt peeping through a blanket !” दृढ़ देनेवाले को कमल में से काँकते देखकर किसे हँसी न आ जायगी ! यदि माया सम्बन्धी परिष्कार की भावना शेक्सपियर के समय में वैसी ही हाती, जैसी जॉनसन के समय में थी, तो शेक्सपियर क महान् नाटक कभी न लिखे जाते। शेक्सपियर से पूर्ण सहानुभूति होते हुए भा जॉनसन के लिए उसके महान् दुत्तान्त नाटकों को पूरी तरह हृदयगम करना कठिन था। शेक्सपियर के हात्परस-पूर्ण और सुत्तान्त नाटकों से



उह अधिक प्रेम था। इसका कारण यही था कि उन पर एक ऐसी संस्कृति छा गयी थी जिसमें भाषा के ऊपरी रंग-रंगारंग को अत्यधिक महत्त्व दिया गया था, परंतु गभीर भावों और विचारों तक निसकी पहुँच न थी। शेक्सपियर के दुःखान्त नाटकों में जॉनसन को प्रयास के चिह्न दिखते थे मानों शेक्सपियर जो कहना चाहता है, उसे नहीं कह पा रहा। सुखांत नाटकों में बात यह न थी। "In his tragic scenes there is always something wanting, but his comedy often surpasses expectation or desire" उच्चैःश्रवा शतान्दी के आलोचकों ने इस धारणा को बदल दिया।

समाजवाद और प्रगतिशील कवियों के लिए न तो रोमांटिक रूढ़ि आदर्श हैं न रीतिकालीन। परन्तु दोनों की तुलना में अधिक महत्त्व रोमांटिक कवियों को ही दिया जायगा। रीतिकालीन कवियों की संस्कृति ही ऐसी होती है कि प्रत्येक देश और समाज का भला चाहनेवाला उमंग शत्रु हो जायगा। उनकी भाषा पर दरगारी संस्कृति की गहरी छाप रहती है, इस बात से कौन इन्कार करेगा? प्रगतिशील रूढ़ि के लिये भाषा का सरल और सुगम रंग-रंगारंग आवश्यक है। परन्तु रीतिकालीन और डिफेडेंट कवियों की भाषा-माधुरी से उसे रचना हागा। इंग्लैंड में आँस्कर वाइल्ड, ओ शीनेसी, पटर आदि इसी तरह के डिफेडेंट साहित्यिक थे। पुराने कवियों से भाव चुराकर उन्होंने भाषा और शैली में एक रंग-रंगारंग मिठास पैदा कर दी थी। उनका आदर्श स्वस्थ साहित्य के लिये घातक है। ऐसे ही रीतिकालीन दरगारी कवियों का आदर्श यह रहा है कि जो कुछ वे कहें उसमें समझदार अवश्य है, जिससे सुनने वाले वाह-वाह कर उठें। जो बात कही जाय वह चाहे महत्त्वपूर्ण न हो, कहने का ढंग अनोखा होना चाहिए। इस रीतिकालीन

आदर्श को साहित्य के लिए चिरतन मान लेना साहित्य के विकास में कटि विज्ञाना है।

आधुनिक हिन्दी क रोमांटिक कवियों ने रीतिकालीन परंपरा के विरुद्ध भाति की है। उनकी भाषा में उतना ही अटपटापन है जितना संसार की अन्य किसी भाषा के रोमांटिक कवियों में। उन्होंने भाषा को एक नया जीवन दिया है। विचारा में एक कान्ति की है। हिन्दू, ईसाई, मुसलमान धर्मों और मनमतान्तरों की सामा-रेखाएँ ध्वस्त करके उन्होंने एक मानव सुलभ ससृष्टि की नींव डाली है। प्रत्येक रोमांटिक आन्दोलन की भाति सधर्म से दूर भागने का प्रवृत्ति भा उनमें है। परन्तु इन रोमांटिक कवियों में से ही कुछ ने पूर्व विद्रोह को आगे बढ़ाते हुए उस प्रवृत्ति का गला घांट दिया है। इन्होंने भाषा सिखाने के लिए उस्ताद जौक या उस्ताद दाग या उनक नक़्काला की ज़रूरत नहीं है। एक नवयुवक कवि ने अपने साथियों को चुनौती दी है—

“आ धनी कलम के, अखि खान,  
अब वर्तमान उन ! सत्य बोल !  
इस दुनिया की भाषा में कुछ  
घर की कह समझें घर वाले !  
उनके जीवन, की गाँठ खोल !”

उसके साथी नवयुवकों ने इस चुनौती को स्वीकार किया है। नये साहित्य में ये लोग जो काम कर रहे हैं, उसे कोई भी अखिखाला देख सकता है।

## कविता में शब्दों का चुनाव

सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक फ्लॉबर्ट के अनुसार हम एक ही सभा द्वारा अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं, एक ही क्रिया उस विचार को गति दे सकती है और केवल एक विशेषण उसकी व्याख्या कर सकता है। फ्लॉबर्ट के इस सिद्धान्त का क्रियात्मक व्यवहार द्वारा चरितार्थ करनेवाले उसका अनिश्चित अनेक देशी और विदेशी लेखक हुए हैं। उन्होंने अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त शब्दों का रखने का चेष्टा की। अनेक स्थला पर यह सौज साधारण बुद्धिमत्ता का अतिव्ययण करके हास्यास्पद भी हुई है। परन्तु सच पूछा जाय, तो सन काल, सन देशों में करि यही करते चले आये हैं। फ्लॉबर्ट गद्य लेखक था, पर वह गद्य को भी वैसे ही कलात्मक ढंग से लिखना चाहता था, जैसे एक कवि अपनी कविता का। कवि की शिक्षा-दीक्षा के अनुसार उसका शब्द भांडार समुचित अथवा विस्तृत होता है, उसी में से चुन-चुनकर वह अपने भावों के लिए शब्दसूत्रों का इन्ट्र करता है। उदाहरण उसकी भावाभिव्यक्ति के लिए उसका सामने अनेक शब्द आते हैं, परन्तु उनसे उसे सतोष नहीं होता। अपनी प्रतिभा के अनुसार वह ऐसे शब्दों को राज निकालता है, जो उसके भावों को उसकी अनुभूति के अनुकूल पाठकों के हृदय में उतारते हैं। शब्द-सफला के बिना दूसरा व्यक्ति कवि के भावों का समझ नहीं सकता। अतः कवि का कला का एक प्रधान अंग शब्दों का चुनाव है। यह भावुक अथवा विचारक दोनों ही तर तक सफल कवि नहीं हो सकता जब तक अपने भावों और विचारों को भाषा में मूल करने के लिए

उचित से उचित शब्दों को न चुन सके। बड़े कवि वे होते हैं, जिनके भावा और विचारों के साथ उनकी भाषा में स्थितिलता नहीं आने पाती। उनका शब्दा पर ऐसा अधिकार होता है कि वे, उनकी रुचि पर निर्भर, उनकी आका का पालन करते हैं। उनमें ऐसा जीवन रहता है कि वे कवि के अर्थ को पुनारते चलते हैं। हमें यह भासित हो जाता है कि उसने उच्चन सभेत पर उँगला रक्खी है, उससे इतर शब्द उष स्थाने पर कदापि उपयुक्त न होता। निम्न श्रेणी के कवियों में ऐसा सामानस्य कम मिलता है। यदि उनका शब्दों पर अधिकार है, ता भावों और विचारों को कमी हैं, यदि भाव और विचार हैं तो मुच्चारु शब्द-वचन नहीं है। जहाँ उनका सम-सामानस्य हो जाता है, वहाँ सुन्दर कविता की सृष्टि होती है।

शब्द चुनते समय कवि ना ध्यान सभेत पहले उनके अर्थ की ओर जाता है। एक ही अर्थ के दोतरक बहुधा अनेक पर्यायवाची शब्द हाते हैं, परन्तु वह उनमें से किसी एक की लेकर अपना काम नहीं चला सकता। समान अर्थ होने पर भी उनके प्रयोग में यत्किचित् विभिन्नता होता है। जैसे मुक्त स्वतंत्र, स्वच्छन्द, अरध आदि शब्द एक अर्थ बताते हुए भी अपनी अपनी कुछ लघु अर्थ विशेषता रखते हैं। निम्न परिभा में 'मुक्त' शब्द का प्रयोग किया गया है, वहाँ स्वच्छन्द रगने से अर्थ का अनर्थ हा जाता।

“पर, क्या है,

सय माया है—माया है,

मुक्त हो सदा ही तुम,”—(निराला)

शब्दों का अर्थ जन प्रयोग पर निर्भर रहता है। शब्द सभेत मात्र हैं और अर्थ विशेष के दोतरक हमलिये हाते हैं कि सय लाग पैसा मानते हैं। मेरी एर भांती है, वह वचन में शककर का कड़आ और मिच ना भाटा कहती थी। उगका किना न एसा ही

सिखा दिया था। बाद का उसे यह सीखने में कुछ अड़चन मालूम हुआ कि शक्कर कड़ुई नहीं, मीठी होती है। जन प्रयोग से शब्दों का बहुधा कुछ से कुछ अर्थ हो जाते हैं, जैसे पुगव से पोंगा। विद्वानों को अपना व्याकरण ज्ञान एरु और रख कर ऐसे स्थलों में शब्द का प्रयुक्त साधारण अर्थ ही ग्रहण करना पड़ता है। ऐसा भी देखा गया है कि प्रतिभाशाली कवि शब्दों के निगड़े प्रचलित अर्थ को छोड़कर उनके ठेठ व्याकरणसिद्ध अर्थ का ही अपनी कृतियाँ में मान्य रखते हैं। अंगरेज़ी में एरु प्रसिद्ध उदाहरण मिल्टन का है। लैटिन शब्दों का प्रयोग उसने उनके धात्वर्थानुसार किया है। इसलिए विना टिप्पणीकार की सहायता के उसकी कविता का अर्थ केवल अंगरेज़ी का ज्ञान रखने वालों की समझ में ठीक-ठीक नहीं आ सकता। हिन्दी में शक्कर ऐसे श्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जिनका एक अर्थ प्रचलित होता है, दूसरा धातु प्रत्यय के अनुसार। निरालाजी ने 'भारत,' 'नभ' आदि शब्दों का इसी भाँति प्रयोग किया है। कहीं-कहीं केवल धात्वर्थ ग्रहण किया है, जैसे—

‘वसन विमल तनु बलकल,

पृथु उर मुर पल्लव-दल,”—में मुर शब्द का।

ऐसे स्थलों में पाठक के लिए यह खतरा रहता है कि वह धात्वर्थ करते समय कवि के अभीप्सित अर्थ को छोड़कर शब्द और दूसरा ही अर्थ निकाल ले और अपनी प्रतिभा की कवि की प्रतिभा समझने लगे अथवा जहाँ कवि चाहता था कि शब्द का प्रचलित अर्थ ही लिया जाय, वहाँ वह एरु दूसरा अर्थ खान निकाले।

शब्द के अर्थ के पश्चात् कवि उसकी ध्वनि, उसमें व्याप्त सगीत का विचार करता है। अनेक शब्दों का उच्चारण-ध्वनि और उनके अर्थ में साम्य दिखाई देता है। जैसे 'समल' शब्द की उच्चारण मधुरता उसके अर्थ में मगानुभूति रखती है। 'दलचल,' 'उधल

‘पुपल’, ‘बकबक’, ‘टँ टँ’ आदि का शब्द ही उनका अर्थ बताता है। अमनी कला का गाता कवि शब्दों का इस प्रकार प्रयोग करता है कि उच्चारण ध्वनि उनके अर्थ को आर पना देती है। वह स्वर और व्यंजनों की शक्ति का पट्टानता है, अपना भाव स्पष्ट करने के लिए ध्वनि का उतना ही आश्रय लेता है, जितना अर्थ का। पतजा ने “पल्लव” के प्रवेश में लिखा है, किञ्च भाति

“इद्रधनु-ना आशा न छार  
अनिल म अछार कभी अछार” —

में “आ का प्रसार आशा न छार न। पैलापर इद्रधनुष का तरह अनिल म अछार अरना देता है”। गान्ध्यामा तुलसीदास म म्बर-विस्तार द्वारा भावव्यञ्जना क अनेक सुन्दर उदाहरण हैं, जैसे—

“कहि हतु गनि गिमानि  
परमत पानि पाति निरारइ”—

में ‘आ’ का विस्तार गता न हाथ उदान का और गना के उमके दूर हटाने का भली भांति व्यक्त करता है। इसी भांति व्यञ्जना का पत्र करन कवि अपने अर्थ की पूर्ति करता है। कुशल कलाकारों में स्वर-व्यञ्जना का नयन गभावापर गोप्य रहता है। ये शब्दों का हमारे ऊपर यथञ्छ प्रभाव डालते हुए भा हमें यह नहा जानने देते हैं। शब्दों का ध्वनि का ऐसा अद्भुत, अनूठेय प्रभाव हमारे ऊपर पड़ता है कि उसका विश्लेषण करना प्रायः असंभव होता है। शब्द-मार्गीत और शब्दार्थ म पारस्परिक मत्रा बाँझनीय जान पड़ता है। अर्थ छोड़कर अथवा उस गौण मानकर न कवि ऊपर शब्द-मार्गीत द्वारा अपनी बात कहना चाहता है ता उसका काय प्रत्यन्त कठिन हो जाता है। कविता में यह सगत का भावनादरता लाना चाहता है। आरु

कलाकार हममें सफल भी हुए हैं। शब्दा के अर्थ की अपेक्षा उनका संगीत कवि के भावों का व्यक्त करने में अधिक महत्व हुआ है। परन्तु अत्रिंशत् मानुषान् शब्दां का बहुल प्रयोग करके शब्द माद के कारण कविता का वास्तविकता से दूर भा जा पड़े है।

कहा जाता है कि शब्दा की उच्चारण-ध्वनि में कवि उनके रूप, रंग, आकार आदि भा देख सकता है। "पल्लव" के प्रवेश में पतजा ने शब्दा का ध्वनि क अनुसार उनका रूप, रंग और आकार का पहचानने की चेष्टा की है। ऐसा करना बहुत कुछ कवि के सूक्ष्म भावगुण पर निर्भर है, यद्यपि उनके भा वैजायन्त कागण ही सकते हैं। पतनी ने प्रभजन, पवन, समार आदि का अलग-अलग रूप निश्चित किया है। 'तिलक' स भिन्न 'भीचि' उनके अनुसार जैसे किरणों में चमकता हुआ है। प्रांमामा कवि काव्य के अनुसार उपयुक्त शब्दों का चयन करके भिन्न रंगमाला चित्र ग्राह्य जा सकते हैं, मूल अर्थ द्वारा कर्त्तर न, रग्न शब्द का ध्वनि से मिलन हाकर। उसका कृता था कि शब्द की ध्वनि में रेखाओं भा होती है। उनके द्वारा रंगमाला के आकार बनाय जा सकते हैं।

पाश्चात्य कलाकार—विगपत्तर १६वां शताब्दी के रामाटिना—ने ललित कलाओं का सीमाश्रय का भंग करने की चेष्टा की थी। कारन्दिन्सका (Karndinsky) नामक कलाकार ने संगीत को चित्रित करने का प्रयत्न किया था उसके अनुसार पहले गीत रंग में फलूट का ध्वनि निकलता है, अत्यन्त गहरे नीले में आगा की, और भी गंगा भांति। त्रिगलाची का मने यत् अनेक बार कहते सुना है कि उक्त विन्दा विन्दा कवियों का कविता विशेष रंग में रंगा जान पड़ती है। अर्थात् नीले रंग में, कानिदाम की नीले रंग में। जा कुछ भी हा, शब्दों में चित्र और संगीत कला के भा तत्पर विहित है और सूक्ष्म मातृत्वियायला कवि उनका प्रयोग करता है।

साधारणतः कुछ शब्द दूसरों में अधिक कवित्वपूर्ण माने जाते हैं। ऐसा उनका सुन्दर ध्वनि, ग्रथ आदि के कारण होता है। कवि के लिए उन शब्दों का प्रयोग अधिक सरल होता है, तिनका एक बार कवित्वपूर्ण रूप में प्रयोग हो चुका हो। चंद्रमा, बसंत, शान्तल मद पवन आदि न जाने कब से शब्दकार के उदात्त विभाव होते चले आ रहे हैं। इमलिय कवि चाँदे में मा शब्दकार रगन के लिये उदात्त का कल्पना करता है, अथवा गत म मा पूरा शब्द का। इनका शब्दकार भावनाओं के साथ ऐसा नाता जुड़ गया है कि उनका नाम लने से वे भावनाएँ महसूस हो उठती हैं। इस प्रकार के प्रभावों के प्रयोग में कवि के लिये लाभ मिले, दोनों सम्भव हैं। नया प्रभाव स्वयं निरालोक का अपना पुराने का प्रयोग करना अशक्य हो सरल है। साथ ही जो लोग उनके एक शब्द आदी हो गये हैं, वे उन्हें आसानी से समझ सकते हैं, परन्तु जो उनका बहुत बार प्रयोग हो चुका है तो उनका जीवन नष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिए कमल इतना बार सुन्दर सुगंध, लावन, चरण आदि का प्रयोग हो चुका है कि अब उनका शब्दकार नहीं रहा। कमल इतना सुन्दर होता है, उसका गंध इतना मधुर,—कमल कहने से अब साधारणतः इन बातों का सुननेवाले का अनुमान नहीं होता। एक प्रकार में तो कविता में समा शब्दों का प्रयोग हो सकता है, कलाकार के लिये कुछ नया शब्दकार नहीं पर ऐसा वह अपने सदैव के अनुभवा कर सकता है। अन्य शब्द ऐसे हैं, तिनका पैसा, व्यंग्य आदि की हल्की कविता में प्रयोग समाधान होता है, उच्च भावों, विचारगोली कविता में नहीं। उनका एमो रस्तुआ न सम्बंध रहता है, तिनका स्मरणमान ऊँचा कविता के प्रभाव में घातक हो सकता है। जैसे भीमियागमशरणा गुण की इन पाल्या में ऐसे प्रभावों का प्रयोग दुःसा है, जो कविता के प्रभावसादन में बाधक होते हैं—



‘चक्रपाणिता तज, धोने को  
पाप-यक के परनाले,  
आहा ! आ पहुँचा मोहन नू  
विप्लव को झाड़ूवाले ।’—

( शुभागमन )

यहाँ झाड़ू और परनाले के प्रतीक अपने निम्न नाते रिश्ता ( Associations ) के कारण “मोहन” का समर्ग पाकर भी नहीं चमक उठते । परंतु प्रतिभाशाली कवि सदा से कविता के योग्य न समझ जानेवाले शब्दों का साहस के साथ प्रयोग करते चले आये हैं । ऐसा न करने से कविता का जीवन नष्ट हो जाय और थोड़े से शब्दों का कवित्वपूर्ण जान कर कवि उर्दी का लौट कर नर प्रयोग किया करें । कवि का स्पर्श पाकर चुद्र से चुद्र शब्द भी चमत्कार कर सकते हैं ।

कवि अपना शब्द भटार उठाने के लिए अनेक उपाय करता है । माधारण गल-चाल के शब्द उसके जाने ही जाने हैं पुस्तकें पढ़कर वह और भी अपने काम के शब्द चुनता रहता है । उसके शब्दों का हम मुख्यतः इन श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं ।

( १ ) ऐसे शब्द, जिन्हें वह किसी मृत पुरानी भाषा से लता है, निमक्ता उसका भाषा से अनिष्ट सम्बन्ध है । अँगरेज़ लखकों ने इस प्रकार लैटिन से तमाम तत्सम शब्द लिये हैं । हिन्दी-कवियों ने संस्कृत से शब्द लेकर अपने भाषा का भरा है । माधारण भाषा व्यवसाय के लिए ऐसे शब्द दरकार नहीं हान, दाशनिक् विज्ञा उच्च विज्ञान की अभिव्यक्ति के लिये कवि को दूसरा भाषा के नरपूरे भाष की सहायता लेनी पड़ती है । तत्सम शब्दों का प्रयोग करते समय कवि का इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह अपनी

भाषा में उन् दस प्रकार लाये कि उसकी चातीयता नष्ट न होने पावे। मिल्टन ने लीटिन शब्दों का बहुतायत से प्रयोग किया है। उम पर यह अभियाग लगाया जाता है कि उमने अँगरेजी के चातीय जीवन का ध्यान नहीं रक्खा। “मुधा” में प्रकाशित निरालाभा के ‘तुलसीदास’ की भाषा भी कहा-कहा इसी दास से दूषित हो गई है। संस्कृत शब्द-बाहुल्य से हिन्दा की स्वतंत्रता दब गई है। प्रसादजी के नाटकों में संस्कृत शब्दावला नहा अस्वरती। उनमें लिखित घटनाएँ इस काल की नहीं, चंद्रगुप्त और अजातशत्रु को आज की चलता भाषा में बात करते हुए मुनकर हम उनकी सत्ता पर संदेह हा सकता है। कलाकार ने विषय के साथ भाषा में तदनुरूप विचित्रता ला दा है।

( २ ) दूसरी भाषा के पास न जाकर कवि अपनी भाषा के पुराने भूले हुए शब्दों का पुनर्जाँवित करता है। ऐसे शब्दों का प्रयोग किया पुराने विषय पर लिखत समय कवि का कला को चमका दाता है। अप्रचलित शब्दों के कारण पाठक अपने युग से दूर मीती हुए जाता के वासुमण्डल में पहुँच जाता है। यदि सभी शब्द अप्रचलित ही, तो वह समझ न सकेगा। कुछ के जाने से कवि की कृति में पुरानेपन का उम आभासमात्र मिलता रहता है। १६वीं शताब्दा के जिन अँगरेज़ लेखका ने पुगने गीता (Ballads) के अनुसार कविताएँ लिखा, उनमें से अधिकांश न पुराने (Archaic) शब्दों का उडे कलापूर्ण ढंग से प्रयोग किया है।

( ३ ) कवि ग्राम्य शब्दों को भी अपनी भाषा में स्थान देते हैं। कुछ ग्रामीण प्रयोग ऐसे हात हैं, जिनके समानार्थवाचा शुद्ध शब्द भाषा में नहा मिलते। तुलसीदासजी ने श्रवधी के ग्रामाण शब्दों का प्रयोग किया है। श्रीमैथिलाशरणजी गुप्त की कृतियाँ में बुदेसखड़ी के शब्द मिल जाते हैं। यदि गाँवों के सम्बन्ध में कोई बात लिखनी

हा, ता वहाँ उनका उचित स्थान है ही, वैसे भी परिमित मात्रा में प्रयुक्त होने से अपना भाव व्यञ्जना की निशपता आदि गुणों के कारण वे मार्जित भाषा में अपने लिए जगह बना सकते हैं।

कवि की भाषा चाहिए सरल हो चाहे कठिन, शब्दों का चुनाव में उसे समान कठिनता हो सकता है। सरल भाषा सरलतापूर्वक सदा नही लिखा जाता। बहुधा बड़ी-बड़ी बातें एम सरल शब्दों में लिखी जाती हैं कि लोग भाषा से धारणा प्राप्त कर सकें। सरलता का भाव पैठने की चेष्टा नही करते। भाषा का गहनता, सूक्ष्मता या उच्चता के साथ भाषा सरल रहे, साथ ही शिथिल भाषा न हो, अत्यंत दुष्कर है। हमारा सफलता का एक उदाहरण रामचरितमानस है। गहन-तर्जन करनेवाले बड़े शब्दों में वैम भाव भरना आसान नही। यदि कवि का विषय गहरा या ऊँचा नही, तो कठिन अप्रचलित शब्दों का प्रयोग, कवल उनका उच्चारण ब्यक्ति के लिए क्षम्य नही माना जा सकता। कवि को कर्तव्य यह है कि वह अपना अनुभूति का उचित शब्द-संपर्क द्वारा हमारे सामने रखे।

जुलाई १९६६

## मस्कृति और फासिज्म

अपनी असमर्थता ने क्रूरताग पान क लिये चर घुँचीवाद जनतन का नाश करके युद्ध का आरंभ करता है, तब उसका फासिज्म रूप प्रकट होता है। यह कांड नया वाद, नया मस्कृति या नया समाज-व्यवस्था रहा है। अपने विकास क लिये आरंभ में पूँजीवाद जनवादी परम्परा का उन्मूलन देता है लेकिन बार-बार आर्थिक संकट पड़ने से जनवादी परम्परा द्वारा उसे अपना विनाश सिखाई देने लगता है। समाज क फासिज्म वर्गों का इन मद्देग में बार-बार धक्का खाता है, व उनमें उन्नत क लिये एक नया व्यवस्था का आरंभ करते हैं। जनवादी परम्परा हममें सहायक होती है। हमलिये फासिज्म मरने पर लो लागू करता है अधिकांश का स्वयं करना है, जनवादी विधान का नष्ट करता है, जिसे आरंभ में क जगिय बह समाज पर उन्मूलन मन्तव्य और घुँचीवादों की तानाशाही कायम करता है। इसलिये फासिज्म जनतन का मरने वाला दुश्मन है।

यह तानाशाही कायम करने क लिये समाज का प्रतिनिधिवादी शक्तियों सहित क उल्लोचन करता है। एक मुलाकात, नस्ल या गून का है। जर्मन फासिज्म ने अपने अनुयायियों का बताया कि हम समाज का सबसे बड़ा शत्रु हैं और हम इसमें न हस्त-लिये उनाया है कि हम समाज का मुद्दे वातिया पं शान्त करें। जीव-विज्ञान और समाज शास्त्र का इस तरह तांडा मराड़ा गया कि जन्म-मृत का यह विशेषता वैज्ञानिक रूप में सिद्ध हो जाय। इस तरह इटली क फासिज्म ने अपने समस्त पुत्रों क मीत पाये और दूसरा पर शान्त करने क योग्य एकमात्र अपना शक्ति का धारित

रिया। जापान में ईश्वर के भाई मन्दा ने अपने का सूर्य की सन्तान बताया और इस आधार पर एशिया के नेता बनने चल पड़े। इस तरह का कल्पनायें विज्ञान और इतिहास के बिल्कुल विरुद्ध हैं, परन्तु इनके प्रचार से अग्र विज्ञानों का जगाया गया और उसी अधपन के सहारे फासिस्ट नेताओं ने अपना और बाकी दुनिया की जनता का युद्ध का आगम कर दिया।

रक्त या नम्ल के मुलायम में जुड़ा हुआ एक दूमरा भ्रम इश्वरी प्रेरणा का है। फासिस्ट नेता युद्ध या तब तक मरने अपना गन्तव्य नहीं देखता, उसे तो मारी इश्वर से प्रेरणा मिलता है। उसने नेतृत्व का आधार जनवादी विचारों या जनता का दिया हुआ कोई अधिकार नहीं है। उसका अन्तिम पीता है और इसी के सहारे वह जनता का नेता है, उसे नया परिस्थितियों में राह दिखता है। इस प्रकार फासिस्ट विचार क्षेत्र में अवेकानिस्मता युद्धहानता, अतार्किकता का जन्म देता है। जो बात तर्क से मित्र नहीं हो सकता, उसी का वह ऊपर उठाता है। माना इश्वर की कल्पना लूट आर हत्या का समर्थन करे के लिये ही का गई है।

तामरा भुलाया फासिस्ट का युद्ध मन्त्र का प्रचार है। युद्ध का वह सामाजिक जीवन का एक आश्चर्य अज्ञान मानकर चलता है। यह वह नदी उताता कि आर्थिक मद्दत में निरालन के लिये, अपने मान की स्थानि नये बाजार कायम करे के लिए युद्ध अनिवार्य हो जाता है। इकाकन पर पदा डालकर उड़े-बड़े सामरिक प्रश्नों द्वारा फासिस्ट पाशावन चल के मन्त्र का धारण करता है। जिमरी लाटा, उमरी भैस—इस सिद्धान्त का वह प्रचार करता है। शान्ति, सहयोग, मानरता और भाइचार के बातों का वह गिल्ला उड़ाता है और उह फमज़ार आदमियों की मनक कहकर यह टाल देता

है। इसलिये फासिज्म माननीय प्रगति का सबसे बड़ा दुश्मन है और यह समाज का परंपर युग का शत्रु ठेलता है।

चीथा भुलाया राष्ट्रीयता का दाता है। राष्ट्र के ऊपर कुछ नहीं है, राष्ट्र के लिये सब कुछ बलिदान कर देना चाहिए, राष्ट्र में अधभक्ति हाना चाहिये, इत्यादि इत्यादि बातों का बड़ा प्रचार करता है। गालन में उसका राष्ट्र का मतलब मुझी भर पैंनापतिया का स्वाथ जाता है। राष्ट्र में अधभक्ति का मतलब जाता है, इन मुझी भर लागो क पीछे आंग्रि मूंदर चला। राष्ट्र के लिये बलिदान देने का मतलब होता है, हमारे देशों को हराने और साम्राज्य विस्तार करने के लिये अपनी जान दा। लेकिन देश प्रेम का यह मतलब नहीं है कि दूसरा का छोटा समझ कर उह अपना गुलाम बनाया जाय। राष्ट्र-भक्ति का यह मतलब नहीं है कि मुझी भर पैंनापतिया की चला हुइ प्रतिनिधायदी नीति का लागव न किया जाय। देश का मतलब जहाँ जनता जाता है, उहाँ एक देश द्राग हमर पर अधिकार करने का मजाल नला उठला। सभी देशों की जनता का नित एकरा और शान्ति में है, न कि परस्पर वैरभाव रखन और युद्ध करने में। फासिज्म देशों के इस भाइचार का उड़े भय में करता है। वह अंतराक्षयता का राग-वार निन्दा करता है जिसमें कि जनता अपने आपकी नित का पचा न कर। लेकिन अपने स्वाथ के लिये एक देश क फासिज्म दूसर देश क फासिज्म से मेल करने में देर नहा करने। स्टिलर, मुसालिना, पर्ता, ताजा आदि आदि अलग अलग देशों और जानियों के लाग युद्ध में अपना गुट बनाने क लिये अपना नम्ल के मिद्वान्न का ताक पर रख देते हैं।

छुटा भुलाया व्यनित्य क विनाश का है। फासिज्म कहत है कि जननत्र में उड-बडे आदमियाँ का अपने विकास का माका नहीं मिलता। वे अपनी इच्छाशक्ति का चमत्कार नहीं दिखा सकते।

केवल कामिज्म म उन् यह ग्रन्थर और सुविधा मिलती है कि विशाल जगमूर्त्त का अपनी इच्छा-शक्ति में मचलित करें और इस तरह अपने देश तथा मसार क भाग्य विधायक बन जायें। रास्तर म इस विकास का मतलब होता है, पूँजीपतिया क दला बनकर उनके देश पर चठपुतली का तरह नाचना। इस विकास में पंचांगद और साम्राज्यवाद का विकास करने का गुञ्जाइश ना है। उमम तर, बुद्धि गहृदयता प्राप्ति क निय तगह नह-है मुहा भर महानता क इशार पर ना कामिस्ट नता कह, उमा प उमर छोड र अनुचग का चलना होता है। बडे कामिस्ट तै ता इस विकास क द्वारा अपना जेब भर लते हैं टाकिन उनके छुत भेय अनुभाया बुद्ध म रलि क ररर उन रर हा करते हैं। पूँजांगद ग्राथ क निय लाग्ता का मर्या म क हलाल निये जाते हैं प्री यी उनर विकास का अत जाता है।

मानवां भुलांग संस्कृति का है। कामिस्ट नत है हम संस्कृति के गनर है। हम प्राचान संस्कृति का उद्धार करगे, हम मार मस म अपना संस्कृति का प्रसार करगे। प्राचान संस्कृति का मतलब इतन निय प्रयता हाता है। उनका दृष्टि म संस्कृति का ग्राध मानयता वहाँ दानयता है। अपना लूट आर हत्या का महा मायि करन क लिय व अपन पूतनां का भा हत्या और छुटग रनाम रडे प्रेम स उनर प्रगते हैं। कामिस्ट संस्कृति का सम्य ध कुसस्वा स है, मातयय संस्कृति स विल्कुल नरी। इगालिय कामिस्ट बरा काशिश करत रहत हैं कि ये पुगांग संस्कृति का ता-भराड क गामने रक्ते। पुगो लगका म म साम्राज्यवाद भागनाये अतामिस्ता, बुद्धिहीनता की रात वे ग्राव लाने हैं या हमम विल्कु हा अमबल रहते हैं, ता उनका पुगांग पुस्तका का जला देते हैं। संस्कृत का व किना आदर करत है, यह इता से प्रस्ट है।

ये देश के बड़े बड़े साहित्यकार और वैज्ञानिकों का पेश-निकाला या माराबाम का दृष्ट देते हैं। जो लेखक फासिअम का विषय करने का हिम्मत करता है, उन अपना जान में भा जाय धोना पड़ता है। भाड़ के लेखकों में फासिअम नेता का साहित्य लिखाने हैं, उनमें लुटेरा और अत्याचारों का 'हीरा' बनाया जाता है, उनका प्रणित कानों का राष्ट्र गीत न अनुकूल रतार जनता न सामने उनकी मिमाल रखी जाता है। फासिअम ध्यान रखते हैं कि साहित्य में जनता की विचार नहीं भी बनाने न पायें, आर्थिक मद्दत, बेकारी और गरीबी, जनता के भय और त्रास का भलन भी नहीं न मिले, इस तरह फासिअम साहित्य और मस्झति का मरने उड़ा शत्रु है।

अपना युद्ध नीति का सफल बनाने के लिये फासिअम विदेशी आक्रमण का हीरा खड़ा करता है। आक्रमण यह खुद करना चाहता है लेकिन प्रकट मत करता है कि हमें उसका जान के गानक है और हमलिये उस फल का दुमर्ग पर हमला कर बना चाहिये। एक जाति या धर्म न लगा का देश का शत्रु रहकर वह पूँजावाद द्वारा देश का एक दुव्यवस्था पर फटा डालता है। समाज में यदि बकाग है, गरीबी है शिक्षा और स्वास्थ्य का प्रचार नहीं है, उत्पादन नहीं करता या वितरण नहीं जानता तो हमका निम्नेशरी एक ग्याम जाति या मजहूर फ लागा पर है। यूरोप न फासिअमों ने इस तरह की जिम्मेदारी बेहदिया पर डाला। यहूदिया का कल्लश्राम फासिअम की वृद्धि का एक लक्षण बन गया। १९४७ तक म लन्दन का दारा पर "Perish Judas" ( यहूदा को मौत ) य शब्द ब्रिटिश फासिअम लिख देते हैं। हिलर के लिये जब यह जरूरी हुआ कि अमराका स दान्ती करे, तो अमराका फ निवासा शुद्ध थाय बन गया। जब उनम लड़ा हुआ, तो ब्लेवेन्ट के पुररों में एक यहूदा भा निकल पड़ा। इसा तरह मन् १९० में जब सिन्डुस्तान का अखिनय



शान्ति और जनतंत्र के खिलाफ ये सब लोग एक विश्व-यापी मोर्चा बना रहे हैं। इस मोर्चे की एक दीवार हिन्दुस्तान में भी है।

परिचित जवाहरलाल नेहरू ने अपने व्याख्यान द्वारा फासिम के बन्ते हुए खतरे की तरफ सचेत किया है। फासिम के लक्षण हमारे देश में भी प्रकट होने लगे हैं। हमारे यहाँ भी युद्ध का आनर्थाय बताना, हत्या और हिंसा का मानवता और भाइ-भार में श्रेष्ठ बताना शुरू हो गया है। मुस्लिम फासिम कहते हैं कि इस्लामी राज कायम होना चाहिये। इसके लिए हिन्दुस्तान पर हमला करना जरूरी होगा। हमला करने के पहले अपने यहाँ की अल्पसंख्यक जातों को खत्म कर देना या निकाल देना जरूरी होगा। इसी तरह हिन्दू फासिम हिन्दू राष्ट्र का आर्थें करते हैं। वे पाकिस्तान में युद्ध का अनिर्थाय बताने हैं और इस युद्ध का तैयारी के लिए वे अपने यहाँ की अल्पसंख्यक जनता को खत्म कर देना या निकाल देना जरूरी समझते हैं। संस्कृति की रात ज़ारा से कही जाता है लेकिन उसका सम्बंध मनुष्यता और भाइ-भारे से नहीं होता। युद्ध और हत्या के लिये उसका नाम ही इस शब्द का प्रयोग होना है।

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के फासिम जातों की शक्तियों का खत्म कराने के लिए उन्हे ज़मांदारों, राजाओं और मुनाफागारों का समुक्त माना जाता रहें हैं।

अंग्रेजी साम्राज्य के साम्भ देशी नरेश अगाध धमाकतार बन गये हैं। उनके अखबार काठ-राजपूत, क्षत्रिय, सिख, आदि आदि जातीयता के नाम पर मध्यमक के लागू और इमानों का शान्ति और जनतंत्र के खिलाफ उन्साने हैं। जैसे हिन्दु ने 'देरेन पाक' या श्रेष्ठ जाति का उपा पीया था, उन्गी तरह ये राजा इन बात का प्रचार करते हैं कि किसी जाति विशेष के लोग ही शासन करने की योग्यता रखते हैं। बड़े-बड़े मुनाफागारों ने फासिम प्रचार के

निये धैलियाँ खोल दी हैं। वे तमाम गवरा का इस तरह तोड़-मरोड़ कर देते हैं कि लागा में भय और आतङ्क फैले। अपने कुट्ट्या का छिपाकर दूसरों के अत्याचार का उखान करके वे प्रतिदिन ही आग मुलगाते हैं जिसमें आग चलकर भागत का स्वाधीनता और जनतन्त्र दोनों भस्म हो जायें। इन प्रवृत्तियों का भी अपना मद्रस उदा दुश्मन कम्युनिज़म दिखाइ देता है। इसलिये उनका पत्रा में ब्रिटिश साम्राज्यवाद और अमराता का मराना का गिलाफ़ दा शब्द भा नहीं होत परंतु कम्युनिज़म के अत्याचार कालम के कालम गैंग होते हैं। गाम्बव में ब्रिटिश और अमराता का पत्रा तर्फ़ हिन्दुस्तान के प्रतिनिधायान्तियों का आँखें लगा हुए हैं। वे जानते हैं कि अपना इस बाहरी मदद का चार दिन तक भा वे हिन्दुस्तान पर अपना शासन कायम नहा ग्य मरत। हमारे देश का यह किसान, मजदूर और मध्यवर्ग का आदमा चोगानारा, मुनाफ़ानारा, सामंती और जमींदारा का अत्याचार में परखान है। यह परेशानों का पत्रा का न्यय अमराता पत्रा का जन्म पड़ेगा। यूनात और चान म यहा हा रहा है लेकिन प्रतिक्रियान्तियों का दुभाग्य से उनका पत्रा हुआ दीवार का अमराता होने का इष्टे भा फिर मचनूत नहीं बना पाता।

उनकी हिन्दुस्तान में, गामतीर में गियामती म, चने-चने अधिवार उद न्य धूम रह है। उशन यह अमभय कर दिया है कि आदमी शात न जिदवा प्रताये। मेता-चारा और उयोगधधा को भारा पकन लगा है। गरावा और बेकारा उद रहा है। एसा पत्रा में हमारे यहाँ फासिज़म विचारधारा मर उठाने लगी है। हमारी जाति श्रेष्ठ है, दूसरों का मजदूर गलत है, इनका स्वतन्त्र किये बिना हम का नया मरते, इन्मानियत धारदा है, हमारी राष्ट्रियता भा-चारे को धिखारी है, संस्कृति का नाम पर हमें अत्यसग्यता का हत्या के

लिये तैयार हो जाना चाहिये, इन सब बातों का जोरों से प्रचार हो रहा है। भामा, ग्लेवसिंह, चेट्टी, श्यामाप्रसाद जैसे लोग, जो स्वाधीनता आन्दोलन का विरोध करते आये थे, और साम्राज्यवाद के साथ रहे थे, व राष्ट्रीय सरकार में धुसकर देश के कर्णधार बन गये हैं। उनकी काशिश है कि देश से जनतंत्र खत्म करके एक फासिस्ट हुकूमत कायम कर दा जाय। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने फासिस्टों को चुनौती दी है कि वे यह न समझें कि सरकार से निकलकर वे (पंडितजी) क्याशा उठ जायेंगे। अगर इस्ताफा देना ही पड़ा तो वे इन फासिस्ट प्रवृत्तियों के खिलाफ सरसर लड़ते रहेंगे। हिन्दुस्तान में तमाम स्वाधीनता प्रेमा लोको के लिये यह एक चेतावनी है कि वे गानाथी, तमींदारा, और मुनाफारसारा के मर्चे को तोड़ें और उनके तन्त्र विगधा प्रचार को रोकें।

हमारे साहित्य में अभी इन शक्तियों का गोल-गला नहीं हुआ। फिर भी बहुत से अल्पसंख्यक जो 1947-राष्ट्र के नाम पर धार साम्प्रदायिक प्रचार कर रहे हैं और उस राष्ट्रीय भाव रहते जाते हैं, तथा परिवर्तित और उन्नतियाँ निकलने लगा है जैसी फासिस्ट देशों में लिया गया था। इन जगहों अमल्य सिमा और युद्ध का प्रचार किया जाता है। साहित्य में प्रतिष्ठित पत्र अभी तक इससे अलग है लोको गिद्यामता और हमारे सूत्र के दूसरे जिलों में ऐसे पत्नीसा अल्पसंख्यक उत्पन्न रहे हैं तिनमें हम तरह के साहित्य को प्रभव मिलता है। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखकों में एक भी इस साम्प्रदायिक विचार भाग के साथ मिलकर जनतंत्र विरोधी प्रचार में नहीं लगा। नया पाठी के लाग भा उगम दूर है। बहुतों ने हमको विन्द अपनी लगता भा उठाई है। कर्करत इस बात की है कि अभीस इस प्रवृत्तियों को दगा दिया जाय और साहित्य पर हमला करन का अद्यगर उहें

न दिया जाय। प्रगतिशाल विचार-शरारत गिलाफ़ भा एन्गारगी  
 अनेक पत्रों में लेख प्रकाशित होने लगे हैं। इसका उद्देश्य यह है  
 कि फ़ासिस्ट शास्त्रियों को लिये भाग निष्कण्टक प्रदा दिया जाय।  
 इस तरह शताब्दी मरुत इम न्या के लिये ही नदी, मारा तुनिया  
 के लिये है। अंगरेजों के पत्रकारों के लिये युद्ध में भाग तुनिया को  
 दखलना चाहते हैं, उम्मे मरुतान देने के लिये हिन्दुस्तान के  
 प्रतिनिधियों को अभा से यह जमान तेजा कर रहे हैं। अंगरेज हिन्दुस्तान

## आदि काव्य

काव्य में वेद भी आ जाते हैं, फिर भी आदि काव्य वाल्मीकीय रामायण का ही कहा गया है।

इसका कारण यह हो सकता है कि वैदिक काव्य की देवापासना के बदले यहाँ पहले-पहल मानव चरित्र का काव्य का विषय बनाया गया है और इस मानवीय काव्य में मनुष्य का देवता के मिहासा पर नहीं बिठाया गया बल्कि उसकी शक्ति, असमर्थता और चेदना को बड़ी सहानुभूति से चित्रित किया गया है।

रामायण की मूल कहानी उत्तर वैदिक काल की है जब आर्य मध्यभारत में अपनी सभ्यता फैला रहे थे। इस सभ्यता के अग्रदूत अगस्त्य आदि ऋषि थे, जिन्हें जनस्याय के आशय निरासी मताया करते थे। इनकी रक्षा करने के उद्देश्य से आर्य राजाओं ने नमदा तक अपना राज्यविस्तार किया। आर्य सभ्यता के प्रचारका के संपर्क में आने से हनुमान आदि उनकी भाषा को पंडित हो गये थे कुछ पहले आगेवाले आर्य अनाथों के साथ घुलमिल भा गये, जैसे रावण। अनाथों में मुन्नीर निमापण आदि का एक दल आर्यों का मित्र बन गया और इस तरह उसकी विजय-यात्रा में बड़े सहायक हुआ। इसमें सन्देह नहीं जान पड़ता कि राम का विजय अभियान नमदा तक पहुँच कर रुक गया था। मन्गीरि विष्या की गुहा से निराल कर सुरा ही समुद्र के किनारे जा पहुँचता है और गालि भी किशिका से निराल कर समुद्र के किनारे संध्या करण का पहुँच जाता है। अन्त्य ही

कल्पना-लोक के स्वर्ग-सी सुन्दर लला है जहाँ राम अपने अनुयायी विभीषण को राजा बनाकर श्रयोध्या लौट आते हैं। इस विजय की गाथाएँ जन-साधारण में अत्यन्त प्रचलित रही होंगी। इन्हा को आगे चलकर किसी नरि ने महाकाव्य का रूप दे डाला और सम्यक् अपने का आद्य में रखकर उसने सारा श्रेय ऋषि वाल्मीकि का दे दिया। यह तो निश्चिन्त है कि रामायण की भाषा उत्तर वैदिक काल के आर्य-ग्रन्थों के सत्रय युग की भाषा नही है। वाल्मीकि राम के सम-ग्रामयिन् हैं परन्तु उनके नाम से चलने वाली रामायण की रचना बहुत बाद की है।

रामायण और ग्रीक महाकाव्य इलियड का गाथाग्राम अनेक समानताएँ हैं। दोनों की ऐतिहासिक वास्तविकता आर्य ग्रन्थों का सधय है। हमर का दूय तो खाद निकाला गया है लेकिन वाल्मीकि की लला अभी पृथ्वी के गर्भ में ही है। दोनों गाथाग्राम में हेलेन और साता की चारा के उदाने युद्ध होना है, केवल ग्राम की गाथा में हेलेन अपनी इच्छा से पैरस के साथ भाग जाती है, और भागताय गाथा में साता का रावण उल-पूवक हर ल जाता है। होमर की गाथा में शूर-वीरों के आश्चर्यजनक कृत्यों का वर्णन है और मृत्यु के उम महान् सत्य का आर बारबार सनेत है जिसका सामना एक दिन हर मनुष्य का करना है। वाल्मीकि का नैतिक धरातल और ऊँचा है, वह मानव चरित्र के पण्डित होते हुए भी आदशनादी है। मृत्यु के लिय यहाँ इतना भय नही है, इस जीवन में ही मनुष्य की वेदना उनके काव्य का परम सत्य है। राम, साता, कौसल्या आदि के चरित्र में उदाने इसी वेदना का चित्रण किया है।

रामायण का मूल गाथा का लक्ष्य आर्यों का नियम और शताओं का पराभव विनिन करता ही रहा हागा, उसका मूलक रामायण के इस रूप में भी जहाँ-तहाँ मिलता है। जब नानि राम के

छिपकर तीर मारने की जिंदा करता है, तब राम उसे यही उत्तर देते हैं कि सारी पृथ्वा आर्यों की है धर्म अधर्म का विचार उदा कर सकते हैं, अनाया को इस पर विवाद करने का अधिकार नहीं है। परंतु वाल्मीकि का तादृश अनायो का राक्षस रूप में और आया का देव रूप में चित्रित करके उन्हें उंचा नाया दिखाने का नहीं है। उनके जालि, रामेश, मेघनाद आदि से सन्तानुभूति होता है अगर राम, दशरथ लक्ष्मण, आदि में गुणा के साथ मान-साय दुबलताया का भा समावेग है।

जिस कविने महाकाव्य रूप में राम उमूचा गाया का कल्पना की था उसमें समाधारण करणा और जान मान के प्रति उत्कट सन्तानुभूति था इसमें सन्देह नहीं। इस शायद में एक ही बात यत यत है

मीता के गुणों की याद आती है, मीता ने जीवन से मिली हुई अपने जीवन की समस्त घटनाओं का चित्र उद्देखना पड़ता है, लेकिन वह दुःखी होकर याँघूटा रहा करते हैं, साना सोपा करना असंभव है। कहाना की इस पृष्ठभूमि में उसका कल्याण और भाग्य निरूपण उठता है।

इसमें मद्देन यह कि रामायण एक दुःखान्त कहाना है और उसका अन्त ही वैसा ही है जैसा किगी बड़े बड़े दुःखान्त नाटक का हो सकता है। रामने मीता की प्राण मानकर अयोध्या का छोड़ा, वन में उलाने पड़े और माता के विषाग का यज्ञशा मना, पुत्र में भाइ लक्ष्मण का शक्ति तथा और भीत भिन्ना ता उनका साथ जानन भर के लिये बनाकर भा मिला। अयोध्या में पारण व सुखा व सुख मन्, उन् माता का बनवान बना पना। वन में व वन माना व वन मिला ता अन्तर प्राया अन्तरा एत एत न माता का पवित्रता बना बना ता। वन मन् व वन मन् शर भा न मन् वन वन वन का समस्त प्रान्तन ता पृष्ठ लिय हुए प्रथा म मन् मन्। मन् व जीवन प्रनानमन् व मन्। अन्त म माता आया प्राण उन्त शत वरत मन्त तद्दाम का दुःखाना के प्राण का समाचार देना पडा। लक्ष्मण की दृढ-स्वरूपता रामने मीता और मग्यु के विनारे ज्ञान राजनर उदात्त प्रथमा प्राणात किया। राम व बाद उन्क उत्तराधिकारा अन्तमा पर राम वरत र्द पानु आग चल कर अयोध्या उन्तद् हा मद् और वद् पात्रिका तन् नद् उन्तद् नान मन्। महान ग क चित्र फ साथ इन श्राद्धि काव्य का अन्त होता है। अयोध्यापि पुगी रम्या शूना वप-गणान् वदन। मन्त मन्तभारत म विष प्रन्तिम दृश्य न पठादेन हाता है, वह भी ऐसा ही अधस्तारूप है।

रामायण की सबसे बड़ी घटना मीता का वनराग है। इसके



आगे राम का वन-गमन पाका पट जाता है। राम के साथ लक्ष्मण और साता भी गये थे और इनके साथ रहने से राम का अयोध्या की याद बहुत न आती थी। लेकिन गर्मिणी सीता को धोखा देकर उनका वन में त्याग करना ऐसी हृदय विदारक घटना है जिससे राम व वनवास की तुलना की ही नहा जा सकती। रामायण की इसी घटना को लेकर उत्तर राम-चरित और कुन्द माला जैसे महा नाटकों का रचना का गढ़ है। लेकिन साता के त्याग में जिस क्रूरता का आभास आदि-कवि ने दिया है, परवर्ती कवि उसकी छाया भी नहीं छू सक। गोमती के किनारे दुग्ग से वैशेष होकर सीता के गिर पड़ने में जा स्वाभाविकता है, परवर्ती कवि अपने अलङ्कृत वर्णनों में उसे नहीं पा सक। साता एक वीर नारी हैं। राम के वनवास के समय उन्होंने उडे दर्प में कहा था—अप्रतस्त गमिष्यामि मृदन्ती कुशकटकान्। वह कुशकाटा का रौंदती हुई राम के आगे चलने का माहस रखती हैं। उनमें नारी दुबलताएँ, क्रोध और सदेह भी हैं। इसीलिये उन्होंने लक्ष्मण से कटु-वचन कहे थे। इससे उनकी मानवीयता ही प्रकट होनी है। राम की कातर पुकार सुनकर भय और चिन्ता के एक अमाधारण क्षण में वह ऐसी यात वह पीठती हैं।

मुदहस्त्य वो राममेवमेकाऽनुगच्छति ।

मम देता प्रतिच्छिन प्रयुक्तो भरतेनवा ॥

इसके साथ वह अपना निश्चय भी प्रकट कर देती हैं कि वे भस्म हो जाएँगी लेकिन लक्ष्मण व हाथ न जाएँगी। अपनी इस दुर्बलता से सीता पाठक का महानुभूति नई रसो देती, उनकी कटुति निपति का व्यस्य बन कर उन्हें का व्यथा का और निश्च बना देती है जब लक्ष्मण के बदले रावण ही आकर उनका हरण करता है।

रावण की पराजय तक उहाँ की किसी तरह दिन काटे लेकिन उनके अपमान और दुग्ग के दिन तो अब आगे वाले थे। सीता

वे चरित्र म शका प्रकट करने वाले सबसे पहले स्वयं राम थे, न कि अयाच्या की जनता। जब विभीषण सीता को लिवा डूर लाये, तब राम ने कहा—“रानस तुम्हें हर ले गया, यह देव का क्रिया हुआ अपमान था, उस अपमान को मनुष्य होकर मैंने दूर कर दिया।” लोकिन भौंहें चटा कर क्रोध से तिरछे देखते हुए उन्होंने फिर कहा—  
 “मैं जा कुछ युद्ध जातने न लिये किया है, वह तुम्हारे लिये नहीं, बल्कि अपने चरित्र और बश का ज्ञानि की रक्षा के लिये। इस समय तुम मदिग्व चरित्रवाला मुझे बैसा ही लगती हो जैम नेत्र-रागी को दिया लगता है। मुझे तुमने नहि काम नहीं है, तुम्हारे लिये दर्शों दिशाएँ पता हैं, नहीं तुम्हारी इच्छा हा, नाशा। उच्च तुल में पैदा होनेवाला व्यक्ति दूसरे न घर में रहने वाला खा वे। कैसे न्याकार कर लगा ? जिस बश के लिये मने यह सब किया, वह मुझे मिल गया है। तुम लक्ष्मण, भरत, सुग्राव या विभीषण किसी के साथ भी रह सकता हा। तुम्हारा दिव्य रूप देखकर और अपने घर में पाकर रामचंद्र ने तुम्हें कमा नमा न किया हागा।”

राम का ज्ञान साता का ही नहीं लक्ष्मण, सुग्रीव आदि का भी धार अपमान करता था। वहाँ लक्ष्मण की निष्काम तपस्या और वहाँ राम का यह कल्पना ! फिर साता की सचित आकांक्षाएँ और उन पर यह अनाचित तुषारपात ! यह अपमान भी बानरों और गन्तकों का बच म हुआ ! तब मुँह पर से त्रिभुजा का पाँडने हुए जाना न धारे धीर कहा—“धीर ! तुम ब्रामाण्य जनों का तरह मरे अयाग्य वाक्य मुझे क्या मुना रह हा ? यदि विप्रश हाने पर राजस ने मेरा शरार छू लिया, ता इसमें देवता हा दाप है मेरा क्या अपराध ?” ता मर बश में है वह हृदय तुम्हारा है, शरीर पगधीन हाने से मैं अग्रहाय कर हा क्या सकता था ? जिस समय तुमने हनुमान को लहा मना था उसी समय तुमने मेरा त्याग क्या न कर दिया ?

तुम मेरा चरित्र भूल गये, और यह भी भूल गये कि मैं जनक की लड़की हूँ और धरती मेरा माता है। बाल्यावस्था में तुमने जो पाणिग्रहण किया था, उसे भी तुमने प्रमाण न माना। मरी भक्ति, मेरा शील तुम सब टुट्ट भूल गये।' इस तरह वह कर माता ने लक्ष्मण से चिता चुनन का व्रत। तुम्हारे से शक्ति न माद्वर भी बहुत दिनों तक राम व प्राया।

एक बार सती फिर राम व मामा प्राये। उस वाल्मीकि क पाँछे श्रमू पतना चल रहा था और इस नाल वाल्मीकि ने उसकी परिपता क लिय माद्वर दिया जोर यह भा धारित दिया कि लर कुरा रामचंद्र क हा पन्नान है। उनर पान प मभा म "ममत्त" शब्द द्वारा प्रा ला गय प्रीर सीता का मापुत्र केन गये। वाल्मीकि व मात क लिय पान न शय नय पान राम ने कहा—“मुक्त गाता मारांप न न लिय कर्मिन ममत्त वाट न क म नाला राम कया प। पान न। मथ था। मना क ममत्त व र र क उपाय रण क। प्री प्र कय व अपमान क मामाए ताव र राम पान पनता व यह वाचना कता कि उह फिर प्रश कर कोया तव? ममत्तमिना माता व श्रमि ताचा नित्ये हुण पार हें पर हुण हा हाथ ममत्त उत्तर दिया—“यदि म मम का छात्र रर पार मिना न मा म भी चिन्ता नहा करता है तो धरती मुझे म्यान दे। उमा शय के वाद पृथ्वी स सिंहासन निजला और उमा में श्ट करवह प्रन्तधान हा गइ।

इस समक्ताग घटना के पीछे नारी के उस तरुण अपमान की गाथा है जो अभी तक समाप्त नहीं हुई। महान कविया के हृदय म इस घटना क प्रति सवेदना उत्पन्न हु है और उहाने इने रामायण की मुख्य घटना मानकर उस पर नाटकादि रचे हैं। वाल्मीकि ने सीता

वनवास की असह्य क्रूरता का अनुभव किया था और इसलिये उसका वर्णन रामायण के कुरुक्षेत्र स्थलों में से है।

इस कहानी से मिलती-जुलती राम गमन के समय कौमल्या की व्यथा है।

कौमल्या श्रीलिये दुःख, तहाँ है कि राम वन जा रहे हैं वरन् इस लिये भी कि पुत्र के रहन पर सपत्निया के विम प्रपमान की वह भूला हुई था, वह उह फिर सहना पड़ेगा। इसमें कुरुक्षेत्र का ही दाप न था, राजा दशरथ ही उनका आराम उदासीन गये थे। कौमल्या का प्रपण व ध्या हाने के दिना का याद प्राप्त। उह राम कि इन पुत्र प्रियाग से ता वया दिन गच्छे य पुत्र हुप्रा न था। उदा। राम का याद दिताया कि जैन पिता के, के, बैसे न के नया है, लिये उनका आशा गारम उह न था। तत्पि। पण्ड राम न रद गन न माता नान न था हा। त्व। त्व। धन उदा मा। ता पर भा गाय उमा मिला की उच्छे से मा न त न पीता है, न हा कौमल्या राम न रथ न पाछ दाहा।

प्रत्यागारमिवायाती मयत्या वत्तनारणात् ।

बद्धत्मायथा धनु राममागाम्यधारत् ॥

एसे स्थला क लिय मचमुत्र नहा जा सकता है कि शान श्लोत्त्वमागत ।

कुरुक्षेत्र के माध क्षेत्र की भी उच्च नाटिकी व्यंग्यता है। कौमल्या का दुःख दशरथ राक्षस का पिता पर नारा, समुद्र का दुष्टता देखकर राम न राक्ष्य, कुभिना म यप्रधुउ हाने पर विभाषण के प्रति मेनाद का उपालम्भ—य सब इस महाकाव्य के अमरणीय स्थल है। सचार्दा में ऐसी गार्हायता महाभारत छाड़कर सस्कृत के और किसी काव्य में ( नाटकों समेत ) नहा है। कौमल्या का विलाप

करती हुई देखकर लक्ष्मण ने कहा—“मुझे भी राम का इस तरह राज्य छाड़कर वन जाना अच्छा नहीं लगता। काम-पीड़ित होकर वृद्ध शक्तिमान राजा इस तरह क्यों न रहे ? मुझे तो लोभ परलोक में ऐसा कांड भी नहीं दिखाई देता जो इस दाप की तुलना कर सके। देवता के समान, शत्रुओं का भी प्रिय, पुत्र का कौन। अकारण त्याग कर देगा ? राजा फिर से बालक हो गये हैं, उनके चरित्र को जानने वाला कौन व्यक्ति उनकी बात मानने को तैयार हो पायगा ?” उन्होंने भाइ से कहा—“लाग तुम्हारे वनवास की रात जानें, इससे पहले ही मेरे साथ तुम शासन पर अधिकार कर लो। धनुष लेकर मेरे साथ रहने पर तुम्हारा कोई क्या बिगाड सकता है ? यदि कोई निरोध करेगा तो मैं तादृश वाणी से अथाध्या की जनहीन कर दूँगा।” फिर उन्होंने कौसल्या से कहा—“मैं धनुष की शपथ ग्राह्य कहता हूँ कि मैं अपने भाइ से प्रेम करता हूँ। यदि जलते हुए वन में राम प्रवेश करेंगे तो आप मुझे पहले ही उस वन में प्रविष्ट हुआ समझ लीजिये। देखि, आप मेरी शूरता का देखें जैसे सूर्योदय होने पर अधकार छूट जाता है, वैसे ही मैं आपका दुर दूर करूँगा। कैशिकी में आसक्त म पिता मैं नारा करूँगा जो बुलाये मैं फिर पच्चा जैसा बातें कर रहा हूँ —

हरिष्ये पितर वृद्धम् कैशिक्यासक्तमानसम् ।

कृपण च स्थित शाल्ये वृद्धभावेन गर्हितम् ॥

यह चरम क्रोध का उदाहरण है। रामायण में सामाजिक नियम मानव मुलभ सहृदयता के आड़े आते हैं इनके निरोध और परस्पर संघर्ष से ही यह नाटक दुःसान्त बनता है। लक्ष्मण के विद्रोह में नियमों के प्रति यही तिरस्कार और मानवीय महानुभूति का पक्षपात है।

रामायण के अनेक संवादों में व्यंग्य खूब निखरा हुआ है और

उसका उपयोग इमी मानवीय सहानुभूति को उभारने के लिये हुआ है। बालि-वध के उपरान्त तारा राम से कहता है, "निम बाण से आपने गालि को मारा है उसी से मुझे भी मार डालिये और यदि आप समझें कि स्त्री का मारना अनुचित है तो गालि और मेरी आत्मा का एक जान कर अपना सशय दूर कर दालिये।"

जब राम ने छिपकर बालिको मारा और उसके अनार्य होने से कोई पाप न हुआ, तब उसकी स्त्री को ही मारने में क्या पाप है? बालि की मृत्यु के बाद पाठक की सारी सहानुभूति तारा की ओर खिंच जाती है।

वाल्मीकि प्रतिपन्न को बड़ा करके या उसे उसके उचित रूप दिग्गाने में कमा पड़े नहीं हटते। गालि और मुग्धीन के चित्रण में उन्होंने मुग्धीन को बड़ा करके दिग्गाने का प्रयत्न नहीं किया। मुग्धीन एक ता द्विपत्नर भाइ की हत्या करता है, फिर राजन पाने पर भाइ की स्त्री के साथ ऐसा जिलास में पड़ जाता है कि उसके प्रति पाठक की तनिक भी सहानुभूति नहीं रह जाती। लक्ष्मण का क्रोध तिलुन उचित जान पड़ता है।

रावण के शयनागार का वधन करते हुए कवि ने लिखा है कि वह एक भी स्त्री का उसकी इच्छा के विरुद्ध न लाया था। उसकी पत्नियों न बदल किसी का रना रही थीं न उन्हें दूसरे पति की इच्छा थी। हनुमान ने सीता के और इन स्त्रियों के पति प्रेम को तुलना कर डाली। उन्होंने कहा—“जैसी ये रावण की स्त्रियाँ हैं, वैसी ही यदि राम का पत्नी मा हैं (अर्थात् रावण उनका मतीतन नष्ट नहीं कर सका), तभी उसका कल्याण है।” जिस समय हनुमान विंशुपा का डाल पर बैठे थे, तभी धनुषबाण छोड़े हुए काम के समान रावण वहाँ उपस्थित हुआ। हनुमान स्वयं तेजस्वी थे, फिर भी

रावण का तेज उ<sup>३</sup> श्रद्धम हा उठा। उ इने अपने का पत्ता के पीछे छिपा लिया।

स तथाप्युग्रतेजा मन्निर्धूतस्तस्य तेजसा।

पञ्चगुह्याग्तरे सत्ता हनुमान् सवृताभरत् ॥

रावण के तेज का हमने ग<sup>३</sup> र<sup>३</sup> श्रीर क्या ब्रह्मान हो सकता था? गाल्माफि का त<sup>३</sup> यना श्रीर गार्डनीय प्रतिभा का यह ब्रह्माद्य प्रमाण है।

एक स्थल और है जहाँ हमें भी मनुजान म उ<sup>३</sup> गने चरित्र की विशेषता सिखा है। रावण वनवास का प्रसिद्ध म भक्त जाही पाटुकात्रा का श्रवण। त<sup>३</sup> र<sup>३</sup> है। त्याग और निहार्थता के चरम उदा<sup>३</sup> ण है। राम पर सत्कर्म पर जब भा<sup>३</sup> विपत्ति प<sup>३</sup>ता है तब मरता<sup>३</sup> पटुयम<sup>३</sup> का ग<sup>३</sup> उ<sup>३</sup> महता<sup>३</sup> ह ता<sup>३</sup> न<sup>३</sup> व<sup>३</sup> प्रसिद्धि प<sup>३</sup>ता<sup>३</sup> है। तब म<sup>३</sup> प<sup>३</sup>ना<sup>३</sup> त<sup>३</sup>स्या<sup>३</sup> व<sup>३</sup> प<sup>३</sup> व<sup>३</sup> राम<sup>३</sup> व<sup>३</sup> दशा<sup>३</sup> का ग<sup>३</sup> ग<sup>३</sup> र<sup>३</sup> व<sup>३</sup>, तब प्रया<sup>३</sup> गा<sup>३</sup> व<sup>३</sup> पाम<sup>३</sup> प<sup>३</sup>च<sup>३</sup>र<sup>३</sup> राम<sup>३</sup> हनुमान<sup>३</sup> म कहा<sup>३</sup> व<sup>३</sup> भरत<sup>३</sup> के प<sup>३</sup>न<sup>३</sup> चार्थ<sup>३</sup> श्रीर रावण-वध<sup>३</sup> प्राद<sup>३</sup> का वृत्तान्त कह<sup>३</sup> उन<sup>३</sup> गान<sup>३</sup> का तूरना<sup>३</sup> व<sup>३</sup> श्रीर दंग<sup>३</sup> न<sup>३</sup> भरत<sup>३</sup> के मुँह पर कंस भा<sup>३</sup> प्रकट<sup>३</sup> होते<sup>३</sup> है। रावण शरी<sup>३</sup> का ग<sup>३</sup>य<sup>३</sup> पा<sup>३</sup>र<sup>३</sup> निगका<sup>३</sup> मन विचा<sup>३</sup>त<sup>३</sup> नहा<sup>३</sup> हा<sup>३</sup> जाता<sup>३</sup> ग<sup>३</sup>य<sup>३</sup> राम<sup>३</sup> के हृदय<sup>३</sup> म<sup>३</sup> व<sup>३</sup> शना<sup>३</sup> उत्पन्न कर<sup>३</sup>ते भरत<sup>३</sup> के त्याग<sup>३</sup> में चार<sup>३</sup> चाद<sup>३</sup> लगा<sup>३</sup> दिय<sup>३</sup> है।

जैसा विपुलता और भाव सम्पत्ति का तापयता इतना सजादा म दस पडता है, वही हा चिनमयता इस मन्नाभाव के दग्नात्मन स्थला में भा है। तमसा के स्नान से लेकर जहाँ वाल्मीकि शिष्य से घटा रख<sup>३</sup> का कह<sup>३</sup>त है, रावण के शयनागार तक, जहाँ का सार्थ्य और वैभव दग्नातात है, कवि ने अपना सजाव कल्पना का समान रूप से परिचय दिया है। उसकी उपमाएँ श्रुती हैं, लव वर्णन के प्राद

दो शब्दा म वे एर अनुभूति को माना सचित कर देते हैं। शवण के शयनागार क लिये लिखा है कि उठो हनुमान को माता के समान वृत्त किया।

गमायण क चिना म दिगट ग्रौग उदात्त भावना नियमान "हता है। उनम एर विशेष प्रकार की गणिता प्री उभय है। स्वाभाविकता और लायता—मसार का दर्शन म उनकी कुशलता प्राचरता ता है ही। लता म प्राग लान पर न लवर्ग के लय रहते हैं कि कहा ना वे मिशुक क पूना जैना, न्या शास्त्रला क पूना जैना प्री कर्ण मुमुम जैना लगती है। उन रावण पु म एर उदुत से निव्र देवन का मिलते है। प्रिउ स्मर वदमण ने विभावण पर पाता हु गमण स शाक्त अपने वादा से ना उठा, उन स्मर क नाइन मानिना शक्ति स्थिति उठता हु गमण - उल्ला क मान वध्या प्र विग। पु गमण ना प्रमर शक्ति अनुति ना मय के समान उदण - उदण म उम -। ना गण ना उमरुं इस मप्रथ म भग प। है।

पवन क प्रति ति ना दर्शन - नागम -। । उन का प्रधात रहना प्रमुत्त न गण। पवन लावण म पु - वन कगन अग्रथ -। पुन ना ना दू तिा था, न मय शाना क धनि ध श्रौं उमर पा हा क कए कावात्रा क प्रापण से वन गणक मर ना शा म य। मम प्री गता -। प्रेय कलाञ्छा क वगन क दरा मिस्त्र नया है। रावण शयनागार क उज म ल ना दन प्री विगणिता क, मन्ना उमर नाता है। पिन ना राभाव मुद्रासा क वगण -। म प्रस्तर मृता ना याद प्रा जाता है। नग्य -ना हार म द्वा -। मय प्राधन वदुनत है ना उनक प्रभात क धनना क नागण पाग प्रार गत की प्र - हा जाता है। धात्रा की गा - कत हुए वागमण - व विवर क प्रेश



रावण का तेज उ <sup>३</sup> श्रद्धम हा उठा । उ जाने अपने को पत्ता ने पीछे छिपा लिया ।

स तथाप्युग्रनेत्र, सन्निर्धूतस्तस्य तेजसा ।  
पद्मगुह्यागरे सक्तो हनुमान् सवृताभवत् ॥

रावण के तेज का तबसे उर उर प्रार क्या समान हो सकता था ? बाल्मीकि का तटस्थता प्रोग नाट्योप प्रतिभा का यह प्रमाद्य प्रमाण है ।

एक स्थल प्रार है जहाँ ऐसे ही मनुजन में उ जाने चरित्र का निशपता दिगा है । रावण वनवास का यमधि म भरत उनकी पाटुताप्रों श्रद्धा विरागने है । तबसे प्रार विम्वार्थता न ने चरम उग्रवर्ण है । राम पार तद्मण्ड पर तत्र भा विपत्ति पटती है, तना मदा न पड्यो को गा उह मितता है कतिन तत्र यमनि पृथ टु <sup>३</sup> प्रार म त प्ररना तपस्व, न पात्ररूप राम न दशन का पाट जाद र, य, तत्र यया गा न पम पहुचकर रामने "नुमान में कहा कि वा भरत न पाम जायँ प्रार गवण-यध आद का वृत्तात रहकर उनक ग्रान को सूचना दें प्रार देखें कि भरत के मुँह पर किस भाव प्रकट होते है । रावणदादा का राजन पाकर किमका मन विचालत नहा जाता कतिने राम न हृदय म य शजा उत्पन्न करने भरत के त्नाग में चार चाद लगा दिय हैं ।

जैसा विपुण्यता प्रार भाव सम्मको लायनता इन सपादा म दस पढता है, वसा ही चिनमयता दल महाशाब्द क वणुनात्मन स्थला में भा है । समता के किनार स लेकर जहाँ वातमीनि शिष्य से घटा रत री का रहत है, रावण के शयनागार तत्र, जहाँ का सौंदर्य श्रीर वैभवं गणनातीत है, कति ने अपनी गजीव कल्पना का समान रूप से परिचय दिया है । उसकी उपमाएँ अनूठा है, लवे वखन के वाद

दो शब्दां म वै एष अनुभूति को माना सचित कर देते हैं। <sup>१२</sup> के शयनागार के लिये लिखा है कि उसने हनुमान <sup>१३</sup> के समान वृत्त किया ।

करते हैं, तब वहाँ भी लका के समान वे एक काल्पनिक स्वर्ग में विहार करने लगते हैं और कुछ के मन में यह भी आता है कि वहाँ रहना चाहिये, साता की खोज करना व्यर्थ है। इस सत्रके साथ लक्ष्मण और हनुमान के चरित्र का भी आदर्श है। अपनी साधना और तेज में वे अद्वितीय हैं अथवा अपने ढंग के दो ही हैं। इन जितेन्द्रिय पुरुषों का मन भी कभी-कभी चंचल हो उठता है। हनुमान तृप्ति की भावना से रावण की खिया को देखते हैं यद्यपि जानते हैं कि ऐसा करना अनुचित है। लेकिन सीता का पता लगाना ही है, इसलिये और दूसरा उपाय नहीं है। लक्ष्मण ने नारी-विमुखता की हद कर दी है क्योंकि तूपुर छाड़कर उन्होंने सीता का मुँह भी नहीं देखा। अपने दूसरे वनवास के समय जब सीता ने कहा कि मुझ गमबता को एक बार देख ला, फिर राम के पास चले जाओ, उस समय लक्ष्मण ने उत्तर दिया—“शाभने, आप मुझसे क्या कह रही हैं! मैंने अब तक आपका रूप नहीं देखा, केवल चरण देखे हैं। इस बात में जहाँ राम नहीं हैं, मैं आपको कैसे देखूँ ?” क्या यहाँ पर पाठक (और उसके साथ बचि भी) यह नहीं चाहता कि लक्ष्मण अपने दमन को इस सीमा तक न ले जाते? यह लक्ष्मण और सीता का अंतिम संवाद था और लक्ष्मण सीता की अंतिम इच्छा पूरी न कर सके।

सुग्रीव ने श्वशुरीत जाने पर भी जब वानरों को सीता की खोज कर लिये न भेजा तो लक्ष्मण क्रोध में उसकी भर्त्सना करने चले। वहाँ पर निवास में उन्होंने रूपवीननगरिता बहुत सी खियों का देखा। तब उनके नुपूरों और करधनियों का शब्द सुनकर महा-क्रोधो लक्ष्मण के मन में मोड़ा भावका उदय हुआ।

कूजित नूपुराणां च काशीनां निनदतथा ।

सन्निशम्य तत आमाम् शौमित्रिर्लाजिता भवत् ॥

इस लज्जा से बचने के लिये उन्होंने जार से धतुर के रोड़े

को टकारा, जिसके शब्द में वह वृजन-रखन डूब गया। सहारा लेना यही मतलाता है कि दमन का मार्ग एतदम समतल था।

सुग्रीव भी हिम्मत न पड़ी कि वह स्वयं लक्ष्मण से मिले, इसलिये उन्होंने तारा का भेजा। तारा शरान पिये हुए थी, इसलिये जिना लज्जा के, अपनी दृष्टि से लक्ष्मण का प्रमत्त करती हुई, प्रणय प्रगल्भ वाक्य बोली। उसके निकट आने से लक्ष्मण का क्रोध दूर हो गया (स्त्रीसन्निकषाद्विनिवृत्त काप)। तारा ने बड़े स्नेह से लक्ष्मण के क्रोध का कारण पूछा और लक्ष्मण ने बैसे ही स्नेह से (प्रणयदृष्टाय) उसका उत्तर दिया। यह सब कहने से करि का एक ही लक्ष्य सिद्ध होता है—उसके चरित्र श्रेष्ठ या कृष्ण न होकर माननीय हैं और इसी में सत्य और जला के सहज दर्शन होते हैं।

दा शब्द भाषा और छंद के बारे में कहना आवश्यक है। करि ने कल्पना की है कि दो बालक इस गाथा का वीणा पर गाते हैं, शलाका भी गेयता में सन्देह नहीं, परन्तु जैसे पढ़ने में भा उँगला प्रवाह अनिराम धारा की भाँति पाठक का आग बहाता जाता है। इसका ससृष्ट की विशेषता यह है कि उसमें बालबाल की रसाभाविकता है। सवाद में एक कलात्मक गठन है जिसमें सभसे प्रभावशाली भाग अन्त में आता है, जैसे सीता का अन्तिम प्रार्थना में कि लक्ष्मण उन्हें देखें और लक्ष्मण के क्रोध में जय वे तिता का मारन का बात कहते हैं। भाषा का प्रवाह सरादी की इस रसाभाविकता के लिये अत्यावश्यक है। बीच-बीच में और विशय कर सर्गों के अन्त में बड़े छंद हैं जिन्हें विभ्रमय वरुण और मधुर शब्दावली साधारण शलाकों से भिन्न एक निचित्र सार्थक नियम दान है। वन गमन के समय कौसल्या के निषेध करने पर रामचंद्र के रोष का वर्णन ऐसे ही एक छंद में है —

## “अनामिका” और “तुलसीदास”

हिन्दी में साहित्य-प्रकाशन का ढंग कुछ ऐसा है कि जब कविता का पुस्तकें छपती हैं तब वे एक दम ही जानि नही रहती। इसका कारण यह है कि कविताएँ अधिकांश मामूली पत्रा आदि में पहले से छप जाती हैं, फिर इन पत्रों में छप कर उनका पुस्तकों में समावेश होता है और तब तब वे काव्य के पाठकों के लिए नवान नही रहता। हाल में निराला जी की दो नई पुस्तकें लीडर प्रेम से प्रकाशित हुई हैं, ‘अनामिका’ और ‘तुलसीदास’। यदि ये पहले-पहल यही प्रकाश में आते होते तो निश्चय वह हमारे साहित्य की एक विशेष घटना होती। ‘अनामिका’ में कुछ ‘मत्स्य’ काल की और कुछ बाद की कविताएँ संग्रहित हैं। पत्रों के द्वारा संचालित एक नाम पुस्तक रूप में अथवा हमारे और निकट आ गई हैं। ‘तुलसीदास’ उनकी लंबी कविता ‘मुग्धा’ में कई वर्ष हुए क्रमशः छपा थी। पुस्तक रूप में अब वह भी सुलभ हुआ है।

नई और पुरानी कविताओं में एक नए दाने से ‘अनामिका’ में स्वभावतः विचित्रता आ गई है। निराला के नई कठोर एक साथ यहाँ सुनने का मिलने है। ‘सँहर के प्रति’ में एक नवयुवक कवि का रामाटिक रूप देखने का मिलता है, इसी तरह ‘दिल्ली’ अपने गत गौरव के स्वप्न के कारण उन आकर्षित करता है। ‘संगमल’ संग्रह में ऐसी कविताएँ छोड़ दी गई थी, जिनका प्रकाशित होने से वे कवि के विनाश पर नया प्रकाश डालती हैं। ‘संगमल’ में सन्ती नवयुवक कविता रामाटिक भावना खोजने में ही मिलती है, यहाँ वे पहले की कविताओं में प्रचुरमात्रा में विद्यमान है।

एक दूसरी बात जो इन पहले की रचनाओं में हम आकर्षित करती है, वह भाषा का आनपूर्ण मुक्त प्रयोग है। यहाँ पर कवि ने अपना विशिष्ट भाषा की रचना नहीं की है, जो भाषा उसे प्रचलित मिली है उसी में अपने परभाव से उमन नया जीवन डाला है। छंद ज्यादातर मुक्त हैं और उनकी रचना में वह समय नहीं दिखाई देता जो ‘परिमल’ की इस प्रकार की कविताओं की विशेषता है। इन कविताओं में कवि का वह विकासोन्मुख रूप मिलता है जो गंधाओं और साथ साथ कला की गरीबियों का चिन्ता न करता हुआ अपनी प्रतिभा की गान में चलता है। यह स्पष्ट दिग्दर्शकता है कि साहित्य के अध्ययन की यहाँ प्रभाव नहीं है, न पुराना साहित्यिक रुढ़ियों की संपर्क में वह आया है, यहाँ निराला जो न लिए इस शब्द का प्रयोग किया जा सके तो कहेंगे कि इन कविताओं में उनका अलंकरण है।

पुराना कविताओं की प्रतिगित राद की अनेक रचनाएँ यहाँ ऐसी हैं जो इस पुस्तक के महत्त्व का कारण हैं। इनमें से एक ‘राम की शक्ति पृष्ठा’ है जो ‘तुलसीदास’ का छाड़ कर उनकी श्रेष्ठ कृति है। यह एक लम्बी कविता का रूप में है जिसमें किसी पुराना कविता को लेकर पात्रों का एक नये मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में चित्रित किया गया है। इसका उल्लेख ‘रूपाम’ में प्रकाशित एक टुमर लक्ष में कर चुका हूँ। ‘मराठमृति’ अपने ढंग का अनूठी कविता है, इसे ‘एलना’ कह सकते हैं परन्तु उस प्रकार की कविताओं की यथार्थ से दूर रहने वाला रूढ़िप्रियता इतना नहीं था। इसका भाव चित्रण जितना ममस्पर्शा है, उतना ही समय भा। यह दिन दूर दिखाई देता है जब काइ अन्य कविता इसमें हिन्दा की श्रेष्ठ ‘एलना’ का का दास छान लगी।

‘सम्राट् एडवर्ड अष्टम’ का प्रति, ‘मनवेला’ और ‘नरगिण’ एक टुमर लक्ष की रचनाएँ हैं। इनमें कवि का अलंकारप्रियता दर्शनाय

है या 'मतवाला' काल की कविताओं का स्वच्छ भाव प्रवाह का प्रतिबल है। 'मग्राट' वाली कविता में सानुप्रास मात्रिक मुक्त छंद का प्रयोग हुआ है, आलंकारिकता का हाते हुए भी श्लोक पूर्ण माना म नियमान है और यह विशेषता हम 'तुलसीदाम' की याद दिलाती है। 'वनबला' में अलंकारप्रियता अपनी सीमा का पहुँच गई है, यहाँ तक कि 'वनबेला' एक लम्बे सुगन्ध के राद अतल का अनुलवास लिए ऊपर उठती है ता हम भा एन सुग की साँस छोड़ देते हैं। 'नरगिस' में इसी वृत्ति का गूँथ बनाकर रखा गया है और इस लिए प्रकृति चित्रण में वह निराला जी की श्रेष्ठ कविताओं में अपना स्थान बनाता है।

‘तट पर उपवन सुरम्य, म मौन मन  
 पीठा देखता हूँ तारतम्य विश्व का सघन,  
 जाहवा मो घर कर आप उठे ज्यों कमल  
 त्यागी नभ और पृथ्वी लिये ज्योत्स्ना ज्योति मार,  
 सूक्ष्मतम हाता हुआ जैसे तत्र ऊपर को  
 गया श्रेष्ठ मान लिया लागों ने महाम्बर को  
 स्वयं त्यों धारा स श्रेष्ठ, बड़ी देह से कल्पना,  
 श्रेष्ठ सृष्टि स्वर्ग की है गड़ी सशरीर ज्योत्स्ना।’

छंद का धामी गति उस मानसिक स्थिति को चित्रित करने के लिए उपयुक्त है जहाँ विचार का प्राकृतिक सौंदर्य से प्रभावित होने के लिए ढाँड दिया जाता है और वे अपनी गतिविधि उमा सौंदर्य के श्रमिता पर ही निश्चित करते हैं। भाषा की प्रौढ़ता 'विश्व का तारतम्य सघन' आदि में दर्शने का मिलता है, अर्थ के अतिरिक्त सन्त की माना शब्दा में पृथुरूप में भर गई है।

और इन्हीं के साथ निगला-तत्त का निर्देशक 'ताड़ता पत्थर' 'खुला आममान' 'दूँठ' आदि कविताएँ हैं जहाँ मानों अपन ही

शब्द-माधुर्य को कवि चुनौती देकर कहता है, मैं ‘दत्त कटाकटेति’ भी लिख सकता हूँ ।

‘लोग गाँव गाँव का चले,  
कौड़ नजार कौड़ बरगद के पड़ के तले  
जाँरिया-लैंगाग ले, सँमले,  
तगड़े-तगड़े साधे नौपरान ।’

फिर भा युग की प्रगति देखते ऐसा जान पड़ता है कि नौपराना को यह रक्कशता और भाषा का यह ठेठपन ही आगे अधिक प्रभावित करेगा ।

‘अनामिका’ में कुछ छ्दाटी कविताएँ और गीत हैं, ‘अपगविता’ ‘किसान का नई रूढ़ का आँग्य’ ‘रूढ़ा जो न कदा’ ‘गदल गरना’ आदि जा उनके गीति शान्य का निखरा मर्मदर्य लिए हुए हैं । जो प्रतिभा ‘राम का शक्ति पूजा’ भी कविता का बंधन रंधि सकता है, वह इन छ्दाटी छ्दाटी रचनाओं में भा अपना लापर प्रदर्शित करती है । खेल खेल में जैसे किसी नारागर ने एक महल बनाते हुए म्यान सुगाय कुछ गिलीने भा रना डाले ही जा छ्दाटे हास से दृष्टि द्वारा शक्तिता से गृहण किए जा सकते हैं और सुन्दर भी लगते हैं ।

‘तुलसीदास’ में हम एक नए धरातल पर आते हैं । पहले पहले इसका भाषा क्लिष्टता हा पाठक का ध्यान र्त्तीचती है । कहा गास्वामी तुलसीदास की सरल ललित पदारली और कहा यह ‘प्रमाथूर’ और ‘सांस्कृतिक ग्य । भाषा का इतना ज्यादा क्या तादा मराडा गया है ? पहले ता भाषा का दृष्टि में स्वयं गास्वामी तुलसीदास सत्र ही ललित और सरल नहा हैं, ‘विनय पत्रिका’ में अनेक स्थाना पर उन्होंने अस्हनगुल और समामयुक्त पदों का रचना की है, हमरे निराला जी ने विन मनाभावां का यहाँ चित्रित करने का प्रयत्न किया है, वे हिन्दा



के लिए नवीन थे, इसलिए उनके लिये उन्हें भाषा भी बहुत कुछ अपनी गन्नी पडा है। तुलसादास में उन्होंने जिस व्यक्ति का कल्पना का है वह निराला का अधिक निकट है, तुलसादास का नाम। फिर भी वह नितांत काल्पनिक नहीं है। रामचरितमानस में कवि का चा शानि मिला है, यह अवश्य ही एक भयानक सपन के बाद मिली हागा। निरालाजा के इसा सपन का कल्पना का है। भाषा का दूद एक ऐसा सतह पर हाता है जिसमें हम प्राय अपरिचित हैं। तुलसा दास' का युद्ध उनके पुराने मस्कारों से है और उस समय का दासता को अपनाने वाली संस्कृति से। इस तरह तुलसीदास एक विद्रोहा के रूप में आते हैं। पहले वे विरोधियों पर विजया होना ही चाहते हैं कि रत्नावाला का ध्यान उन्हें अपने माह में बांध लेता है। घटनाक्रम में यहा रत्नावाला उनकी दया हुआ प्रतिभा के मोक्ष का कारण हाता है। कविता का सपन आजपूर्ण स्थल वे हैं जहाँ कवि अपने संस्कारों से युद्ध करता हुआ अंत में मारित हो जाता है और बाद में जहा उसे रत्नावाला का निष्काम अग्निशिखा की भांति यागिनी का रूप देखने को मिलता है। अंत में विद्रोह होते समय तुलसीदास का वह शक्ति मिलता है जिससे हठात् भास होने लगता है कि अथ ये रामचरित मानस अवश्य लिखेंगे। निराला जा और तुलसादास में एक सांस्कृ तिक सामाज्य है, एक ही अनुभूति में दूसरा सहज पैदा चला आता है। केवल निराला में अथ विरोधी तत्व इतने ज्यादा समाहित हैं कि उनका व्यक्तित्व उनके नादन से कहा अधिक् वैचि'यपूर्ण है। अवश्य ही गा० तुलसादास का भक्त उनके लिए भी इस वैचि'य का दावा पश न करेंगे, तुलसादास महात्मा हैं, निराला में मनुष्यता अपने तीनों गुणों का साथ वर्तमान है और इस लिए वह हमारे अधिक निकट हैं।

जो लोग जनप्रियता को काव्य-सौष्ठव की कसौटा मानते हैं, उन्हें

‘तुलसीदास’ मे निराश हाना पडेगा । यह कविता जनप्रिय न हागा, यह ग्राख मूँदर नहा जा मरता है, उमी प्रकार यह भी नि हिंदी कविता में वहाँ निराला की शक्ति का काँगण एर अमर, रचना के रूप म रहगा । भारतय स्तूपरला के क्मिा मुन्दर नमून की भाति लोग नमक वेश-पिनाम और अलकृत वाचन्य का देरेंगे और वापम चल जायेंगे, उसमें रहगे नहा, और समार के काय साहित्य म ऐमे भाय प्रासादा न अनेर उदाहरण मौनूद हैं । दोना पुस्तका की छपाइ और सत्तामट मुन्दर हैं, निरालाका के कुछ दिन पहले के दिगार का देखते हुए उनका पुस्तका का य नग्न-शिर भी उनके प्रति वन्दे ह्ये आदर का चिह जान पड़ता है ।

मार्च '३६

## हिन्दी साहित्य पर तीन नये ग्रन्थ

इधर तीन-चार वर्षों में हिन्दी साहित्य पर तीन धार्मिक प्रकाशित हुए हैं जिनका ध्येय १९ वीं और २० वीं शताब्दी के हिन्दी साहित्य पर विशेष प्रकाश डालना है। पहला डा० लक्ष्मीनारायण वाष्पेय का 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' ( १८५०-१९०० ६० ) है। दूसरा डा० केसरानारायण शुक्ल का 'आधुनिक काव्य धारा'। तीसरा डा० श्रीकृष्णलाल का 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विनाम' ( १९००-१९२५ ६० ) है।

डा० शुक्ल का धारणा का विषय देवल कविता है परन्तु उन्होंने उसकी पृष्ठ भूमि का उल्लेख करते हुए १९ वीं शताब्दी के साहित्य पर भी बहुत-कुछ कहा है। डा० श्रीकृष्णलाल ने धार्मिक में आधुनिक हिन्दी कविता का ही जिक्र किया है, इसलिये इन तीनों ग्रन्थों में कुछ बातें समान हैं। इनमें साहित्य का समाज की गतिविधि के साथ परम्परा का प्रयास है परन्तु इतिहास का समझना और उसकी पृष्ठभूमि में साहित्य का मूल्य आँकने में अभी काफी उलझने हैं। इसके सिवाय तीनों ग्रन्थों में शुक्लजी से बहुत कम आगे बढ़ सकें हैं और शुक्लजी का इतिहास पढ़ने पर इन तीनों ग्रन्थों का परायण से हिन्दी साहित्य का ज्ञान कितना बढ़ेगा, यह सन्देह का ही विषय रह जाता है।

( १ )

पहले 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' का लक्ष्य है क्योंकि इसमें १९ वीं सदी के साहित्य का भी अध्ययन किया गया है। विषय प्रवेश का उपरान्त लेखन ने 'पूर्व-परिचय' में ब्रिटिश शासन और हिन्दी

गद्य के विकास पर प्रकाश डाला है। आगे धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनों का उल्लेख है। पुन गद्य, जीवनी साहित्य, हिन्दी-इसाइ साहित्य, उपन्यास, नाटक और कविता पर विचार किया गया है। 'परिशिष्ट' में लेखक ने रीतिकालीन साहित्य की विवेचना की है।

ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि देने का चलन अभी हाल में नया हुआ। यह प्रथा पुरानी है। परन्तु अब उन कारणों पर भी ध्यान देना चाहिये जिनसे बड़े बड़े सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलन सम्भव होते हैं। अब इतना पूरा देना सफा नहीं है—“आध्यात्मिकता ने मूल तत्वों की भित्ति पर खड़ा हुआ बृहद् हिन्दू-जीवन प्राणधान हो गया था। काल मान ने उसका जीवन निरस्त कर और निस्पन्द कर दिया था।” कालखत का उल्लेख तो राजा राम आत्म से होता चला आ रहा है। इतिहास के वैज्ञानिक अध्ययन के नाम पर कालखत का नाम लेना अपने अवैज्ञानिक भावनावाद का परिचय देना है।

डा० रामचंद्र का दृष्टि इतिहास के महापुरुषों की आता है परन्तु उन व्यापक आर्थिक कारणों का वे नहीं देख पाते जिनसे इन महापुरुषों का कार्य सम्भव होता है। उनका अध्ययन का परिणाम कुछ कुछ इस प्रकार है—एक समय हिन्दू समाज गोमय के उद्योग पर था। समय के प्रवाह से वह खाद में आ गया। उसी से उसने स्वामी दयानंद और राजा राममोहन ने उभारा। “पर उन्नीसवीं शताब्दी में ब्राह्मण समाज और आर्य समाज के प्रचार ने अनेक हिन्दू समाजवादी जो इसाई या मुसलमान हो गये थे, जिनसे हिन्दू धर्म का सम्भार था, को बचाने का उद्योग किया।” इस दृष्टिकोण में धार्मिकता अधिक है, ऐतिहासिकता कम। इस प्रकार तो राजा राममोहन और स्वामी दयानंद के कार्यों का तो राजनीतिक और सामाजिक महत्त्व है, उसे भा हम न समझेंगे।

इस प्रकार भक्तिमाल म सुर और पुनता क साहित्य और उनका विचार धारा का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि व समझने के कारण डॉ० नाथोंय न लिना है कि धर्म व "समाज क अस्तित्व का बनाये रक्ता" परन्तु "उसके बाद वह [ समाज ] जैसा था वैसा ही बना रहा।" और भा "उसे अथतारवाद का पाठ पढाया गया। सर्ता ने शाब्द का राग अलापा, तुवसी ने अथतारवाद की शिक्षा दी और सुर व सर्ता से जी बहलाया।'

पारान म पुनसी ने जा रूप समाज को देना चाहा था, वही रूप उसका पहले भा व था। सामन्तवाद के चट्टर वातावरण में सत पति।।। जिस उदार सामाजिक भावना का जन्म दिया, उसे लेकर वे निष्कूल भुला दिया है।

इस धर्म क कारण ही उमने श्रद्धारी-साहित्य की अत्यधिक शाश्वतता की प्रतिनिया मान कर उसकी सफाई पश का है और यह दिग्धी साहित्यिक द्वारा जा उसकी उपेक्षा हुई है, उससे अपनी "मर्मांतक पीडा" का उल्लेख किया है।

राज दरबार म नारी का क्या समझा जाता था, इसे पताने का आवश्यकता नहीं है। लम्क ने उम विलासा मनावृत्ति का—निसके अनुसार नारी एक मीत दाभी स चट्टर कुछ नहीं है—एक मनावैज्ञानिक तथ्य मिद्ध करने का प्रयत्न किया है। विना अवनानिक प्रयोग "मनावैज्ञानिक" और "वैज्ञानिक" शब्दों का प्रयोग है।

प्रेमी चाहता है। यह ममकना चाहिये कि हम प्रेम में विनामिता का शरा हा अधिन रहता है।”

विनाम हो जाने का बाद स्त्रीपुरुष एक-दूसरे के लिये साधारण रह जाते हैं। “इस गन्तव्यानिष्ठ सत्य के प्रकाश में परक्याया व्यभिचारिणी नहीं ठहरती। जैसे भा व्यभिचारिणी नहीं जाने वाली स्त्री स्त्री का घृणा और क्रोध की दृष्टि से देखना स्त्री जाति की मूल प्रकृति से अनभिज्ञता प्रकट करना है।”

सामन्तवाद और पूँजीवाद समाज के उद्वेग से यदि कुछ या अनेक स्त्रीपुरुषों का दमित इच्छाएँ व्यभिचार की शरण ल जाती है तो इससे यह ‘शाश्वत सत्य’ कैसे सिद्ध हो सकेगा कि यह स्त्री या पुरुष की ‘मूल-प्रकृति है ? स्त्री और पुरुष का प्रकृति बहुत कुछ उनका सामाजिक विनाम के अनुसार बना है। सामाजिक व्यवस्था की असंगतियों के कारण मानव प्रकृति में भा असंगतियाँ उत्पन्न होनी हैं। इन असंगतियों को न समझ कर लक्षण ने सामाजिक सत्य की एक असंगति को मनुष्य की मूल प्रकृति मान लिया है। अभ्युत्थान स सामन्तवाद और क्रमशः पूँजीवाद और सामन्तवाद की शरण करने में कीसता तत्व नम हुआ है, कौनसा सत्य है, यह श्रम सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं रह गई।

१६ वीं सदी के साहित्य में जन आन्दोलन के प्रथम चिह्न दिखाई पड़ते हैं। लक्षण ने भारतेन्दुकालीन साहित्यिकी का राजमति का उल्लेख करते हुए उन्हें उत्तमवर्ग और उच्च मध्यम वर्ग का बतलाया है। अर्धकालीन हिन्दी लेखकों का जीवन उस समय कितने कष्टों में बीता था, इसे सभी जानते हैं। हिन्दी लेखकों ने हिन्दी सेवा के लिये सब कुछ कैसे पूँजीवाद दिया, इस भी हम जानते हैं। अज्ञान में टहलने उच्च वर्गों का प्रतिनिधित्व किया है, यह दूसरी बात है। लेखक के विचार से “राजनीतिक भय के कारण उन्हें चुप रह जाना पड़ा।”

चार पृष्ठ बाद लेखक ने प्रतापनारायण मिश्र की "संसार लिये जात अगरेज" आदि पत्रियाँ भी उद्धृत की हैं। राजनीति में भय आवश्यक था लेकिन हिन्दी लेखक दण्ड भय से चुप नहीं बैठे। उन्होंने देश-दशा का स्पष्ट वर्णन किया। श्रीर अगरेज को ठेठ भाषा में सीधी सीधी सुनाइ। राज भक्ति का नाश भूठे वादे थे, लेकिन इस मरीचिका की भंग होने में देर न लगी थी।

साहित्य के विभिन्न ग्रन्थों की रचना में लेखक ने अनेक स्थलों पर एकांगी या काम चलाऊ आलाचना से काम लिया है। यह सभी जानते हैं कि भारतेन्दुनाथ का मंत्र सन्निहित और पुष्ट साहित्यिक रूप निरन्तर का है। लेखक ने दो पृष्ठों में इस प्रसंग को समाप्त कर दिया है। वास्तव में लेखक निरन्तर साहित्य से भली भाँति परिचित नहीं है क्योंकि निरन्तरों के मन्त्र अभी प्रकाशित होने को हैं। परन्तु यदि काइ भारतेन्दु युग के निरन्तर-साहित्य को नहीं जानता तो वह भारतेन्दु युग का भी नहीं जानता।

नाटकों के बारे में वाष्ण्य जी ने सामाजिकता और सामायिकता का इस प्रकार उल्लेख किया है माना इनसे उच्चर्याटि के साहित्य का कोई पैर हो। प्रहसना की निन्दा के लिए उन्होंने काफी पृष्ठ दे दिये हैं परन्तु उस समय के नाटकों की सफलता का मूल्यांकन नहीं किया। कविता में रीति ऋलान परम्परा पर चलते हुए भी उस समय के लेखकों ने नए नये जन मानस्य की नींव डाली थी। इसके सिवा भारतेन्दु, प्रमथन आदि ने कविता में नयी व्यक्तित्व व्यञ्जना (नगद दमाद अभिमानी के आदि) और वर्णनात्मक रचनाएँ भी कीं। लेखक ने इनका भी यथाचित मूल्यांकन नहीं किया।

इन सब कारणों से पुस्तक का पत्र लेने के बाद यही धारणा हाती है कि लेखक के 'मनाविज्ञान' के सिवा इसमें नयी सामग्री बहुत नहीं है जो हिन्दी साहित्य के अध्ययन का आगे बढ़ाये।

( २ )

‘आधुनिक काव्य धारा’ का पत्रकार महर्षि हिन्दी के आलोचना साहित्य पर अभिमान हो आता है। वह इस कारण कि इससे अच्छी कितनी आये दिन हिन्दी माता के भण्डार की श्रीरूढ़ि किया करती है। शब्दाढ्यम्बर रूप है, गनामत है कि अथाढ्यम्बर का अभाव है।

इस पुस्तक में रीतिशाल और भारतेन्दु युग के काव्य-साहित्य का विदग्धावलोकन करने के बाद लेखक ने द्विवेदी युग और उसका बाद की कविता का मूल्यांकन किया है।

रीतिशालान साहित्य की निन्दा करने में लेखक ने उदा गता का दुहराया है जिसे और लेखक भी कह चुके हैं। परन्तु इस दाप नहीं माना जा सकता। दोष यह है कि एक ही बात को इस प्रकार में भी कई बार दोहराया गया है।

भारतेन्दु-युग का विवेचना करते हुए लेखक ने नये साहित्य की पृष्ठभूमि का अधिन स्पष्ट व्याख्या का है। ‘मालवान’ से सन्ताप न करके उहाने लिखा है कि “सन् सत्तायन के उपद्रव से बहुत से रचनाके तुम हा गये थे और अनेक दशा रजवाडा की शक्ति क्षाण हा गद थी। कविता के आश्रयदाता भी नहा रह गये थे, इसलिये जहाँ रीतिशाल के कवि अपने लौकिक पालका का प्रसन्न करके पुरस्कार पाने के लिये लालायित रहते थे, जहाँ इस उत्थान के कविता और लेखकों का केवल जनता में ही प्रशंसा का आशा थी।” वालव में भारतेन्दु-युग में जो नये-नागरण दिग्गद् देता है, उसका मूल कारण सामन्तवाद का हास और साहित्य का उससे सम्बंध-विच्छेद है। डॉ० वाष्णोय ने इस साधारण ऐतिहासिक तथ्य का मनी भाँति दर्शन नहीं किया।

सामन्तवाद से सम्बंध साझर उम युग के साहित्यिक जनता



को आर मुझे परन्तु जनता और उनका बीच में एक तामरा शक्ति और थी—ब्रिटिश साम्राज्यवाद। भारते-दु-युग के लेखकों ने महारानी विकटारिया की प्रशंसा की, साथ ही जनता के दुःख दद की कहानी भी कही। डा० शुक्ल के आचार से राजभक्तिपूर्ण कविताएँ जारी चाटुकारिता नही हैं। “ब्रिटिश शासन की नयी सुविधाओं और विज्ञान के नूतन आविष्कारों से कविता तथा जनता दाना न मति आच्छादित था। इसी से भारते-दु-युग की जनता और कवि, ब्रिटिश राज का गुणगान करते थकते नहीं थे।” यह कबल आशिश्र सत्य है। स्वयं भारते-दु अच्छा तरह जानते थे और उद्दाने लिखा था कि विज्ञान व नय आविष्कार से देश पूरा लाभ नही उठा पा रहा। देश में उद्यान धंधों का विकास नहीं हो पा रहा। इंगलिय जनता का मात ब्रिटिश राज को कारगुजारी से अच्छादित न हुआ था वरन् उसका वादा स हा गई थी। इंगलिय “ग्रेडला स्वागत” जैसा कविता में देश का दुदशा और राजभक्ति दाना साथ-साथ चलता है। वास्तव में ब्रिटिश राज का वादा का मरसा कुछ दिन में टूट गया और तब कविगण खरी खरी कहकर दिल के कफाते फाटने लगा। आधुनिक साहित्य की विवेचना में दो एक बात उल्लेखनीय है। एक तो यह कि श्री “अथाध्यामिह उपाध्याय अपन प्रयोगों में कभी असफल नही हुए।” और—“प्रकृति का मजीब चित्र न उपस्थित कर उद्दाने पड़ा के नाम गिनाये हैं।” और —

“महादेवी वमा की रचनाओं में भी प्रनाह का प्रभाव है। यद्यपि संस्कृत का पदानुली को आर इनका अधिक मुक्त नही है और वे प्रभाव के लिय उद् के शब्दों का प्रहण करता है तथापि इनकी भाषा में स्वाभाविक भाषा का प्रनाह और आन नही है।” आखिर यह बात क्या हुई ?

“गला का देखा देखा” हिन्दी में भी छायावाद चल पडा,—

इस निष्कर्ष की सिद्धि के लिये एक थामिस की आवश्यकता न थी। दस पाँच बगला की पत्तियाँ उद्धृत करने लखक मन्देय अपने मत की पुष्टि करने ता उनका पुस्तक का अधिक मन्त ताना।

प्रगतिशाल रचियाँ की रचना का उन्होंने एकांगी रण है परन्तु उन्हीं रचिया से प्रेम और प्रकृति मन्म की कविताया क उदाहरण भा दिय है।

कुल मिलाकर लेखक के चिन्तन का धरातल बहुत नाचा है और पुस्तक म एकत्र की हुई सामग्री मे हिन्दी साहित्य का अध्ययन एक पग भी आगे नहा जाता।

( ३ )

तीसरी पुस्तक म १९०० मे १९२४ तक क हिन्दी साहित्य का अध्ययन किया गया है। इस पुस्तक की विषय रचना म ए एक मूल शोध है और वह यह कि द्विवेदा युग या छायावादी युग का अपने अध्ययन का विषय बनाकर इन्होंने ऐसी म मार्गें निधारित की हैं ता छायावादी काल का दा निराड भाग काट जाता है। १९०५ में छायावादी युग का आरम्भ माना जाता है। उसका पूरा विनाश प्राग चलकर जाता है इसलिये प्रमाण, पन्त प्राय निगला का कुछ रचनाया का ता लिया गया है, कुछ का छाट दिया गया है। यथा सत प्रेमचन्द, आचार्य शुक्र, मैथिलीशरण का गुप्त आदि के संगे म भा हुआ है। इसलिये १९२५ को माना साहित्यिक विवेचना क लिये उचित था थी।

इस पुस्तक का महत्व गद्य-शैली और गतिरूप का सिद्धांत में है। यथाय यद विज्ञापण कानी गन्त था है, कि मी आधुनिक हिन्दी साहित्य क इतिहासकार म और म उदात्तान से रहते हैं। सुत छन्द और गद्य पत्र के नये प्रयोगों क प्रति कुछ शास्त्रान अध्ययन

का स्वयं रचनेवाला म जो श्रवण और उनकी अनभिज्ञता होती है, उसका यहाँ श्रवण है। लेखक ने महानुभूति से छायावाद की वियोग प्रयोग का समझने और उनके मम तन पंटा का कोशिश का है।

इस विश्लेषण म एक दाव है कि अत्यधिक उद्वेग देकर लेखक बहुधा उनकी प्रशंसा करके रह गया है। जैसे निरालाजी का सया मुन्दरा का 'अनुपम सृष्टि' दिखाने के बाद लेखक ने इस कविता स प्रकृति चित्रण की शैलियाँ के प्रसंग को समाप्त किया है—'इसी प्रकार सुमित्रानन्दन पन्त का 'पल्लव' भा एक अनुपम सृष्टि है।' इस तरह क विश्लेषण के प्रयोग में आलोचना अपने माधारण धरातल से भी नीचे आ गिरती है।

भूमिका म लिखा है—'आधुनिककाल यद्यपि शृंगारिक नहीं है तथापि इसमें शृंगार रस की कविताओं की भरमार है। सुमित्रानन्दन पन्त की 'प्रिय' इस युग के उद्दाम यौवन का एक ज्वलन्त उदाहरण है।' परन्तु आगे चलकर प्रेम सम्बन्धी कविताओं की विस्तृत चर्चा करते हुए लिखा है—'सभी जगह प्रेम वामना-जित आकर्षण से ऊपर उठा हुआ मिलता है।' तब क्या उद्दाम यौवन का आत्मिक वस्तु है ?

भूमिका में फिर लिखा है—'इस काल की शृंगार भावना विशुद्ध सुखवादिता है। रीति, शृंगार और भक्ति के प्रतिरिक्त करुणा और प्रकृति-चित्रण स पूर्ण कविताएँ भी इस काल म पयाप्त मात्रा म मिलता है। किन्तु इन सभी कविताओं का आधार मानसिक है।' और भा—'आधुनिक साहित्य म यणित यस्तुओं का महत्व बुद्धि पर प्रभाव डालने के लिये है।' परन्तु आगे चलकर इन विषयों के विस्तृत चित्रण म लेखक ने विस्तृत उलटी हा रातें कहा है।

पृष्ठ ६५ पर लिखा है — 'जिस प्रकार तुलसीदास श्रीग सुरदास इत्यादि भक्त कवि भक्ति को ही जीवन का तत्व मानते थे श्रीग विना भक्ति के ज्ञान, मान और वैभवं को कुछ समझते थे, उसी प्रकार आधुनिक प्रेम कवि प्रेम का ही जीवन का सर्वस्व मानते हैं।' इससे बाद गोस्वामी तुलसीदास की चौपाइयाँ उद्धृत करके यह करते हैं—'प्रसाद भी उन्हीं के स्वर में स्वर मिलाकर प्रेम के सम्बन्ध में कहते हैं।' इसके बाद चार पक्तियाँ का उद्धरण है। यदि प्रसादजी गायत्रीजी के स्वर में स्वर मिला सकते हैं तो बुद्धिवादी कौन है ?

एक ही प्रकृति-चित्रण के सम्बन्ध में लेखक का कहना है, श्रीगङ्गा कवि वर्तमान्वर्ष जिस प्रकार इन्द्र धनुष देखकर हर्षोद्वेग से पावन हा उठता था, हिन्दी के आधुनिक भासु कवि भी प्रकृति का सौन्दर्य देखकर उमत्त हा उठते हैं। सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखा है । तब क्या हर्षोद्वेग का प्राधान्य मानसिक है ? क्या प्रकृति का सौन्दर्य देखकर उमत्त हा उठने वाले कवि किसी की बुद्धि को प्रभावित करना चाहते हैं ?

राष्ट्रीय श्रिताश्री के प्रसंग में डा० श्रीकृष्णलाल ने लिखा है— "भारतवर्ष का जन्म-भूमि मानना हमें पश्चिम में सीता।" यह शान और भा महारूपण हाता यदि वे कहते कि भारतवर्ष का नाम भी हम श्रीप्रेजा से मिला है। छायावादी कविता का जन्म भा उठाने श्रीप्रेजा प्रमाण से माना है। यही प्रमाण रंगला कविता में हाकर भी आया परन्तु स्वामी रामकृष्ण परमहंस श्रीग विवेकानन्द का जा प्रभाव निगलानी तथा पन्तजी पर पड़ा है, उसे डाक्टर श्रीकृष्णलाल ने नहीं देखा। सृष्टि और मन्त्रकालीन श्रियाँ क प्रभाव का भी उठाने नहीं आका। हमारे आलोचक वस्तुस्थिति से अभी काफी दूर हैं, इसलिए उनकी समाजा एकांगी हाती है।

फिर भी डाक्टर श्रीरघुलाल की पुस्तक से नये साहित्य की अच्छी जानकारी होती है यद्यपि वह पूरी नहीं होती। उनका दोष यह है कि उन्हें अत्यधिक उद्वेग से प्रेम है। उनका गुण उनकी विश्लेषण की क्षमता है जिसके विकास की यथेष्ट सम्भावना है। इसमें सन्देह नहीं, उमर हम हिंदी में एक सुन्दर आलाचक्र पा सकते हैं।

[ १९४५ ]

## ‘देशद्रोही’

कथाकार यशपाल का यह दूसरा उपन्यास है। पहला था— ‘दादा कामरेड’। उसका सम्बंध था आतंकवादियों के जीवन से। विज्ञापन के अनुसार वह शरत् नाबू के ‘पयेर दाची’ का एक प्रकार से उत्तर था, आतंकवादियों के जीवन पर प्रकाश डालकर उनका सही चित्र पाठकों के सामने पेश करता था। उसका भूमिका में लेखक ने स्पष्ट कर दिया था कि राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालना उसका मुख्य ध्येय था। शैल और हरीश के रोमांस ने इन समस्याओं को रङ्गीन बना दिया था। “देशद्रोही” का सम्बंध पिछले असहयोग-आन्दोलन—सन् ’३० वाले—से लेकर महासुद्ध तर्क की राजनीतिक घटनाओं से है। रोमांस का रङ्ग पहले से कुछ गहरा ही है। चाहे जिस दृष्टिकोण से देखा जाय, यह उपन्यास ‘दादा कामरेड’ का बहुत पीछे छोड़ आया है। शरत् को पसन्द करनेवालों के लिए इसमें काफी मसाला है। उन्हें ‘दादा कामरेड’ से असन्तोष हुआ भी हो तो इससे उन्हें आशातीत वृत्ति होगी। “पयेर दाचा” का ही आनन्द उन्हें यहाँ न मिलेगा, भीष्मन्त की आत्मकथा का रस भी उनकी आत्मा को शीतल करेगा।

उपन्यास रसम करने पर अरस्तू और कालिन्ध की याद आ गई जिन्होंने कला और धारों के मसले पर विचार किया है। अरस्तू ने शायद कहा था कि कला के लिये वैज्ञानिक सत्य की अपेक्षा नहीं है, पाठक या दर्शक का जँच जाय कि यह सच है या उसी से काम चल जाना चाहिए। श्रीर कोलरिज ने छायालाक के प्राणियों को अपनी कल्पना से ऐसा सम्राण कर दिया था कि वे यथार्थ और

उससे बढ़कर मालूम पड़ने लगे थे। “देशद्रोही” उपन्यास का घटना क्रम हम अफगानिस्तान से दक्षिण रूस तक की सैर कराता है लेकिन सच तो यह है कि जैसे कालरिज का मेरिनर बर्ड्सवर्थ के पीटर बेल से उठकर है, वैसे ही दूर देशों के उन सुंदर दृश्यों के आगे हिन्दुस्तान के दृश्य—जिनमें दिल्ली भी है—की लगने लगते हैं। दृश्य क्या, गङ्गानदी और समरकन्द की सुन्दरियाँ के आगे भारतवर्ष की महिलाएँ भी कुछ हीन सी लगती हैं। पाठक इसी से इस उपन्यास की रोचकता का आदारा लगा सकते हैं।

कथा का आरम्भ हाता है “अज्ञानी अंधेरी राह में” जहाँ कथानायक डा० भगवानदास सन्ना को कुछ बज़ारी पकड़े लिये जा रहे हैं। सन्ना फौजी डाक्टर यानी लैफ्टिनेंट डाक्टर सन्ना है। बज़ारिया के प्रदेश के वर्णन में लेखक ने कमाल किया है। छोटे-छोटे बच्चा की पोशाक, काली नीली चादरें आड़े झिर्वाँ, खूंटों से बेतरतीब बिना पिछाड़े के बँधे हुए सच्चर आदि आदि का उल्लेख करके उसने अपने वर्णन को यथार्थ की सजीवता दे दी है और उसे यथार्थ से भी अधिक आकर्षक बना दिया है। इसके साथ डा० सन्ना की शारीरिक दुदशा, उनकी मानसिक उलझन, अपनी धमपत्नी राज का सम्भार याद आना आदि मनावैज्ञानिक धरातल की वे बातें हैं जो सहृदय पाठकों के मन का सहज ही स्पर्श कर लेंगी। पठानों की बात चीत, आपस का निस्वार्थता, अगरेज़ी राज्य की आलाचना, उनकी आत्मसन्तोषयुक्त शानमभीरता आदि वे बातें हैं जो उपन्यास में हास्य का पुट देकर उसे आकर्षक बनाती हैं।

दूसरा अध्याय “समय का प्रवाह” हमें सन्ना के विद्यार्थी-जावन और दिल्ली के उस वातावरण से परिचित कराता है जिसमें वह पला और बढ़ा था। उसका एक साथी था शिवनाथ। कांग्रेस आन्दोलन में जनता पर अत्याचार होते देखकर शिवनाथ का सून खौल उठा था

श्रीर खन्ना का साथ पाकर उसने बम बनाने की तैयारी की थी। परन्तु बिना “एक्सन” के ही वह चुन्नी पर हाँड़ी में उम लिये हुए पकड़ा गया और अपनी बहन यमुना का निस्सहाय छोड़कर जेल भेज दिया गया। खन्ना टाकटरी पट्टने लगा और समय पानर डाक्टर भी हो गया। शिवनाथ जेल से छूटने पर कांग्रेस में काम करने लगा। उमर सहायक ये प्रदा बाबू जो कांग्रेस के दक्षिण दल के प्रतिनिधि हैं। शिवनाथ धीरे-धारे कांग्रेस सोशलिस्ट हो जाता है। इन दो पाथों का लेकर लेखन ने कांग्रेस की गजनीति का रेखाचित्र प्रस्तुत किया है।

डा० खन्ना ने बज़ीरियों का कैद से छुटकारा पाने के लिये अपने भाई का रुपया भेजने के लिये लिखा परन्तु रुपया न आया न चल। दा-तीन पठान मु-दरियाँ उमकी और अग्रश्य आकृष्ट हुईं। इनमें एक यो इन्वा का “आते-जाते अपनी मुग्मा भरी बड़ी बड़ा आँगिया से डाक्टर की आंग कटाक्ष कर जाता।” परन्तु डाक्टर उन कठालों से अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा कर रहा था। इसी लिये—“कभा माइ समीप देखने मुननेपाला न हाता ता धीमे से कह जाती—द्विस्त गाना।” याहा यानी नामद। इन्वा के नामकरण की मार्मरता पाठक आंग देखेंगे। इन्वा की एक सहेली था नूरन। “वे एक दूनरे का दिखानर डाक्टर से मज़ान करती और हाथ का अँगूठा चूमकर सनेल करता।” डाक्टर केदा होने से दूमरा का वेगार करता था। एक दिन उसका बारा नूरन व यहा मक्का पीसने की थी। नूरन ने मौका पाकर डाक्टर की बाँह पकड़ ली और कहा—अर ? “भय से डाक्टर का हृदय धक धक करने लगा। नूरन ने डाक्टर का बाँहा में ले मापे पर दाँत मार दिया। नूरन के गले की चाँदी की मारी हमेल उसकी हँसनी में चुम गई। डाक्टर का चेहरा पुराने कागज़ की तरह पीला पड़ गया और शरीर पसीना पसीना हो गया।” इसी तरह की घटन



शरत् बाबू के 'चरित्रहीन' में है जहाँ किरण दिवाकर को घसीटकर एक ही बिस्तर पर सुलाना चाहती है और वह बलि के बकरे की तरह मिमियाकर भागना चाहता है परन्तु भाग नहीं पाता। किरण सबेरे उससे कहती है—"मैंने तुम्हारा ब्रह्मचर्य व्यथ ही नष्ट किया। परन्तु यहाँ उसकी नीयत नहीं आती। पठानिन चतुर थी। वह सब कुठ समझ गई—"उसे काँपते देख नूरन सिधिल हो पीछे हट गई। डौंटेकर उसो कहा—'उठा ले जा गठरी ! क्या देखता है ?' गठरी ले जाते हुए डाक्टर की कमर पर आ पड़ी नूरन का लात ! जिसने उमे और जल्दी गहर टकेल दिया।" इसके बाद जब नूरन डाक्टर को देखती तो धूक देती और कहती—नामद !

धर्मपत्नी के राद बोद्दा का यह पहला रोमास था।

छुटकारे की कोई राह न थी। घर से कोई जवाब आ नहीं रहा था और बजीरी उसे गज़नी में बेच देने की बात चला रहे थे। केवल इन्शा निराशा न होकर उससे कहती कि वह उसे भगा ले चले—उसे गज़नी की राह भी मालूम है। डाक्टर उसकी बातों पर विचार करता। "मुझे सुलेमान खेल के मामज़ाई के शहर ले चल। वू तो इलमदार है। मेरा मर्द तो मुझे बहुत मारता है। उसे औरत से क्या मतलब ? वह तो मुझे हा मर्द समझता है। मैं तो औरत हूँ ! नहीं क्या ?" डाक्टर इलमदार तो था लेकिन

इद के दिन कलमा पढ़ाकर उसे मुसलमान बना लिया गया। गज़नी में पोस्तीना के व्यापारी अब्दुल्ला के हाथ वह बेच भी दिया गया। अब्दुल्ला के बेटे नासिर से उसकी दास्ती हो गई। नासिर को अमानुल्ला के स्कूलों की हवा लग चुकी थी, इसलिए देश विदेश के बारे में जानने को उसकी प्रबल उत्कण्ठा थी। वह डाक्टर का अन्तरङ्ग मित्र और पिर साला भी बन गया। इधर डाक्टर नूरन के प्रालिटेरियन प्रेम से घबरा गया था परन्तु सुर्जुआ अब्दुल्ला की

लड़की—श्रद्ध और नजाकत से उसका हाथ उठा कर सलाम करना और वहाँ वह नून का हाथ पकड़कर कहना, अब ? या अन्त में उसकी लात और हवा का 'द्वैत बोधा ?' यही सबू की सहायता से उधर खना की धमपत्री रातदुलारी उर्फ रात सावजनिक जीवन में प्रवेश करती है। मिलो में हडताल और यही सबू का अनशन, मिल मालिका से समझौता—यह कहानी दिल्ली का है। इधर गज़नी में—“दा मञ्जिल की खिडकी से झलक दिशा कल्पना को उन्मत्त कर देनेवाली नर्गिस ने जब, हम की आवा के समान जोमल अपनी बहिं डाक्टर का गर्दन में टाल कम्बूरा की भीनी और मादक गंध से सुवासित अपना सिर उसके हृदय पर रख आत्म-समर्पण कर दिया” तब भय से डाक्टर का हृदय धक धक नहीं करने लगा और न पुराने कागज का तरह उसका चेहरा हा पीला पड़ गया। यहाँ पर कल्पना का वह चाँद उभे मिल गया तिन पाने की आकाना एक पलनावत के सबूद उसके हृदय में विद्यमान थी। “उसका कल्पना की दूरगामी उड़ान यहाँ में सिमटा, रसभानी बालविक्रता के चारा और लिपटकर रह गई।” शब्द वाबू भी अपने शब्दों का इस तरह मनुमय नहीं बना सक। जैसा मादक प्रेम है, वैसा ही रोमांटिक यह चित्र भूमि है जिस पर ये दो प्रेमा अस्तित्व किये गये हैं। “रङ्गीन उभरनों में द्विष्टकी और उत्तुङ्ग दिग्गामी पहाड़ों से पिरा गज़नी को उपन्यसा से परे सगर का अस्तित्व उसके लिये रह हा नहीं गया।” लेकिन क्या तक ? जब तक “कल्पना की दूरगामी उड़ान” यादों ही दूर में थककर उस उपन्यसा में निदान हाकर गिर न पड़ी। नर्गिस के समीप बैठे रहना डाक्टर के लिये यन्त्रणा बन गया। वह मल्लाहट में उठकर चल देता और फिर स्वय ही नर्गिस के प्रति अपनी इस निष्पूरता से लज्जित हाकर तर्क करने लगता, इस बचारी का क्या असाध है ! और वह रोमांटिक चित्रभूमि, “गज़नी का वह अत्यन्त सुन्दर

और रमणीक उपत्यका डाक्टर के लिये जेल का आँगन बन गई।” इसके साथ बुर्जुआ अब्दुल्ला के शोषण व्यापार से भी उसे घृणा होने लगी और एक दिन अपने अंतरङ्ग नासिर के साथ वह रल्पना-परी नर्गिस के कस्तूरी-वासित केशपारा से सहज ही अपना दिल निम्नालम्बर रूस की सीमा में जा पहुँचा।

स्तालिनावाद का वर्णन, डाक्टर और नासिर का बिना पासपोर्ट के पकड़े जाना, उनका काम इन्जामिनेशन और फिर डाक्टर का समरकन्द के सैनिटारियम में काम करना—वहाँ भी लेखक ने चित्रण की सजीवता को भीना नहीं होने दिया। डाक्टर गजा का परिचय हुआ शिशुशाला की अत्यन्त कामरेड खतून से। डाक्टर कम्युनिज्म के अधिन निकट आता गया। और भी महत्त्वपूर्ण यह कि “तीन पहर रात गये तब खतून की बगल बैठ, उसकी निरावरण बाँहा और शरीर के अनेक अङ्गों का देखकर भी डाक्टर का खयाल न आता कि वह एक स्त्री के साथ एकांत में है।” पता नहीं पाठक कथानगर की इस रात से कहाँ तक महमत हागे कि “खतून को भी खयाल न आता कि एक पूर्ण युवा पुरुष उसके विस्तर पर बैठा है?” विशेषकर इसलिए कि खतून का दिल डूबने की बीमारी थी। इसी का दौरा होने पर डाक्टर ने उसके हृदय पर हाथ रखकर उसकी गति भी देखी। कुछ क्षण चुप रहकर उसने सलाह दी “तुम सो जाओ। विश्राम करो। तुम्हारे लिये एक खुराक दवा मैं अभी ला देता हूँ।” शरत् के पाठक यहाँ समझ जायेंगे कि खतून क्या जमान देगी। यहदाह में अचला जैसे सुरेश का हाथ अपने हृदय पर दबा लेती है वैसे ही “अपने हृदय पर रखा डाक्टर का हाथ दबा खतून ने उसे उठने न दिया” और कहा—“नहीं तुम बैठो! अधीश में बहुत दिन पी चुकी हूँ।” पापोलाफ से अपनी प्रतिद्वन्द्विता की यह बातें करने लगी। लेकिन डाक्टर उसे सोने की दवा पिलाकर

चला ही गया। ऐसा था यह डाक्टर जो दिल छपने की गाम्भीरी का इलाज न कर सकता था। नतीजा यह हुआ कि “खून के हृदय में डाक्टर के लिए एक वात्सल्यपूर्ण ममता उमट आई।” इना वात्सल्य रस से प्रेरित होकर “खून गुलशानों को डाक्टर की आर दफेलने का यत्न करती परन्तु डाक्टर का निवेक न रहा था, नही।” लेकिन कब तक ? यह “नागज पर कलम न चला, चितली के लैम्प के अत्यन्त समीप गुलशानों की कुन्नी हुई लम्बी पलकों की श्रोग देखता रह जाता।” रात्र की नीटियों पर छलांग मारकर हम उसी पुराने नतीजे पर पहुँच सकते हैं कि गुलशान के प्रेम-निवेदन ने डाक्टर के प्रेम को ठण्ढा कर दिया। उठ रात्र से गुलशानों की तुलना करने लगा। कहीं रात्र के साथ “प्रणय का मैदान चितना” और गुलशानों का “यह जबरन प्रेम का मोक़ लादने फिरना।” परिणाम—“उसका मन गुलशानों के प्रति निवृष्णा से भर गया।”

वात्सल्य रस की छोट खून का यह अच्छा नही लगा। वह डाक्टर की खुला इशारा करता है—“भावियट प्रजातंत्र का मफल बनाने के लिए हमें स्वस्थ सतानों की आवश्यकता है।’ हम आश्चर्यता से पोछा छुड़ाकर डाक्टर रात्रनीतिक शिक्षा के लिए मास्का चला गया। लेकिन जब यह गुलशानों से दूर हो गया तब “आँसों में दे कल्पना में यह रात्र का गाद में गिर रहे विधाम करना चाहता परन्तु उससे पहले आ जाती गुलशानों।” उसने जमा मोगी और जीवन भर उसे याद रखने का वचन दिया।

शिक्षा समाप्त करके खना भागत आता है। बम्बई आकर उसने राज का एक पत्र लिखा, फिर उसे जला दिया। जमनी के रूम पर आक्रमण करने से वह जगह-जगह जाकर जन युद्ध की नीति लागू की समझाते लगा। बम्बई में वह जमालदोन था कानपुर में आकर घट डा० बी० डी० वमा हो गया। एक दिन वह शिपनाथ

की बहिन यमुना से भेंट करता है। वहाँ उसे मालूम होता है कि उसकी स्त्री राज ने कांग्रेसी कायकर्ता बट्टी बाबू के साथ विवाह कर लिया है। क्रमशः उसकी भेंट अपनी साली चन्दा और उसके पति राजाराम से होती है। डाक्टर का रोमांस फिर शुरू होता है। क्या मौक से लेगक ने शरत् के 'चरित्रहीन' को याद किया है—चन्दा को 'चरित्र-हीन' बहुत पसन्द है और अब उसका नायक ही उससे मिलनेवाला है। एक श्रावण पति, दूसरी श्रावण खन्ना,—चन्दा का हृदय संघर्ष से मथ जाता है, विशेषकर इसलिए कि पति बड़ा शक्की है। चन्दा को इन बातों से और दुरा हाता है कि शारीरिक सम्पर्क न होने पर भी पति का इतना सन्देह होता है। चरित्र निम्नाने के लिए वह सभी कुछ सहती है परन्तु पति को फिर भी सन्तोष नहीं हाता है।

चन्दा की छोटी बच्ची का पानी में खेलने से ज्वर हो जाता है। माश, डाक्टर भी पानी में खेला हाता और उसे ज्वर हो आता। जैसा कि वह चन्दा से कहता है—“हा जाता तो मैं आपके पास आकर लेट रहता। मरा मिर देना पड़ता। आपको ज़हमत होती और मुझे अच्छा लगता।” चन्दा पूछती है, क्या बिना बीमार हुए नहीं लेट सकते? डाक्टर कहता है “वैसे तो लेटा ही हूँ परन्तु मामार का अधिकार अधिक हो जाता है।” डाक्टर तस्विया लेकर सहारा नहीं लेना चाहता, चन्दा पूछती है, वह उसे किस तरह सहारा दे सकती है। डाक्टर कहता है—“अपनी गोद में स्थान देकर।” इति शुभम्। रत्ना के प्रेम का यही वास्तविक रूप है। असली बात उसने कहा डाली। गुलशान, खतून, नर्गिस पठान लड़कियाँ,—उसे गोद में सिर रखने को अब तक न मिला था। चन्दा उसकी दृष्टि गुरन्त ही पूरी नहीं कर सकी। वह मान और श्रावण करता है लेकिन दूसरी बार चन्दा ने लेटे हुए खन्ना के माथे

पर हाथ रखकर कहा—‘तुम्हारा माया कुछ गरम है।’ आखिर माया गरम ही हो गया। चन्दा “खना का सिर अपनी गोद में ले उसके माथे को सहलाने लगी।” पूरी मनोमना जी की। चन्दा ने पूछा—“ऐसे तुम्हें सन्ताप होता है ?” बोहा ने उत्तर दिया—“बहुत !”

श्रीर भी, चन्दा की छोटी बच्ची की तरह वह उसकी गोद में खो जाना चाहता है। “मन चाहता है, जैसे शशि तुम्हारी गोद में छिप जाती है, वैसे ही शशि बन जाऊँ ?” चन्दा ने सिर झुकाये, अधमुँदी आँखों से उत्तर दिया—“तो क्या उससे कम हो ?” श्रीर “उसका मन चाह रहा था, खना का सिर उठा कर हृदय से लगा ले।”

चन्दा ने ठीक प्रश्न किया था। यह उपवास का चरितनायक छोटी बच्ची शशि से किस बात में कम है ? क्या वह अपनी बाल्य भावनाओं पर विजय पाकर विरसित पुरुषत्व प्राप्त कर सका है ? क्या उसका समाजवाद शरत् के पाना की इसी गोद में सिर रखने की इच्छा से विशेष महत्त्व रखता है ? श्रीर भी, साहस करके यह पृथ्वी की इच्छा हाती है कि खना को पौत्र का उत्तर बनाकर, अफ़रीदियाँ द्वारा उस उड़वाकर, अफ़ग़ानिस्तान और रूस की सैर कराकर, हिन्दुस्तान में कम्युनिस्ट ग़ाकर और अन्त में प्रेम की बेदी पर उसका बलिदान कराके लेगक ने क्या ग़लमुलम फ़ल्पना का ही परिचय नहीं दिया ? निश्चय ही लेगक चतुर है, उसकी बुद्धि बच्चा का ही नहीं है। यह इस फ़ाल्पनिक कहानी को यथार्थ के रङ्ग में रँग देता है, इस बात में उसकी प्रौढ़ा जैसी चतुरता है, परन्तु उसकी भाव धारा का मूल स्रोत क्या है ? उसके व्यक्तित्व का रहस्य क्या इस वाक्य में निहित नहीं है—“मन चाहता है, जैसे शशि तुम्हारी गोद में छिप जाती है, वैसे ही शशि बन जाऊँ ?”

पति की शङ्काओं से परेशान होकर चन्दा एक रात छत से नीचे कूद पड़ती है। काढ़ियाँ पर गिरने से वह मरने से बच जाती है। राजा उसका उपचार करता है। बचा की तरह होने की बात को दोहराता है।

६ अगस्त और उसके बाद तोड़ फोड़। कांग्रेस सोशलिस्ट शिनाय फरार हो जाता है। खन्ना चन्दा के पति राजाराम के यहाँ कम आता है लेकिन “कभी बहुत धकावट अनुभव होने पर वह घण्टे आध घण्टे के लिए चन्दा के समाप आ तखत पर लेट जाता। चन्दा का हाथ अपने माथे पर अनुभव कर उसकी गोद में अपना मिर रख आँसूँ मूँद लेट जाने से उसे विश्राम और स्फूर्ति मिलती।” एक दिन इसी दशा में उसके माथे पर चन्दा की आँसूँ से निरले दाँद आँसूँ आ टपके। उसने उठकर “अपनी बाँह उसकी गर्दन में डाल उसका सिर अपने हृदय पर रख लिया। चन्दा का मुँह उठा उसने उसकी आँसूँ के आँसूँ चूम लिये।” चन्दा राई क्या? इसलिए कि वह घर के जीवन से ऊपरकर राजा के साथ निरले जाना चाहती है। लेकिन वह शरत के पात्रा की तरह टाल-मटूल करता है। वह उसकी गोद में लेटना भर चाहता है, उसे सँभालने, माथे रखने, उसका उचा बराश्त करने के लिए वह तैयार नहीं है। वह राजाराम के रहते आ जाता ता या हा इधर उधर की गतें और बिनाद करके चला जाता। अभी चन्दा के अनेले रहते आता ता उसके समीप लेट जाता या मचल कर उसकी गोद में सिर रख लेता और चाहता, कुछ क्षण के लिए सब कुछ भूल जाय। पति के सदेह से ऊपरकर चन्दा अपना मार्ग ढँडने के लिये छिपकर राजा से रती पर मिलती है। “आज निश्चय किया था, इस समय यहाँ आकर तुमसे कहूँगी, अब लौट नहा सकती। अपनी महन, माँ, बेटी जो कुछ भी समझो, मुझे ले चला। या फिर सामने गइल है।” लेकिन देवदाम की तरह

खना उसे सहारा नहीं दे सकता । वह तो खुद गोद में सिर रखकर सब कुछ भूल जाना चाहता है, चन्दा का भार अपने सिर पर कैसे ले ले ? वह युक्ति भिड़ाता है—“तुमने अपना अनिदान कर सब सहा, अब उसके प्रति विद्रोह भी करो तो क्या कर सकती हो ? जब तक जीवन में खड़े हाने का साधन तुम्हारे पास न हो !” लेकिन खना तितना उसकी गोद में लेटने का इच्छुक है, क्या उतना ही इच्छुक वह उसे अपने पैरों पर खड़ा देखने के लिये भी है ? चन्दा के जीवन में एक सङ्घर्ष पैदा करके वह उसका अन्त करने के लिये किसी तरह का भी सहायता उसे नहीं देता, देने की चेष्टा भी नहीं करता । चन्दा निराश होकर फिर घर लौट गइ ।

मिल में हड़ताल होनी है । खना मजदूरों को समझाने जाता है । वहाँ घायल हा जाता है । शिवनाथ को मालूम था कि खना रूम से जाला पासपोट बनाकर आया है । वह उस धमकी देता है कि कानपुर छोड़कर न गया तो वह सारा भेद पुलिस के पास लिख भेजेगा । अब खना का द्विपक्षर दलान कराने की जम्मत है । चन्दा उसे लेकर अपना बहन रात के यहाँ चलती है । रातीरेत पहुँचकर दानो “गन्नाड़ा” की चट्टान चढ़ते हैं । पगड़ी बियावान में यकी हुई चन्दा अपनी बहन रात के यहाँ पहुँचता है लेकिन रात के जीवन का एक नया अध्याय आरम्भ हो चुका है । अब उसका पति आया है, लोग सुनकर क्या कहेंगे ? चन्दा घायल खना के साथ उसी रात को बहन के यहाँ बिना ठहरे वापस चल देती है ।

जब चन्दा कानपुर से चला भी तर उसका पति राहरे से । लौट कर उहोने उसे गायब देखा । दूँदने निकले, और पहाड़ी रास्ते में उह चन्दा मिल भी गइ । लात, तमाचा, सभी से काम लिया । घायल खना मना करता है रातराम डाटता है—“सुन धूर्त, देश द्रोही, बदमाश” । बेहोश चन्दा का डाँटी में लिटाया गया और घायल



छायावादी कविता के बारे में वह कहते हैं—'मुझे आधुनिक काव्य की आध्यात्मिकता में एकदम विश्वास नहीं है।' इस तरह छायावाद और आध्यात्मिकता की भूलभुलीया में वह नहीं पड़।

नये साहित्य के बारे में कहते हैं—'यह न मानना उतमता होगी कि भारतीय जीवन में समाजवाद की तरह प्रगतिवाद भी एक जीवित शक्ति है। उसमें उत्साह और चतुराई है।' हिन्दी में स्वस्थ साहित्य की रचना नहीं हो रही है, इसका उन्हें पता है।

इसी तरह उन्होंने गुलेरीजा के स्वस्थ बहिर्मुखी दृष्टिकोण की भी प्रशंसा की है।

इसके बाद जब हम उनका विचारों और अनुभूति का जरा नज़रदान से देखते हैं तो काफी उलझन पैदा करने वाली बातें हमारे सामने आती हैं। जहाँ वह मन की पाथिकता में विश्वास करते हैं, वहाँ वह भी कहते जाते हैं कि आध्यात्मिकता में उन्हें अनिश्वास नहीं है और छायावाद की उत्पत्ति जहाँ अतृप्त कामवासना से मानते हैं, वहाँ इसे स्थूल के प्रति सूक्ष्म का निद्राह भा करार देते जाते हैं। माना तृप्ति स्थूल होती है और अतृप्त रहना ही सूक्ष्मता का परिचायक है।

नगेन्द्रा बहुत ऊँचे तर्जों के व्यक्तिवादी हैं। इसलिये उनके सभी सिद्धान्त व्यक्तिवाद से जुड़े हुए हैं।

साहित्य क्या है ?

'साहित्य वस्तुतः आत्माभिव्यक्ति है।'

इस आत्म का व्याख्या कीजिये। साहित्यकार की व्याख्या में वह भी आ जाती है।

'संभव से ही साहित्यकार में अन्तर्मुखी वृत्ति का ही प्राधान्य होता है। वह जितना मशान् हागा उसका अर्थ उतना ही तीखा और

गलिष्ठ होगा जिसका पृथुत समानीकरण असम्भव नहीं ता दुष्कर अवश्य ही जायगा ।’

इसलिए साहित्य इस दुर्दमनीय अह की अभिव्यक्ति ठहरा । नगेद्रजी के साहित्यकार म अन्तर्मुखी वृत्तियों की प्रधानता होती है और एक तरह से वे साहित्य और इन वृत्तियों को पर्यायवाची मान लेते हैं । अन्तर्मुखी वृत्तियों का मतलब है कि दुनिया से आँसों मूँद ला और अपनी असाधारण प्रतिभा से असाधारण साहित्य की रचना करत रहा ।

नगेद्रजी साहित्यकार की इस शाश्वत व्याख्या से ही सन्तुष्ट नहीं हुए । उन्होंने अपने इट्रोपर्ट साहित्यकारों की भेणी में गोर्की, इकबाल और मिल्टन को भी बिठाया है । ये महान् साहित्यिक अपने अह क बल पर ही बड़े बन सके हैं । कहते हैं—‘गोर्की, इकबाल, मिल्टन आदि क व्यक्तित्व का विश्लेषण असदिग्ध रूप से सिद्ध कर देगा कि उनके भी साहित्य में जो महान् है वह उनके दुर्दमनीय अह का विस्फोट है, साम्यवाद, इस्लाम या प्यूरिटन मत की अभिव्यक्ति नहीं ।’ अब विश्व साहित्य का एक नया इतिहास लिखा जाना चाहिये जिसका नाम रखा जाय ‘अह का विस्फोट ।’ इसमें यह दिग्गया जायगा कि ससार के सभी महान् साहित्यकार साम्यवाद इस्लाम, प्यूरिटन मत जैसी लुद्र वस्तुओं से ऊँचे उठकर विशुद्ध रस के तल पर ( या रसातल पर ) अपने अह का बेलून फोड़ते रहे हैं । यदि कोई कहे कि इतिहास से यह सिद्ध नहीं होता तो हम नगेद्रजी की एक दूसरी उक्ति से उसका मुँद रन्द कर देंगे और वह यह कि आलोचना भी तो आत्माभिव्यक्ति है , उसमें गिज्ञान क्या कहता है, इतिहास क्या कहता है, इन लुद्र सत्यां की शोग कहीं तक ध्यान दिया जाय । आलोचन का कर्तव्य है—‘आलोच्य वस्तु के मध्यम से अपने की अभिव्यक्त करना जिसने बल पर ही आलापना साहित्य

पद को प्राप्त हो सकती है। यही एक प्रकार है जिससे गार्गी, इन्द्रजाल और मिट्टन का आलाचक्र उा के प्रकार आमन पर बैठने का अधिकारी हो सकता है। उसका आलाचक्र तथा साहित्य (या विवाह) पद का प्राप्त कर सकता है जब यह शब्द क विस्फोट का शब्द गार्गी, इन्द्रजाल वगैरह से आकाश भा घट कर न हो।

नगेन्द्रजी न उहा फायट का तरह अतृप्त कामनामना का साहित्य का प्रेरणा माना है, यहाँ एडलर का यह मत भी उद्धृत किया है कि मनुष्य की हानि भावना (inferiority complex) ही साहित्य का प्रेरक शक्ति है। 'एडलर मानवता की चिरन्तन ज्ञानता का भावना का ही जीवन का मूलप्रेरणा मानता है, साहित्य के मूल कीटाणु क्षतिपूर्ति की कामना में राजता है।' इस सत्य का पुष्टि क लिये नगेन्द्रजी न तुलसा रामा और छायावादी कवियों का उदाहरण दिया है। यदि यह सिद्धांत सच है तो साहित्य का मसार क तमाम महान् साहित्य का शब्द का विस्फोट मानता है, वन किम भयकर क्षति की पूर्ति करना चाहता होगा, उसकी हीन भावना किम अंधकार-मय अतल गह्वर जसी होगी जिसे भरने के लिये आकाश का झूठाले परिमिड की जरूरत हाता है।

नगेन्द्रजी को टूँजेडी यह है कि वे याद क व्याक्तवादा मनावज्ञानिता का अधानुसरण करने श्रमाय और अतृप्ति का ही काव्य का प्रेरणा मानते हैं और यह जानत शक भा कि श्रमाय का फाल्गुनिक तृप्ति में दूर करनेवाला साहित्य स्वस्थ तथा है, व याद किमी तरह क साहित्य का अस्तित्व मानने का तैयार नहा हाते। इस तरह क पतायनवादी, व्यक्तिवादी, निर्वीच आर सभी-कमी अस्वस्थ साहित्य का वे तरह तरह क रगीन शिक्षण पद्धताय विचार और अनुभूति क नाम पर हिन्दी पाठना क सामने पश करत हैं।

समस्त साहित्य अतृप्ति और अभाव की माल्यनिर्णय पूर्ति है, इस विषय में उनका निम्न वाक्यों का पट्टा जादू—

( १ ) 'और अन्त में सभी ललित कलाओं में—विशेषतः काव्य में और उमर भी अधिका प्रणय काव्य के मूल में अतृप्त काम की प्रणया मानन में आपत्ति के लिये स्थान नहीं है।

( २ ) 'प्रत्यक्ष जीवन में मौ-दर्य उपमा से उचित रहकर ही तो आयावादी कवि न अतान्द्रिय मौ-दर्य के लिये आता है।'

( ३ ) 'आयावाद का कविता प्रधानतः उगारित है, कविता उमर का जन्म हुआ है व्यक्तिगत दुष्टाशा से और व्यक्तिगत दुष्टाशाँ प्रायः काम के मार्गें आता उद्विग्न रहती हैं।'

नगेन्द्रजी आयावाद के समर्थन के रूप में प्रसिद्ध हैं उनका समर्थन आयावाद के लिये कितना दितकर है, उसे आयावादी और गैर आयावादी पाठक ऊपर के वाक्यों का पट्टा समझ सकेंगे।

इस आयावादी शब्दवाद का मूलम्मा कैसे चलाया जाता है, यह भी देख लीजिये—

( ४ ) 'उक्त विवेचन में अपनी धारणाओं के इतना निकट है कि इसमें अत्यन्त आपत्ति के लिये स्थान नहीं है। भारत में आयावादी के लिये शब्द का शब्द निदानार्थ के अन्तर्-याग्यमान है।'

( ५ ) आयावाद में आरम्भ से ही जीवन की सामान्य और विश्व चालविचलता के प्रति एक उपद्रव एक विमुग्धता का भाव प्रकट होता है। आज के आयावादी इस पलायन कहर निरम्कृत करते हैं, परन्तु यह भारत का जायगी या अतान्द्रिय रूप देना ही है—तो मूल रूप में आयावादी दुष्टाशाँ पर आश्रित ही ही प्रत्यक्ष रूप में पलायन का रूप नहीं है।'

यह अन्तिम धारणा शब्द शरपणो लावक है। आयावाद की

अताद्वियता 'मूल रूप में मानसिक दुःखायाँ पर आश्रित है लिंग 'प्रत्यक्ष रूप' में वह पलायन का रूप नहीं है। नगेन्द्रजी ने मूल रूप और प्रत्यक्ष रूप में कैसा मौलिक भेद किया है ! लेकिन हम तो मूल रूप से ही मतलब है, भले ही प्रत्यक्ष रूप में छायावाद पलायन न हो, मूल रूप में पलायन होने से ही हमारा काम चल जायगा।

नगेन्द्रजी इसी तरह शब्दों के साथ आँसु मिचीनी खेला करते हैं। छायावाद का विरोध करने के लिये आपका समर्पण पेश कर देना ही काफ़ी है। छायावाद के विरोध में यहाँ बात नहीं भी गई है। लेकिन वह आशिक सत्य ही है। छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा बल्कि योधी नैतिकता, रुचिवाद और सामंती साम्राज्यवादों के प्रति विद्रोह रहा है। यही उसका मज़बूत पहलू है। परन्तु यह विद्रोह मध्यवर्ग के सत्त्वग्रहण में हुआ था, इसलिए उसका साथ मध्यवर्गीय असमति, पराजय और पलायन का भावना भी जुड़ा हुआ थी। नगेन्द्रजी ने छायावाद का अन्तमुष्णी वृत्तियाँ का प्रकाश मानकर उससे प्रगतिशील पहलू का नजर-दाज कर दिया है। केवल एक जगह उन्होंने इशारा किया है कि छायावादी विद्रोह का एक सामाजिक रूप भी था। उन्होंने न्याय कर दिया है कि निराला, नवान जैसे 'शक्तिशाली व्यक्तित्वों' में वह मिलता है। छायावाद के इस पहलू की विशेष चर्चा उन्होंने नहीं की। इसका कारण यह है कि ऐसी चर्चा उनकी अनुभूति के क्षेत्र के बाहर जा पड़ती है। इसका प्रमाण यह है कि साहित्य में जब भी वास्तविकता या लाकहित का चर्चा करना जरूरी होता है, तब नगेन्द्रजी या तो पंथरा बदलकर अलग सड़के ही जाते हैं या उसे देखकर मुँह रनागे लगते हैं या पलायन से उसका समर्थन जोड़ देते हैं !

प्रमाद का के लिए उन्होंने लिखा है—'व उड़े गहर जीवन द्रव्य है। आधुनिक जीवन की विभीषिकायाँ का उन्होंने देखा और सदा

या !' लेकिन इससे परिणाम क्या निकला ? वह कि प्रसादजी पलायनवादी थे और ऐसे व्यक्ति को, गहरे जीवन-द्रष्टा को—पलायनवादी हाना ही चाहिये। मुनिये—'ऐसा व्यक्ति, य' स्पष्ट है, सत्कार की भौतिक वास्तविकता को महत्त्व न देगा। उसका दृष्टिकोण रोमांठिक हाना अनिवार्य है। वर्तमान से विमुक्त होने का कारण—जीता रामाष्टिक व्यक्ति के लिए आवश्यक है—वह पुरातन की ओर जायगा या कल्पनालोक का ओर !' क्या खूब। जा अनुनिर्णय जीवन की विभाषिकाओं को देखे और महेगा, वह तो पलायनवादी होगा और यथार्थवादी शायद वह होगा जो इन विभोषिकाओं से पलायन करे !

सम्व्रती का न्यायालय में प्रेमचन्द पर मुद्रमा चलता है और वाग्नापाणि ( अथात् नगेन्द्रजी ) उन पर जो पैसला देती हैं, यह इस तरह है - 'हमारा आदेश है कि आज से श्रियुत प्रेमचन्द की सहायता नलायाग की प्रथम श्रेणी को ट्राइबर द्वितीय श्रेणी में आगत प्राप्त करें।' अन्तमुक्त्या आलाचक से हममें ज्यादा और क्या आशा की जा सकती था ? नगेन्द्रजी शुद्ध करिता, शुद्ध रस और शुद्ध गो दर्यशासन का प्रमी हैं। इस कसौटी पर प्रेमचन्द का साहित्य परखा जायगा तो कसौटी के ही अशुद्ध ही जाने का भय है। फिर भी उन्होंने उसे परखा, यही क्या कम है।

नगेन्द्रजी के यहाँ हर चीज शुद्ध है, सानगी देखिए—

( १ ) 'साहित्य के क्षेत्र में तो शुद्ध मनाविज्ञान का ही अधिक विश्वास करना उचित होगा।'

( २ ) 'लोक प्रचलित अस्थायी भावों का द्वारा साहित्य का रस अशुद्ध हो जाता है।'

( ३ ) 'आयागद निहित ही शुद्ध करिता है।' हम अपनी तरफ से यहाँ कह सकते हैं कि नगेन्द्रजी की आलाचना विरुद्ध शुद्ध आलाचना होती है।

ग्रन्थों के द्वारा साहित्य का रस अशुद्ध हो जाता है, इसलिए प्रगतिवाद को रस का सबसे बड़ा शत्रु मानना चाहिये। नगेन्द्रजी पहले तो प्रगतिवाद को मार्क्सवाद का पर्यायवाची शब्द मान लेते हैं, फिर उस पर एनागिता आदि के दोष लगाते हैं। यह दोनों ही बातें गलत हैं। नगेन्द्रजी समझते हैं कि प्रगतिवाद की यह व्याख्या शायद मजबूत होगी, इसलिए करते हैं—‘शुद्ध प्रगतिवादी दृष्टिकोण तो शायद पत और नये क्रिया में नरद्वय ही ने ग्रन्थ किया है।’ प्रगतिवादियों ने ‘शुद्ध’ पर इतना जोर नहीं दिया जितना नगेन्द्रजी ने। हमने मिला मार्क्सवाद पर जो एनागिता होने का दोष लगाया गया है, वह भी उनका ही आत्माभिप्रेक्ति ही सफ़ती है, वस्तुगत मूल्य नहीं है। मार्क्सवाद में समार की घटनाओं को उनकी परस्पर सम्बद्धता में देखने के लिए कहता है। वह सामाजिक विनास के निर्माता ने हम परिचित कराता है और उनके प्रकाश में अपने युग की गतिविधि का पञ्चानने में हमारी सहायता करता है। साहित्य का वह एक सामाजिक क्रिया के रूप में देखता है, उसे कुछ विशिष्ट व्यक्तियों की पूँजी नहीं मानता। वह यह नहीं मानता कि साहित्य में आनन्द नहीं मिलता या छद्म, वर्ण, गति-लय का सौंदर्य साहित्य के लिये कलम है। लेकिन वह यह मानता है कि जो साहित्य युग की सही ‘अनुभूति’ और प्रगतिशील ‘विचारों’ को व्यक्त नहीं करता, वह निर्जीव हो जाता है।

नगेन्द्रजी का विरोध मार्क्सवाद से ही नहीं है बल्कि ‘साहित्य समान का दर्शन है’—इस साधारण सिद्धांत से भी है। वह वस्तुतः ‘रत्ना रत्ना के लिए’ की गुहार मचाने वाला भी है। कहते हैं—‘रत्ना रत्ना के लिये है निदान्त का प्रतिपादन भी वास्तव में शुद्ध आनन्द को ही कला का उद्देश्य मानता है।’ इन कलापरियों के अनुसार कि वह सहृदय प्राणी नहीं है जिसका हृदय मानव-उत्पीड़न और

सपनों में आन्दालत होता है। इनके अनुसार २० अतृप्त वामनाओं का नाम है जो दुनिया में मुँह जुगड़र काल्पनिक आनन्द की खोज में लगा रहता है। उस तरह का व्याख्या का गया गुल्लक छायावादी भाव न स्वीकार करेगा।

नगेन्द्रजी का शुद्ध रस का उपलब्धि नहीं मिली है। इसे देखकर भी फलापथिया का संप्राणता का पता चल जायगा। जब आप नगद्वारा की अतल भेदी दृष्टि पा जायेंगे तब आप महान ही सम्पन्न जायेंगे कि 'पूर और पश्चिम की दृष्टि में जो चरण पाप है—अग्नि के प्रति गति—उसका पवित्र रूप देने के लिये दृष्ट्य में कितने मतापुत्र का आश्चर्यकरना हुआ होगा।' और शेखर के आनन्द में मगन होकर आलाचना की आत्माभिव्यक्ति करते हैं—'इस अन्तिम रसस्थिति पर पहुँचकर मेरा मन यात्रा के समीप धम का भूलकर लेखक के प्रति एक अमिश्रित उन्नत-भाव से भर जाता है! क्या आप मुझसे महान नहीं हैं?'

आपसे महान २१ जगत् विभवे प्राप्त का ही हृदय पाया जागा सागरगु पाठना में तो इस अनुभूति का अभाव ही होता है। नती सागरगु आप प्रभव २० स्वस्थ पात्रों की अस्वाभाविक टूटते हैं और जैन-द्व और शरणा न मरणा में रस का अनुभव करते हैं।

नगेन्द्रजी न लगते क पारे में कहने का (और मुझसे का भी) अभाव बहुत कुछ है लेकिन यहाँ मरा उद्देश्य उनकी आलाचना की उन्निशानी समतापियों की तरफ मरन करना भर है। उनका दृष्टिकोण मन्वाच-नात से दूर अदकार का पापक है, हमलिय व मपूण मान्दिय का अतृप्त रामरामना से उत्पन्न दानिगाली कपालकल्पना बना देने हैं। प्रगतिशाल मान्दिय मन्वाच है, इसे २० मानने हैं लेकिन व फलापनगती साहित्य का फलना नहा छद्म कहने क्यारि उससे शुद्ध रस की सृष्टि नहीं है। शुद्ध रस का गीत में चट गयी पाशों के



इन दो पक्तियों में रञ्चन ने अत्यन्त प्रौढ स्तरों में अपनी आशावाद की बात कह दी है।

यह भी सही है कि निमाण का सुरज बहुधा अभिसार के सुरज में बदल जाता है और कवि यह उठता है—

‘मल उठाऊँगा भुजा  
अथाय के प्रतिकूल,  
आज तो कह दो कि मेरा  
मन्द शयनागार।  
सुमुखि ये अभिसार के पल,  
चल करे अभिसार!’

माना रात है कि इस ‘मल’ के आश्वासन से बहुत कम पाठकों का सन्ताप होगा। उन पाठकों के लिए यहाँ चेतावनी भी है जो सतरगिनी के रूपकों में तल्नीन होकर बहुत दूर की कौड़ी लायेंगे।

सब गीतों को पढ़ने के बाद स्पष्ट हो जाता है कि कवि की संवेदना उसने प्रणय सत्कार में इधर उधर मँडराती है, उसमें सामाजिक अथवा सामूहिक संवेदना का अभाव है। परन्तु सच्चे निमाण की आशावादी देर तक परिवार के दायरे में सीमित नहीं रह सकता। आगे चलकर वह सामाजिक प्रगति से नाता जोड़ेगी और क्रमशः अधिक स्वस्थ और अधिक समल बनेगी। ऐसा न हुआ तो निमाण का यह स्वर क्षीण होकर फिर विनाश और पीड़ा का क्रन्दन बन जायगा।

सतरगिनी का अन्त में कुछ पक्तियाँ ऐसी आयी हैं जिनमें एक नयी सामाजिक चेतना के दर्शन होते हैं। कवि अपने भाग्यवाद को चुनौती देता है और मानव के सचेत प्रयास की सफलता में विश्वास प्रकट करता है। वह ‘काल’ के लिए कहता है—

‘अर नहां तुम प्रलय के जड दास,  
अर तुम्हारा नाम है शनहास।’

और

‘नाश न अर न गन महान्,  
प्रगतिमय सनार के भावान।’

इस इतिहास-निर्माण का प्रेरणा कवि का परिवार ही में मिलती है। घर का प्रेम ‘जगनावन से मेल कराता’ है। इस दुनिया में उसका लाल रहेगा, पढ़ेगा, खेले कुदेगा, इसलिए—

‘जैसी हमन पायी दुनिया  
आश्रो, उसमे बहतर छोड़ें।’

पाठक को मंगल कामनाएँ करि के साथ हांगी, अभिसार के बाद का ‘मल’ इतनी जल्दी आय ता इसमें किमा को ऐतराज भी क्या हागा ? और यदि कवि कह—

‘पय क्या, पय का थकन क्या  
स्वप्न कण क्या,

दा नयन मेरा प्रतीभा में गडे है।’

तो इस प्रेम क लिए कवि का कौन बघाई न देगा जब प्रगति से उसका ऐमा अटूट सम्बन्ध है ?

सतरागिनी में रचन ने छुंदा के नये रद रचे हैं, काव्यरूपा में नये प्रयोग किये हैं। यद्यपि चित्रो में पुरानापन है और कहां-कहां पुगगी नातिसम्बन्धी कविताओं का मन्त्रक आ गया है। रहुत ने गीतों में गठन का रमी का अनुसर हाता है। फिर भी ‘कोयल’ ‘निर्माण’ ‘विश्राम’ आदि अनेक गात हैं जा रचन की रचनाओं में संश्लेष है और देव्दी गातिहावर में चिनका स्थान असदिग्ध है।

## कुप्रिन और वेश्या-जीवन

कुप्रिन का उपयोग 'यामा इ पि' रूख प्रसिद्ध हुआ है। समाज का प्रायः सभी प्रधान भाषाओं में उसका अनुवाद हो चुका है। इंगलिये एक प्रकार से उसका हिंदी में अनुवाद ही हो जाना चाहिये था। इस उपयोग में रूस देश में क्रांति के पूर्व के वेश्या-जीवन का उल्लेख है। उल्लेख मजबूत और यथाथ है। उल्लेख का उदाहरण दिया गया नहीं गया। वरन् चित्त भी समाज का गन्दगा का समाया जा सकता था, समाया गया है। प्रकाशक के शब्दों में पाठक को उठता है—'आह, यह हमने आज जाना कि वेश्या-जीवन का अभिशाप से हमारा समाज इस तरह अभिभूत है।' क्रांतिकारी साहित्य का घर घर प्रचार करने के लिये प्रकाशक ने ध्यान उठाकर भाइसे प्रकाशित किया है। एतदर्थ यह धन्यवाद के पात्र हैं।

एसा पुस्तकें उपनी चाहिये या नही—इस विषय पर काफी विवाद हुआ है और हो रहा है। अनुवादक ने इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा है और यहाँ अधिका कहने की आवश्यकता नहीं। रूसी समाज में बर्षाचार और पतन का चित्र खोजकर कुप्रिन ने साधारणतः अच्छा ही किया है। पाठक को उपयाम पत्र पर वेश्या-जीवन की गन्दगा में इतना रुष्ट अथवा आकर्षित होगा कि और बात पर साच विचार कम करेगा। परन्तु जो ध्यान तन्त्रस्थ होकर पढ़ेगा, वह कुछ और बात भी साच सकता है।

पहली बात यह कि वेश्या-जीवन की समस्या का कुप्रिन ने अति कामगामना की समस्या कहा है। और इस अति कामगामना का उपाय उमरो कटार चारपाई या चीरा पर बुरसुरी चादर निछाकर

सोना बताया है। अच्छा साहित्य पढ़ना, परिश्रम करना आदि बातें सायं में हैं। बेर्या-जीवन की बीमत्त्वता के लिये उत्तरदायी एक निश्चल/सामाजिक व्यवस्था को क्षम उभका ध्यान नहीं गया जिसको बदले बिना इस नारकायता में फँसी नहीं हो सकती। इसी-लिये सही अर्थ में यह उपन्यास क्रान्तिकारी नहीं है, केवल बेर्या-जीवन की ऊनरी गन्दगी में फँस गया है जैसे लोग उभकी ऊनरी सड़क-भरक से चींभिया जाते हैं। गन्दगी का ठाक ठीक कारण न जानने से वह उसे दूर करने का उपाय भी नहीं जानता। 'मुझे कोई ऐसा अच्छूक नुखगा इस रोग के विरुद्ध नहीं मिला है जो मैं आपनो धता दूँ।' अच्छूक नुखगा है भी नहीं, इस रोग को दूर करने के लिये पूरे समाज-शरीर की जाँच करनी होगी। कठोर चारपाइ और खुरखुरी चारर से बही हाल होगा जो उपन्यास में लिखोनिन और नियून्हा का हाता है। दिन में प्रतिष्ठा और रात में प्रनिष्ठा भग।

कुमिन का दृष्टिकोण एक आदर्शवादी और व्यक्तिवादी का है। प्लेटोनाय जो लेखक की प्रतिमूर्ति है, एक आवाता है। वह एक के बाद दूसरा काम उठाता है परन्तु टिकता कहीं भी नहीं है। कारण, कि सामाजिक उपयोगिता का काम उसे दिखाइ नहीं देता। यह कहत है—'मुझे तरह-तरह का जीवन देखने का एक उमग-सी रहती है। मैं आपनो सच कहता हूँ, मेरा मन कुछ दिन घोडा बनने को, २५ दिन पड़ बनने का, कुछ दिन मछली बनने को, और कमी-कमा औरत बनकर जन्वा जीवन का अनुभव लेने को भी चाहता है।' यह बेर्या बनना चाहे तो भी आश्चर्य न होगा। यह यही आवातापन का आदर्शवाद है, का बटिया ली उपन्यासों में-भरा हुआ है। ऐसे मनुष्य से क्या आशा की जा सकती है? प्लेटोनाय बेर्याओं के पाच रहता है और उन पर पुस्तक भी लिखना चाहता है। बेर्याओं को उसके प्रति यह धारणा है—'वहाँ की सारी ~~...~~

## कुप्रिन और

कुप्रिन का उपयोग 'यामा' का प्रायः सभी प्रधान भाषाओं के इतिहास के प्रकार से उसका हिस्सा था। इस उपयोग में कम देश का उल्लेख है। उल्लेख सजीव द्विभाषा नहीं गया बल्कि तितना ना मरता था रखाया गया है उठता है—'आ' यह हमने अभिशाप से हमारा समाज इस साहित्य का घर घर प्रचार करने का प्रयत्न किया है। एतद एतद पुस्तकें छपनी चाहिये निम्न हुआ है और हा रहा है बहुत कुछ है और यहाँ आरम्भी समाज में व्यवहार और साधारणतः अच्छा ही किया है जापन का गदगी से इतना रुद्धता पर साक्ष्य विचार कम करगा। पटगा, यह कुछ और यों भी साक्ष्य वाली बात यह कि वज्र्या-नीगा कामगारना का समन्या कहा है। टपाय उमने कटार चारपाइ या ची,

सोना बनाया है। अच्छा साहित्य पढ़ना, परिश्रम करना आदि बातें साथ में हैं। वेश्या-जीवन की गीभत्सता के लिये उत्तरदायी एक विश्वहल/सामाजिक व्यवस्था की ओर उसका ध्यान नहीं गया जिसको बदले बिना इस नारकीयता में कमी नहीं हो सकती। इसी-लिये सही श्रम में यह उपास कान्तिकारी नहीं है, लेखक वेश्या-जीवन की ऊपरी गन्दगी में फँस गया है जैसे लोग उसकी ऊपरी तड़क मड़क से चौंधिया जाते हैं। गन्दगी का ठीक ठीक कारण न जानने से वह उसे दूर करने का उपाय भी नहीं जानता। 'मुझे कोई ऐसा अचूक नुस्खा इस रोग के विरुद्ध नहीं मिला है जो मैं आपको बता दूँ।' अचूक नुस्खा है भी नहीं, इस रोग को दूर करने के लिये पूरे समाज-शरीर की जाँच करनी होगी। कठोर चारपाई और खुरखुरी चादर सही हाल होगा जो उपन्यास में लिखोमिन और स्त्रियूना का हाता है। दिन में प्रतिज्ञा और रात में प्रतिज्ञा भंग।

कुपिन का दृष्टिकोण एक छादशब्दादी और व्यक्तिवादी का है। प्लेटोनॉप को लेखक की प्रतिमूर्ति है, एक आचारा है। वह एक के बाद दूसरा काम उठाता है परन्तु ठिकता कहीं भी नहीं है। कारण, कि सामाजिक उपयोगिता या काम उसे दिखती नहीं देता। यह कहता है—'मुझे तरह-तरह का जीवन देखने की एक उमंग-सी रहती है। मैं आपसे सब कहता हूँ, मेरा मन कुछ दिन घोड़ा बनने को, ५५ दिन घोड़ा बनने को, कुछ दिन मछली बनने को, और कभी-कभी औरत बनकर जन्मा जीवन का अनुभव लेने को भी चाहता है।' यह वेश्या बनाता चाहे तो भी आश्चर्य न होगा। यह परो आचारपत्र का आदर्शवाद है, जो धरिया रूसी उपन्यासों में भरा हुआ है। ऐसे मनुष्य से क्या आशा की जा सकती है! प्लेटोनॉप वेश्याओं के बीच रहता है और उन पर पुस्तक भी लिखना चाहता है। वेश्याओं की उसके प्रति यह धारणा है—'धरिया की सारी छोटकियाँ'

## कुप्रिन और वेश्या-जीवन

कुप्रिन का उपयोग 'यामा ट पिट' रूर प्रमिद्ध हुआ है। समाज का प्रायः सभी प्रधान भाषायाँ म उसका अनुवाद हो चुका है। इंगलिय एर प्रसार से उसका हिंसा में अनुवाद हो ही जाना चाहिये था। इस उपयोग में रूस देश में क्रांति के पूर्व के वेश्या-जीवन का उगून है। उगून मजाय और यथाय है, तत्र मर का कहा छिपावा नहीं गया बरन् चितता भी समाज का गदगी का समीपा जा सकता था, प्रभाया गया है। प्रकाशक के मर्णा में पाठक के उठता है—'आ', यह हमने आज जाना कि वेश्या-जीवन ने अभिशाप से हमारा समाज इस तरह अभिभूत है।' क्रांतिकारी साहित्य का घर पर प्रचार करने के लिये प्रकाशक ने पाठ उठाया भी इस प्रकाशित किया है। एतदर्थ वह ध्वयवाद के पात्र है।

ऐसा पुस्तकें छपना चाहिये या नहीं—इस विषय पर काफी विवाद हुआ है और हा रहा है। अनुवादक ने इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा है और यहाँ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। रूसी समाज में व्यभिचार और पतन का चित्र सचित्र कुप्रिन ने साधारणतः अच्छा ही किया है। पाठक उपयोग करने पर वेश्या-जीवन की गदगी में इतना रुष्ट अथवा आकर्षित होगा कि और ज्ञान पर साच विचार हम करेगा। परन्तु जो थोड़ा तन्मय होकर पढ़ेगा, वह कुछ और ज्ञान भी साच सकता है।

पहली रात यह कि वेश्या-जीवन की समस्या का कुप्रिन ने अति कामगारना की सम्मना कहा है। और इस अति कामगारना का उपाय उभने कठार चारपाइ या चीना पर बुरखुरी चादर लिखाकर

सोना चताया है। अन्ध्रा साहित्य पढ़ना, परिष्कृत करना आदि सबों  
 साथ में हैं। वेश्या-जीवन की वीभत्सता के लिये उत्तरदायी एक  
 विभूतल सामाजिक व्यवस्था की ओर उसका ध्यान नहीं गया  
 जिसका बदले बिना इस नारकीयता में कमी नहीं हो सकती। इसी-  
 लिये सही अर्थ में यह उपन्यास क्रान्तिकारी नहीं है, लेखक वेश्या  
 जीवन की ऊपरी गन्दगी में पँस गया है जैसे लोग उसकी ऊपरी  
 सड़क-मड़क से चौंधिया जाते हैं। गन्दगी का ठीक ठीक कारण न  
 जानने से वह उसे दूर करने का उपाय भी नहीं जानता। 'मुझे कोई  
 ऐसा अच्छा नुसराना इस रोग के विरुद्ध नहीं मिला है जो मैं आपसे  
 बता दूँ।' अच्छा नुसराना है भी नहीं, इस रोग को दूर करने के लिये  
 पूरे समाज-शरीर की जाँच करनी होगी। कठोर चारपाई और खुरखुरी  
 चारर से सही हाल होगा जो उपन्यास में लिखोनिन और नियून्का  
 का दाता है। दिन में प्रतिष्ठा और रात में प्रतिशा भग।

कुम्भिन का दृष्टिकोण एक आदर्शवादी और व्यक्तिवादी का है।  
 प्लेगनाब या लेखक की प्रतिमूर्ति है, एक आचारा है। वह एक के  
 बाद दूसरा काम उठाता है परन्तु टिकता कहीं भी नहीं है। कारण, कि  
 सामाजिक उपरोमिता का काम उसे दिखाई नहीं देता। वह कहता  
 है—'मुझे तरह-तरह का जीवन देखने की एक उमर-सी रहती है।  
 मैं आपसे सब कहता हूँ, मेरा मन कुछ दिन मोटा बनने को, ६६  
 दिन पेश बनने को, कुछ दिन मखली बनने को, और कमा-कमा  
 औरत बनकर ज़ब्त जीवन का अनुभव लेने को भी चाहता है।'  
 वह वेश्या बनना चाहे ता भी आश्चर्य न होगा। वह वही आचारपत्र  
 का आदर्शवाद है, जो पट्टिया कली उपन्यास में मरा हुआ है।  
 ऐसे मनुष्य से क्या आशा की जा सकती है? प्लेगनाब वेश्याओं  
 के बीच रहता है और उन पर पुस्तक भी लिखना चाहता है।  
 वेश्याओं की उसके प्रति यह धारणा है—'हाँ हाँ गरी कोकसिर्वा'



## कुप्रिन और वेश्या-जीवन

कुप्रिन का उपयोग 'यामा सि पि' रूपा प्रमित हुआ है। समाज का प्रायः सभी प्रधान भाषायात्रा में उसका अनुवाद न चुका है। इंगलियण प्रचार से उसका हिंदी में अनुवाद ही जाना चाहिये था। इस उपयोग में रूस देश में काति रूपा के वेश्या जीवन का उगना है। उगन मजोर और यथाथ है, तब मरुत की कहा दियाशा नही गया उरुतिता भी समाज का मरुतों का समोषा जा सकता था, स्वभाया गया है। प्रचारक के सन्धि में पाठक कू उठता है—आ, यह हमन आज जाना सि वेश्या जीवन क अभिशाप से हमारा समाज इस तरह अभभूत है !' कान्तिकारी साहित्य का घर घर प्रचार करने क नियम प्रचारक न घाटा उठाकर भा इस प्रचारित किया है। एतदथ उह धर्मवाद क पात्र है।

एसा पुस्तकें अपनी चाहिये या नहीं—इस विषय पर काफी विवाद हुआ है और हा रहा है। अनुवादक न म मरुत में बहुत कुछ कहा है और यहाँ अधिक कहने का आवश्यकता नहीं। रूसी समाज में व्यभिचार और पतन का चित्र चित्रर कुप्रिन ने साधारणतः अच्छा ही किया है। पाठक उपयोग पत्र घरया जीवन का मदगी में इतना रुष्ट अथवा आरुपित होगा कि और जाता पर साच विचार नम करेगा। परंतु जो घाटा तटस्थ हास पठगा, वह कुछ और न तें भी साच सकता है।

एली बात यह सि वेश्या-जीवन की समस्या का कुप्रिन ने अति समरामना का सम्प्राप्त है। और इस अति कामरामना का पाय उमने कटार चारपाइ या चीना पर चुरचुरी चादर निछाकर



मुझे आदमी और औरत के बीच की ज्ञात का जीव समझती हूँ।' ऐसा व्यक्ति वेश्याओं की प्रशंसा पाते हुए भी उन्हें अति निकट से नहीं जान सकता। कुप्रिन वेश्याओं के उच्चों जैसे भोलेपन पर मुग्ध है। प्रायः प्रत्येक अध्याय में वह उनकी उच्चों से तुलना करता है। उनके भोलेपन और उनके जीवन की गन्दगी दोनों पर ही वह फिदा है। फ्लेटानॉव अपने विचारों को कठिनता से सुलझाता हुआ कहता है—'यहाँ का जीवन मुझे कैसे समझाऊँ उपयुक्त शब्द नहीं मिलता। मुझे एक तरह से श्राप कह सकते हैं उड़ा आकषण लगता है।' 'क्योंकि यहाँ जीवन क भयकर और नग्न चित्र मुझे देखने को मिलते हैं।' यह कुप्रिन का ही दृष्टिकोण है। उसमें तटस्थता नहीं है। भयकरता से उसे मोह हा गया है। उसे नष्ट करने की शक्ति उसकी रां गई है। इसलिए उसे समाज में कहीं भी स्वास्थ्य नहीं दिखाई देता, और अपनी दृष्टि में वह अज्ञान के चक्के से नहा हटा पाता। हेरफेर एक ही चक्के का वणन करने से उपवास में एकरसता आ गई है। विभिन्न श्रेणी की वेश्याओं और उनके जीवन की विचित्रता की व्यापकता उसने श्रॉन नहीं उठाई।

कथा-वस्तु में विस्तार अत्यधिक है और पुनरावृत्ति भी कम नहा है। अन्त में कथा समाप्त करने के लिए चक्के का जल्दी-जल्दी अन्त भी कर दिया गया है। पुस्तक के अन्त में 'आखिरी बात' में अनुवादक ने वेश्या-जीवन और भारतवर्ष में उसकी समस्या पर अपने विचार प्रकट किये हैं। कुप्रिन का भाँति उनका दृष्टिकोण भी आद शंसादा है। प्रस्तावना में उन्होंने इस बात पर खुशी और अभिमान प्रकट किया था कि कुप्रिन ने अति कामवासना के लिये भारतीय विद्वानों की भाँति ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना ही प्रताया है। वेश्याओं की पतित अवस्था के लिये कुप्रिन व्यक्तिगत कामुकता को दोषी मानता है जिसे वश में किया जा सकता है, परन्तु अपने

उपन्यास में ही उसने अनेक ऐसे वेश्यागामी पुरुषों का चित्र किया है जिन्हें अति काम-वासना के लिये दायी नहीं टहराया जा सकता । साथ ही उसने ऐसी वेश्याओं का भी चित्र किया है जिनमें अति काम वासना है । वे एक पुरुष से सन्तुष्ट न रह पाकर वेश्या हुए हैं । इन सब की मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर कुप्तिन ने कुछ नहीं कहा— ब्रह्मचर्य रामायण औपधि अवश्य है परन्तु गोली बारूद के युग में उसका सब जगह उपयोग नहीं होता, न हो सकता है ।

यह पुस्तक रूसी भाषा में कभी पूरा-पूरा नहीं छपने दी गई । अंग्रेजी अनुवाद में यह प्रथम बार पूरा प्रकाशित हुई । इसका कारण भी लेखक का असामानिक दृष्टिकोण हो सकता है ।